भक्तिकालीन व्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य

(शोध-प्रबन्ध)

भक्तिकालीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच्० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध)

लेखिका
डा० (कु०) कमला भारती
एम०ए० (संस्कृत एवं हिन्दी), पी-एच्०डी०
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, नवयुग कन्या डिग्री कालेज,
लखनऊ

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

कापीराइट
डॉ० कमला भारती

●

प्रथम संस्करण
दिसम्बर, १९७९

●

मीनाक्षी प्रिंटिंग कारपोरेशन,
लखनऊ

मूल्य : ६५.००

परम् पूज्य माता-पिता
स्व० शर्वती भारती
एवं
स्व० नन्दकिशोर भारती
की
पावन स्मति में—

उपोद्‌घात

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर अब तक लगभग दो हजार वर्षों के आयाम मे रामकाव्य-धारा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रही है। वाल्मीकि ने लोक-प्रचलित रामकथा के आधार पर मर्यादापुरुषोत्तम राम के चरित्र को उपजीव्य बनाकर 'रामायण' की रचना की थी। विद्वानो की मान्यता है कि भक्ति के विकास के साथ ही आगे चलकर परवर्ती काल मे राम के ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हुई।

हिन्दी-साहित्य का पूर्वमध्यकाल भक्ति-आंदोलन का युग था। उस युग के भक्त कवियो ने वेदात-प्रतिपादित निर्गुण और सगुण ब्रह्म के स्वरूपानुसार दो प्रकार के भक्तिकाव्य का निर्माण किया—निर्गुण भक्तिकाव्य तथा सगुण भक्ति-काव्य। उन रचनाओ मे मगल-विधायक भक्तिदर्शन और सौन्दर्य-निरूपक कवित्व का अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। तत्कालीन भक्तिकाव्य की प्रचुरता एव उत्कृष्टता के कारण ही उस युग को भक्तिकाल की सज्ञा प्रदान की गई है।

भक्तिकाल की एक अदेक्षणीय विशेषता अवतार-भावना की अभिव्यक्ति है। सगुण-भक्तो ने ऐसे भगवान की सकल्पना की जो सच्चिदानदस्वरूप होते हुए भी दीनबधु है, भक्तवत्सलता आदि दिव्य गुणो से युक्त है, अधर्म एव अधर्मियो का नाश करके धर्म-सस्थापन तथा सज्जनो का कल्याण करता है और सबसे बढकर भक्त-जनो को अवतार-लीला का आनन्द प्रदान करता है। यह अवतार-लीला इतनी लोक-व्यापी और प्रभावशाली थी कि अवतारवाद का खडन करने वाले निर्गुणिया सत भी अवतारो की स्तुति किये बिना नही रह सके—

महापुरुष देवाधिदेव। नरस्यघ प्रगट कियो भगति भेव।

—कबीरदास

सग खिलावन राम बनावन गोपी भावन भूधरा।

—दादूदयाल

देही धरि-धरि नाच्यो राम। भक्तन केर सॅवारयो काम।

—जगजीवन

सबमे बड है मत सब नाम है। तिसरे दस अवतार तिन्हे परनाम है।

—पलटू

अवतारवादियो की मान्यता है कि अवतार असंख्य हैं। उसमे मुख्य अवतार चौबीस हैं। उनमे भी दशावतार को विशेष गौरव दिया गया है। हिन्दी-साहित्य मे 'पृथ्वीराजरासो' से ही दशावतार-वर्णन की परम्परा पाई जाती है। भक्तिकालीन कवियो ने भी उसका निर्वाह किया है, किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य दो अन्यतम् अवतारों—राम और कृष्ण की अवतार-लीला का गान है। फलत. सगुण-भक्ति-काव्य की दो शाखाएँ हैं : कृष्णभक्तिशाखा और रामभक्तिशाखा।

भक्तिकाल की एक महत्वपूर्ण देन यह भी है कि हिन्दी की दो बोलियाँ-अवधी और ब्रजी भाषा के गौरवान्वित पद पर प्रतिष्ठित हुईं। अधिकाश कृष्ण-काव्य ब्रजभाषा मे रचित है। रामकाव्य की यह विशेषता है कि उसकी कालजयी कृतियाँ अवधी और ब्रजभाषा दोनो मे निर्मित हुई हैं। ब्रजभाषा की काव्य-परपरा के अनुरूप कवियो ने अपनी राम-विषयक रचनाएँ प्राय. मुक्तक-रूप मे की। सूर, तुलसी आदि महाकवियो द्वारा ब्रजभाषा मे प्रणीत मुक्तक रामकाव्य इयत्ता और ईदृक्ता दोनो के केन्द्रबिन्दु से निस्संदेह महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध मे डॉ० (कु०) कमला भारती ने अनुपेक्षणीय विषय का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने मे सराहनीय कार्य किया है। उन्होने व्यापक दृष्टि से भक्तिकालीन ब्रजभाषा मुक्तक-रामकाव्य की पृष्ठभूमि, उसमें निबद्ध रामकथा, चरित्र-चित्रण, भाव-रस-व्यजना, चित्र-विधान और दार्शनिक-सास्कृतिक प्रवृत्तियो का स्वच्छ शैली में विशद एव सोदाहरण विवेचन किया है। आशा और विश्वास है कि ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित उनका यह शोध-प्रबन्ध रामकाव्य विषयक अनुशीलन को अग्रसर करेगा।

उदयभानु सिंह

प्रोफेसर एव अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
३१-५-१९७९

प्राक्कथन

जब मैं १९६८ ई० मे एम०ए० की परीक्षा के लिये 'श्रीमद्भागवत और सूर राम-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' विषयक लघु प्रबन्ध लिख रही थी तो राम-काव्य का अध्ययन करते समय मुझे ऐसा लगा कि ब्रजभाषा में उपलब्ध मुक्तक राम-काव्य का विस्तृत अध्ययन सभव है। राम काव्य के मूर्धन्य विद्वान् डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र, डॉ० कामिल बुल्के, स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० राम-निरजन पाण्डेय आदि तथा ब्रजभाषा के मर्मज्ञ विद्वान् स्व० डॉ० दीनदयालु गुप्त, डॉ० हरवशलाल शर्मा, डॉ० प्रेमनारायण टडन की कृतियो से भी मुझे इस सम्बन्ध मे विशेष प्रेरणा मिली। तदनुसार पी-एच०डी० शोध–प्रबन्ध के लिये मैंने 'भक्तिकालीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य' विषय का चयन किया। आलोच्य विषय के सामग्री-सकलन के लिए मैंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और दो-एक अन्य पुस्तकालयो मे काफी छान-बीन की किन्तु कोई विशेष उल्लेखनीय सामग्री प्राप्त न हो सकी।

आलोच्य ब्रजभाषा मुक्तक रचनाओ मे सूरदास, तुलसीदास, सेनापति आदि की कृतियां तो सुलभ थी, अन्य कवि—अग्रदास, नाभादास आदि की कविताओ का उल्लेख तो कई पुस्तको मे किया गया था किन्तु उनकी कृतियो की विशेष जानकारी नही हो सकी थी। मुझे तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्-अयोध्यावासी स्वामी रामकुमार दास जी ने जब अपने सग्रहालय से अग्रदास, नाभादास आदि की काव्य-कृतियो से परिचय कराया तो मेरा कार्य अत्यन्त सरल हो गया। तदनन्तर अग्रदास रचित ध्यानमजरी, पदावली, अग्र ग्रथावली, नाभादास रचित अष्टयाम आदि रचनाएँ अयोध्या मे ही थोडा प्रयास करने पर सुलभ हो गईं। सेनापति रचित 'कवित्त रत्नाकर' का सकलन स० १७०६ में किया गया था इसलिए यह विचारणीय था कि उसे भक्तियुगीन आलोच्य ग्रथो मे लेना उचित होगा अथवा नही। तदर्थ मैंने तुलसी साहित्य के कई मर्मज्ञ विद्वानो से विचार-विमर्श किया और सब ने उसे भक्तियुगीन काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट करने का सुझाव दिया। अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध मे सूरदास, तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, सेनापति की प्रकाशित रचनाओ तथा अकबरी दरबार से सबद्ध नरहरि, गग, ब्रह्म, रहीम, तानसेन आदि के फुटकर छदो का मुख्य रूप में उपयोग किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ छ: अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय के आरम्भ में भक्तियुगीन परिस्थितियो और ब्रजभाषा की व्यापकता का परिचय दिया गया है। युगीन परिस्थितियो के अन्तर्गत राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों का संक्षेप मे प्रासगिक उल्लेख है। ब्रजभाषा की क्षेत्रीय व्यापकता और उसके साहित्यिक महत्व पर आवश्यक प्रकाश डाला, गया है। तदनन्तर आलोच्य ग्रन्थ—सूररामचरितावली, तुलसी रचित कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, अग्रदास विरचित ध्यानमजरी, अष्टयाम पदावली, अग्र-ग्रथावली (कुडलिया), सेनापति रचित कवित्तरत्नाकर आदि ग्रन्थो का रचनाकाल और वर्ण्य विषय की दृष्टि से सक्षेप में विवेचनात्मक परिचय दिया गया है।

दूसरे अध्याय मे आलोच्य मुक्तक राम काव्यो की रामकथा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। राम-जन्म का हेतु स्पष्ट करने के बाद रामकथा मे वर्णित बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुदरकाण्ड, लकाकाण्ड, उत्तरकाण्ड की कथा का तुलनात्मक परिचय दिया गया है। निष्कर्ष रूप मे मार्मिक स्थलो की तुलना की गयी है। अन्य आलोच्य काव्यों के अन्तर्गत अग्रदासकृत अष्टयाम पदावली और नाभादासकृत अष्टयाम मे वर्णित रामकथा के प्रासगिक रूपो का भी उल्लेख किया गया है।

तीसरे अध्याय में मुक्तक रामकाव्यों मे पुरुष और नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है। रामपक्ष के पुरुष-पात्रों मे दशरथ, राम, भरत, लक्ष्मण, हनुमान, अगद; नारी पात्रों मे कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता तथा रावण पक्ष के पात्रो में रावण, विभीषण, मंदोदरी, त्रिजटा के चरित्र का विशद चित्रण किया गया है।

चौथे अध्याय—मुक्तक रामकाव्यो मे रस एवं भावव्यजना के आरम्भ में मुक्तक रामकाव्य के स्वरूप और भेद, काव्य का प्रतिपाद्य और मुक्तक का आवश्यक विवेचन करने के पश्चात् आलोच्य मुक्तक रचनाओ मे सौन्दर्य, शृगार-सयोग और विप्रलम्भ, वात्सल्य—सयोग और वियोग, शोक, भक्ति, शौर्य, वीभत्स, भयानक, रौद्र एव हास्य का रस एव भावव्यजना की दृष्टि से सम्यक् विवेचन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में मुक्तक काव्यो मे वाह्य दृश्य-चित्रण एव कला-सौन्दर्य का विवेचन किया गया है। वाह्य दृश्य-वर्णन के अन्तर्गत नगर आदि का वर्णन प्रकृति चित्रण, आलोच्य रचनाओं की भाषाशैली, काव्यगुण और वृत्ति, ध्वनि-प्रयोग, शब्द-समूह—तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, अन्य भाषाओ

और बोलियो के शब्द, सामासिक शब्द, संकर शब्द, मुहावरे और लोकोक्तियो के प्रयोग, छन्दयोजना, अलकार-विधान के अन्तर्गत शब्दालकार और अर्थालकार का तुलनात्मक परिचय दिया गया है।

छठे अध्याय मे मुक्तक रामकाव्यो या दार्शनिक एव सास्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के पूर्वार्द्ध मे आलोच्य मुक्तक रचनाओ मे दार्शनिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत राम का स्वरूप-लक्षण, परब्रह्म, राम का तटस्थ लक्षण, अवतार-वर्णन निर्गुण-सगुण, देवताओ, ऋषियो, रावण तथा अन्य सामान्य जनो द्वारा राम के ब्रह्मत्व का समर्थन, चेतनजीव, माया और ससार का विवेचन किया गया है। उत्तरार्द्ध मे मुक्तक रामकाव्यो मे सास्कृतिक विवेचन के अन्तर्गत सस्कार एव रीति-रिवाज, जन्मोत्सव, नामकरण, यज्ञोपवीत, पूर्वराग, विवाह, अन्त्येष्टि, सामान्य वेशभूषा, आभूषण, खाद्यपदार्थ, शृगार के प्रसाधन, व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ, खेल और मनोविनोद, ऋतु एव पर्वोत्सव, होली आदि का वर्णन किया गया है।

ब्रजभाषा मे उपलब्ध भक्तियुगीन रामविषयक मुक्तक रचनाओ का अभी तक तुलनात्मक रूप मे कोई अध्ययन नही किया गया था। इस विषय पर प्रस्तुत ग्रन्थ लेखिका द्वारा प्रथम विनम्र मौलिक प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणयन मे तुलसी के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० भगवती प्रसाद सिंह और अयोध्यावासी स्वामी रामकुमार दास जी के सत्परामर्शो और आवश्यक सहायता के लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ। लखनऊ विश्वविद्यालय की हिन्दी-विभाग की अध्यक्ष डॉ० (श्रीमती) सरला शुक्ल, स्व० डॉ० प्रेमनारायण टडन, डॉ० प्रभाकर शुक्ल, डॉ० प्रतापनारायण टडन, डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव तथा विभाग के अन्य अध्यापकों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप मे बराबर सहायता मिली है जिसके लिए मैं उन सब की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। शोध-प्रबंध के परीक्षक विद्वान डॉ० हरवशलाल शर्मा एव डॉ० कामिल बुल्के के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होने महत्वपूर्ण सुझाव देकर मुझे लाभान्वित किया है। तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० उदयभानु सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ का उपोद्घात लिखकर उत्साह वर्धन किया है जिसके लिए मैं उनकी अत्यत आभारी हूँ।

राम साहित्य के जिन विद्वानो की रचनाओ से मैंने आवश्यक सहायता ली है, उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत प्रबध के निर्देशक डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल जी के प्रति मैं किन शब्दों मे आभार प्रकट करूँ, वस्तुत. वे ही इस

प्रबन्ध के प्रेरक स्रोत रहे हैं। उनकी सतत् प्रेरणा और सहायता से ही मैं इस शोध-कार्य को पूर्ण करने मे समर्थ हो सकी और उन्ही के सदप्रयत्नों से प्रबन्ध ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित हो सका। उनके प्रति मैं हृदय से श्रद्धावनत हूँ।

नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ की प्राचार्या श्रीमती ज्ञानवती जलोटे की मैं विशेष आभारी हूं जिन्होंने शोध कार्य के करने मे न केवल सुविधाएँ प्रदान की वरन् बराबर प्रोत्साहित भी करती रही। शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश ने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ चार सहस्र रुपये का अनुदान दिया है जिसके फलस्वरूप प्रबन्ध शीघ्र प्रकाशित हो सका। तदर्थ मैं शासन की कृतज्ञ हूँ। शोध-प्रबंध को पुस्तक के रूप में सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष है। मेरा विश्वास है कि इसमे उन्हे कुछ उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

कमला भारती

विषय-सूची

सकेताक्षर

अ० का०	:	अयोध्या काण्ड
अग्र०	:	अग्रदास
अष्ट०	:	अष्टयाम
अयोध्या०	:	अयोध्या काण्ड
अष्ट० पदा०	:	अष्टयाम पदावली
ईशा०	:	ईशावास्योपनिषद्
कवित्त०		कवित्तरत्नाकर
कविता०	:	कवितावली
किष्कि०	:	किष्किधा काण्ड
कुड०	:	कुडलिया
गीता०	:	गीतावली
डॉ०	:	डॉक्टर
तुलसी०	:	तुलसीदास
तैत्तिरीय०	:	तैत्तिरीयोपनिषद्
ध्यान०	:	ध्यानमजरी
पृ०	:	पृष्ठ
बा० का०	:	बाल काण्ड
ब्र० सू०	:	ब्रह्मसूत्र
लका०	:	लका काण्ड
विनय०	:	विनयपत्रिका
सूर०	:	सूरसागर
		सूररामचरितावली
स०	:	सस्था
		सख्या

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

युगीन परिस्थितियाँ

कलाकार भी समाज का ही प्राणी होता है और उसी के बीच वह अपना जीवन यापित करता है। अतएव अपने चतुर्दिक वातावरण और तत्कालीन परिस्थितियों से उसका प्रभावित होना स्वाभाविक है। अपने युग की मान्यताओं और विश्वासों के ऊपर ही प्रत्येक कलाकार अपनी कला की नींव रखता है, विशेषकर साहित्य में तो यह बात और भी दृढ़ता के साथ लागू होती है, क्योंकि साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों एवं भावनाओं का जीवन के संदर्भ में प्रत्याख्यान होना है। इसी के साथ यह भी सत्य है कि कुछ अभूतपूर्व प्रतिभावान् कलाकार युग की परिस्थितियों से प्रभावित होने के साथ साथ उसे नई दिशा भी देते है, परन्तु इससे उनके साहित्य की युगीन प्रेरणा पर कोई आँच नहीं आती, उसका महत्व अपने स्थान पर सुरक्षित रहता है। साहित्यकार के साहित्य की जड़े जन-जीवन की अतल गहराइयों में होती है, जो युगीन वायुमण्डल में कवि की प्रतिभा के अनुरूप विकास प्राप्त करती है। अत किसी भी एक या युग के अनेक साहित्यकारों के साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उसके युग की परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करना नितान्त आवश्यक होता है। प्रस्तुत संदर्भ में हम ब्रजभाषा-मुक्तक राम-काव्य के रचयिताओं के युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का विहगावलोकन करने के पश्चात् उनके काव्य का मूल्यांकन करेंगे।

राजनीतिक परिस्थिति—ब्रजभाषा मुक्तक राम-काव्य के रचयिताओं का काल मुख्यत अकबर और जहाँगीर के शासनकाल का था। अकबर को अपने पिता हुमायूं से उत्तराधिकार में तख्त के साथ अनेक कठिनाइयाँ भी मिली थी। राज्य की स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी जिसे ठीक करने में उसे लगभग २० वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। इन २० वर्षों में उसने अपने शासन की आधारशिला को सुदृढ़ बनाया और राज्य का पर्याप्त विस्तार कर लिया। वास्तव में जिस समय अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ तब केवल पंजाब उसके हाथ में था। उसके सरदार दिल्ली और आगरा की रक्षा कर रहे थे।

राज्य-विद्रोह को उसे दबाना था। सूरवंश के उत्तराधिकारियों का विरोध एक ओर था। हिन्दू सामन्त हेमू भी, जिसने विक्रमादित्य की उपाधि ली थी, दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। बंगाल अफगान शासकों के आधिपत्य में लगभग दो शताब्दी से स्वतन्त्र था। राजस्थान के राजपूत अपने प्रदेश के विधाता स्वयं थे। मेवाड़ और गुजरात ने बहुत काल पहले ही अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। गोंडवाना और मध्य प्रान्त स्थानीय सरदारों के आधिपत्य में था। उड़ीसा की स्वतन्त्र सत्ता थी। दक्षिण में खान्देश, बरार, बीदर, अहमदनगर, गोलकुंडा सुलतानों द्वारा शासित थे, जिनका प्रायः दिल्ली दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। उत्तर में काश्मीर, सिंध और बिलोचिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र थे और किसी सर्वोपरि सत्ता को जानते ही न थे। किन्तु अकबर के बुद्धि-चातुर्य, कुशलता और तीव्र प्रतिभा के बल पर ही एक-एक कर सभी प्रदेश उसके अधीन होते गए। उसने स्थानीय राजाओं और सामन्तों को शत्रु के बदले मित्र बना लिया था।[1]

महाराणा प्रताप ही एक ऐसे शासक थे जिन्होंने किसी भी रूप में अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की और आजीवन उससे संघर्ष करते रहे। अन्य राजाओं को अकबर ने बुरी तरह कुचल दिया, किसी में भी ऐसा साहस नहीं रहा जो उसके सम्मुख सिर उठा सकता।

अकबर बड़ा ही दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसने अपनी सैनिक शक्ति को तो उत्तरोत्तर विस्तृत और सुदृढ़ किया ही, इसके साथ ही वह यह भी जानता था कि बिना बहुसंख्यक हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों की वीर जाति की सद्भावना तथा सहायता के न तो उसका साम्राज्य सुरक्षित रहेगा और न उसे स्थायित्व प्राप्त होगा। साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए जनमत का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक था। चूँकि राजपूत लोग ही हिन्दू जाति के नेता थे, अतएव उनकी सद्भावना तथा सहयोग प्राप्त करने का तात्पर्य सम्पूर्ण हिन्दू जाति का समर्थन तथा सहयोग प्राप्त करना था। इसलिए अकबर ने राजपूतों के साथ उदारता का व्यवहार कर उनके हृदय पर विजय प्राप्त करने तथा साम्राज्य-निर्माण में उनकी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इस सदर्भ में लिखा है कि अकबर ने जान लिया था, जब तक वह हिन्दू प्रजा की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर लेगा, तब तक पूरे देश को जीतने पर भी प्राप्त साम्राज्य की नींव दृढ़ता के साथ नहीं बैठ सकती। अस्तु उसने पिछले बादशाहों की कठोर

१. डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० २-३

दमन और पक्षपात की नीति को छोड दिया और सम्पूर्ण प्रजा को उदार दृष्टि से देखना शुरू कर दिया।[1]

राजपूतो के प्रति उसकी इस नीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे—एक तो मुगल साम्राज्य की शक्ति को बढाना और राजपूतो की शक्ति को छिन्न-भिन्न करना तथा दूसरा अपने और अपनी जाति के गौरव को बढाना और राजपूतो के प्राचीन गौरव का समाप्त करना। अकबर ने राजपूतो को अपनी सेना मे भर्ती किया और उन्हे सेना मे बडे ऊँचे-ऊँचे पद दिये। इससे उसे बड़ा लाभ हुआ। अपने साम्राज्य का विस्तार करने मे अकबर को राजपूतो से बडी सहायता मिली। उसने न केवल मुसलमान राज्यो के विरुद्ध वरन् अन्य राजपूत राज्यो के विरुद्ध भी मित्र राजाओ का प्रयोग किया। उसने राजपूतो की तलवार से ही राजपूतो का विनाश किया। यह अकबर की उच्च कोटि की कूटनीतिज्ञता थी।

अपनी सैनिक शक्ति को प्रबल बनाने मे राजपूतो का सहयोग लेकर अकबर ने बडी चतुरता का काम किया। उससे आन्तरिक विद्रोहो का दमन करने और शांति-व्यवस्था स्थापित करने मे उसे बडी सहायता मिली। साथ ही साम्राज्य-विस्तार का कार्य भी सरल हो गया और सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिण का भी बहुत बडा भाग मुगल सम्राट् की आधीनता मे आ गया। राजपूतो तथा मुगलो की संयुक्त सेनाओ ने न केवल अफगानो वरन् स्वतत्र राजपूत राज्यो की भी शक्ति को भी विध्वस कर दिया। इसे यो भी कहा जा सकता है कि "जो पौदा बाबर ने लगाया था उसकी जड अकबर ने सींचकर उसे एक ऐसे विशाल वृक्ष का रूप दिया जिसकी छाया दक्षिण मे गोदावरी तक पहुँचती थी।"[2]

यह होते हुए भी मुगल शासन प्रणाली भारतीय जाति एव समाज के प्रति अपने कर्तव्यों की ओर से बहुत कुछ विमुख थी।

ब्रजभाषा राम-काव्य के प्रणेताओ के समकालीन समाज के समक्ष जिन सम्राटों का उदाहरण था, व थे--अकबर और जहाँगीर। दोनो ही घोर विलासी थे। अकबर की विलासिता का प्रमाण 'मीनाबाजार' लगवाने से बढकर और क्या हो सकता है। उसके हरम मे पाँच हजार चन्द्रमुखियो का जमघट था। उसने हिन्दू, पारसी, मुगल, यहाँ तक कि आरमीनिया जाति की चुनी हुई गज-

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (पृष्ठभूमि), पृष्ठ ३१
२ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ११७

गामिनियाँ जुटारखी थी ? जहांगीर के हरम की भी यही दशा थी। उनकी सख्या भी हजारों में थी। जहाँगीर का चरित्र बड़ा ही गर्हित अकित है। प्रजा उसके भय से काँपती रहती थी। इस घोर विलासी मद्यप को जानवरो से आदमियों को लडाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कराना प्रिय था। वह हफ्ते में पाँच दिन हाथियो का मल्ल-युद्ध कराता था। कहा जाता है कि किसी आशका से उसने अपने एक मंत्री को मरवा डाला। किसी आदमी से एक कब्र टूट गयी, फलतः उसे कोड़े मार-मार कर उसकी धज्जियाँ उड़ा दी गयी। उसकी प्रकृतिगत इन कठोरताओं ने प्रजा के हृदय मे उसके प्रति कोमल भाव न रहने दिया।[1] वह किसी भी धार्मिक विचार-पद्धति से शून्य था, केवल एक खुदा मे विश्वास रखता था। तत्कालीन प्रचलित हिन्दू-धर्म तथा उसके अवतार आदि को व्यर्थ मानता था। हाँ, अकबर और जहाँगीर, दोनो चित्र-कला के प्रेमी थे। अकबर का तो यहाँ तक कहना था कि जो चित्र-कला नही पसन्द करते, वे घृणित समझे जाने चाहिए।

सामाजिक परिस्थिति—आलोच्य कवियों के समय का सामाजिक वातावरण भी अत्यन्त ही दूषित, अशांत और पतनोन्मुख था। सामान्य लोगो का जीवन सभी दृष्टियो से विपन्न था। वे ही लोग उन्नत समझे जाते थे जो विलासिता के गर्त मे गोते लगा रहे थे। राजनैतिक वातावरण की क्षुब्धता जनता को निरन्तर दुःख और दारिद्रय के द्वार पर पहुँचा रही थी। एक प्रकार से समाज बिल्कुल पगु बनता जा रहा था। जो लोग सम्पन्न थे तथा जिनमे कुछ करने की सामर्थ्य थी, उन्हे अपनी विलासिता से ही अवकाश न था कि वे आँख खोल कर समाज को देखते तथा उसके प्रति कुछ सृजनात्मक कार्य करते। समाज के सम्पन्न वर्ग को रगीन दुनिया चाहिए थी। समाज उसके विलास की सामग्री मात्र था।

सम्राट् का जीवन स्वय घोर विलासी और अनैतिक था, फिर यह कैसे सम्भव था कि उसका जनता के ऊपर प्रभाव न पडता। इतिहासकार भले ही अकबर और जहाँगीर के समय को मुगल शासन-काल का बडा ही शानदार समय कहें, किन्तु तत्कालीन साहित्य में राजनीति और समाज का जो बिम्ब मिलता

१. मेडिवल इंडिया अण्डर मोहमडेन रूल, पृ० ३०४
डॉ० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० १३,१४

है, उससे उसके जर्जर और विश्रृङ्खल स्वरूप का स्पष्ट बोध हो जाता है। वास्तव में समाज मे गर्हित जीवन की प्रतिक्रिया स्वरूप ही भक्ति-काव्य की सृष्टि हुई।

हिन्दुओ मे जाति-पाँति का भेद-भाव बहुत था जो मुसलमान-काल के पहले से ही चला आ रहा था। मुसलमानी काल मे आकर जाति-पाँति का भेद और भी बढ गया। मुसलमानी धार्मिक अत्याचार से बचने के लिए हिन्दुओ को खान-पान, विवाह आदि के कड़े बंधन बढाने पड़े जिससे अपने-अपने वर्ग को प्रत्येक जाति नये बाहरी प्रभावो से बचाती रहे। जो कार्य स्वधर्म-रक्षा और उन्नति के लिए किया गया था, उसके फलस्वरूप दिनो के फेर से, हिन्दू सभ्यता मे प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थिर रूढिवाद तथा कठोरता ने पैर जमा दिया। समय समय पर बाहरी प्रभाव के बचाव के साथ आपस मे छुआ-छूत पहले से ही घुस आयी थी। अब पीडित और अशिक्षित जनता मे अंधविश्वास, साहस-हीनता, कलह, भय आदि कुत्सित भाव और भी अधिक प्रबल हो गए। यह माना जा सकता है कि अंधविश्वास ने अंधकार के समय मे भारतीय सभ्यता के बचाने मे बहुत कार्य किया था, परन्तु यह बात भी माननी पडेगी कि मुसलमान धर्म के अंधविश्वास ने उनको संगठित शक्ति का बल दिया और हिन्दू अंधविश्वास ने हिन्दुओ की शक्ति को कभी संगठित नही होने दिया।[1]

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के मतानुसार सामाजिक दृष्टि से वर्तमान जाति-व्यवस्था का निश्चित रूप इसी काल मे निर्धारित हुआ। विवाह और खान-पान सम्बन्धी प्रतिबन्धो का भी अधिक कट्टरता के साथ निर्वाह किया जाने लगा। इसका प्रधान कारण था विदेशियो के साथ सम्पर्क। वस्तुत राजनीतिक परिवर्तनो के कारण सामाजिक दशा और अधिक अव्यवस्थित हो गई।[2]

समाज के इस कृष्ण-पक्ष के अतिरिक्त उसका एक शुक्लपक्ष भी था और वह इस रूप मे कि मुसलमानो को भारत मे आये कई शताब्दियाँ बीत चुकी थी। व अब विदेशी न रहकर यही के निवासी बन चुके थे। इसलिए स्वभावत. हिन्दू समाज के साथ उसकी घनिष्ठता हो गयी थी। पिछली कई शताब्दिया से चला आता हुआ सास्कृतिक-संघर्ष समन्वय मे बदल रहा था। मुसलमानो के भारत आगमन के फलस्वरूप गगा की घाटी मे दो संस्कृतियो का सम्मिलन

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३३
२ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ११८-११९

हुआ। प्रारम्भिक लूटमार, संघर्ष और विद्रोहों के बाद मुसलमानों और भारत-वासियों में पारस्परिक सम्पर्क बढ़ने लगा और दोनों ने समझने की चेष्टा की।[1]

अकबर ने हिन्दू-कन्याओं से विवाह करके पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़तर किया। उसने इस्लामी कट्टरता के स्थान पर समाज और धर्म के क्षेत्र में समभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की जिसका परिणाम अच्छा ही हुआ। मुगल-शासन से पूर्व जनता का जीवन निश्चय ही अपेक्षाकृत अधिक दुखी और अशान्तिमय रहा। अकबर दूरदर्शी था, इसलिए उसने राजपूतों से मेल-जोल बढ़ाकर, उनके साथ अच्छा व्यवहार किया। गुलामी की प्रथा बंद कर दी, जजिया कर माफ कर दिया और प्रजा को धर्म के मामले में पूरी स्वतन्त्रता दे दी। यात्रियों से जो कर लिया जाता था उसे मुआफ कर दिया, पशुओं का बलिदान बंद करा दिया। हिन्दुओं की कुछ प्रचलित कुरीतियों, जैसे सती प्रथा, बाल-विवाह और बहु-विवाह आदि को रोकने का प्रयास किया। हिन्दुओं को शासन-प्रबन्ध में स्थान दिया और उन्हें उच्च पदों पर भी नियुक्त किया। इन सबका परिणाम हितकर सिद्ध हुआ, हिन्दुओं की प्रतिष्ठा बढ़ी। अकबर के शासनकाल में हिन्दू-मुसलमानों के अधिकारों की विषमता को दूर करने का भी प्रयत्न हुआ। उसने हिन्दू और मुसलमान सभी के लिए एक नियम का पालन किया और हिन्दुओं पर लगे हुए सभी अनुचित करों को हटा दिया जिसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गयी। हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रायः समान स्तर पर हो गए थे। अपने सामाजिक उत्सवों, रीति-नीति-रिवाजों आदि के मनाने की पूरी स्वच्छन्दता थी, किन्तु हिन्दू सामाजिक जीवन में जो शिथिलता आ गयी थी, वह एकदम दूर न हो सकी। परस्पर कलह, भेद-भाव, भोग-विलास, मदिरा-सेवन आदि दुर्गुण हिन्दू समाज के उच्च स्तर के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। साधारण जनता में संयम अवश्य था। अकबर के काल में सौंदर्य-प्रेम की भावना प्रधान थी। सुरापान और अफीम का सेवन बराबर होता था। स्वयं अकबर इसका आदी था। अकबर के दो बड़े बेटे मदिरा-सेवन की अति के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे। विदेशों से विलासिता तथा भोग-विलास की अनेक सामग्रियाँ आती थीं जिनके कारण उन वस्तुओं का उपयोग लोगों के जीवन में प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। अतएव इस प्रकार की सामाजिक दशा का प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना न रहा। जहाँ एक ओर अकबर के राज्य में सुखमय स्थिति होने के कारण लोगों का ध्यान काव्य तथा अन्य ललित

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ११८-११९

कलाओ के समुत्थान की ओर गया, वहाँ दरबार के विलासी जीवन के अनुरूप शृंगारिक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गयी और इस रूप मे कवियो की रचनाओ मे तत्कालीन सामाजिक जीवन का थोडा सकेत मिलता है।[1]

तत्कालीन समाज की तुलना जब हम उसके पूर्ववर्ती समाज से करते हैं तो हमे यह मानना पडता है कि उस युग मे अपेक्षाकृत उन्नति हुई और समाज का क्षुब्ध वातावरण कुछ अशो मे शात भी हुआ, किन्तु जब हम समग्र रूप से तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर विचार करते है तो हमे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यवनी अत्याचारो के समक्ष ये विकास और शाति के कार्य नगण्य हैं। समाज का जर्जर स्वरूप दृढ आधार की अपेक्षा कर रहा था जो राम-काव्य के प्रणेताओ द्वारा उसे प्राप्त हुआ।

धार्मिक स्थिति—राजनीति, समाज और धर्म का बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजनैतिक वातावरण की छाँह मे सामाजिक जीवन को दिशा मिलती है और फिर उसके अनुसार धर्म को प्रश्रय। किसी देश मे धर्म अथवा सस्कृति का स्वरूप दो चार दिनो मे नही निर्मित होता। यह शताब्दियो के सामाजिक जीवन का परिणाम होता है। अस्तु, राम-काव्य-युगीन धार्मिक वातावरण का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे भारतीय समाज के अतीत मे भी झाँकना पडेगा।

आदिकाल से ही भारत का धर्म वैदिक सनातन धर्म रहा है। भारतवर्ष के ऋषिगण अध्यात्म चिंतक थे। उन्होने सदैव ही से लौकिक और पारलौकिक दोनो प्रकार का उत्थान हो, ऐसे मार्ग का अनुसरण करने को बताया है। उनके विचार से इन दोनो मे भी पारलौकिक अधिक श्रेयस्कर है। हम सब भी आर्य-सन्तान है, अत दोनो लोको के बनाने की कामना स्वाभाविक है। यही कामना हमे धर्मावलम्बी बनाती है और हम वेद विहित अनुष्ठानो की ओर झुकते है। योग, यज्ञ, तप, व्रत आदि मे पूर्ववत् प्रवृत्त होने का सोल्लास प्रयास किया करते हैं। हमारी इस प्रकार की लालसा और आश्वासन के लिए तुलसीदास जी ने हमे यह सरलतम साधन भी बताया है जिसे अपनाकर अपना चिरन्तन कल्याण कर सकते है।[2]

---

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ७

२ पावन प्रेम राम चरन कमल जनक लाहु परम।
राम नाम लेत होत सुलभ सकल धरम॥

वैदिक सनातन धर्म का युग और जीवन के अनेकानेक संघर्षों के बीच भी अपने विशिष्ट तत्त्वों के कारण कभी आमूल विनाश नहीं हो सका और न हो सकेगा। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में सामाजिक संघर्ष के बढ़ जाने से लोगों में वेदना और निराशा का स्वर प्रखर हो उठा जो आगे चलकर जैन और बौद्ध धर्म के रूप में विकसित होकर प्रकट हुआ। सातवीं-आठवीं शताब्दियों में कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म की अजेय चारदिवारी को छिन्न-भिन्न कर वैदिक धर्म की पताका पुनः फहराई, किन्तु उनका धर्म सामान्य जनता द्वारा अधिक नहीं ग्रहण किया जा सका, केवल उच्च वर्ग को ही वह प्रभावित कर सका। दूसरी बात यह थी कि शंकराचार्य ने आगे चलकर बौद्ध धर्म के कुछ तत्वों को भी अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया जो पंडित-वर्ग को बिल्कुल नहीं रुचा। इसलिए उसका विरोध हुआ और उससे भिन्न विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत आदि प्रणालियाँ प्रचलित हुईं। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म की एकरूपता बिखर गयी। पहले शैव और वैष्णव दो ही भेद थे किन्तु कालोपरान्त इसके सैकड़ों भेद हो गए और इस प्रकार शाखा-प्रशाखाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण धर्म की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी।[1]

अकबर के पूर्व मुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे, उनमें मूर्तियों के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्म-विपर्यय आदि के दृश्यों ने जनता में अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी थी। निर्गुण ईश्वर में उनकी अधिक आस्था हो चली थी। इधर यवन भी 'एकेश्वरवाद' के समर्थक और मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। अतएव ऐसे ही समय में कबीर, नानक, नामदेव, दादू आदि महात्मा इस नवीन ईश्वरोपासना-पथ के प्रदर्शक हुए। हिन्दू और मुसलमान दोनों की सद्भावनाओं का इन सन्तों द्वारा पूर्ण विश्लेषण किया गया। हिन्दू धर्म में प्रचलित अंधविश्वास, छुआछूत के भेद, मंदिर-मस्जिद के झगड़े, जाति-गत संकीर्णता का विरोध कर सन्तमत के अनुयायियों ने जनता के सम्मुख ज्ञान और प्रेम से उद्भूत निर्गुणोपासना का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा। यह

---

१. जोग, मख, विवेक विरति वेद विहित करम।
करिबे कहं कटु कठोर, सुनत मधुर नरम॥
तुलसी सुनि जानि-बूझि भूलहि जनि मरम।
तोहि प्रभु को होहि, जाहि सबकी सरम॥—विनयपत्रिका, पद सं० १३१

निर्गुण धारा अपने क्षेत्र मे प्रवाहित होती रही और आगे वह भी समय आया जब सगुण और निर्गुण का सघर्ष प्रारम्भ हुआ और जिसके परिणाम मे दोनो का समन्वय बहुत कुछ अशो मे दिखाई पडता है।[1]

इन सन्तो और उनके अनुयायियो द्वारा जिस रूप मे धर्म का प्रचार हुआ, वह भारत के मूल धर्म के विपरीत था। वस्तुत उनकी कोई गभीर, पुष्ट एव दार्शनिक पृष्ठभूमि नही थी। साथ ही ये निरक्षर और अशिक्षित भी थे। इस नाते इनकी वाणी का जादू केवल निम्न वर्ग को ही प्रभावित कर सका और यह स्वाभाविक भी था। इसके अतिरिक्त सबसे बडी कमजोरी, जो इनमे थी, वह यह कि इनके उपदेश प्राय मौखिक हुआ करते थे जिनमे उच्च वर्ग के प्रति द्वेष एव विरोध की भावना रहती थी। हिन्दू समाज की वर्ण-व्यवस्था को अस्त व्यस्त करने और प्राचीन शास्त्रो तथा धार्मिक प्रथाओ को कलुषित ठहराने का प्रयत्न जोरो पर था।

तुलसी तथा अन्य राम-काव्य प्रणेताओ के युग तक आते-आते धर्म मे पर्याप्त विकृति आ गयी थी। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो से लेकर इस समय तक धर्म के क्षेत्र मे भी राजनीति और समाज की ही भाँति प्रखर सघर्ष चलता रहा। अनेक झझावात आये किन्तु भारत का वैदिक धर्म आमूल विनष्ट न हो सका। समय समय पर धर्माचार्यो तथा उसके रक्षको ने वेद-स्मृति और दर्शनादि के भाष्य लिखकर तथा अन्यान्य उपायो से उसकी रक्षा की और यथासम्भव उसके विकास एव प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्नशील रहे। अपने विशिष्ट तत्वो के कारण ही वैदिक धर्म इन झझावातो के बीच भी अपनी रक्षा कर सकने मे समर्थ हुआ।

चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे स्वामी रामानन्द ने रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' को व्यापक और लोकप्रिय बना दिया और उत्तर भारत मे इसका प्रचार कर सगुण भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। इस भक्ति मे राम को ईश्वर के सगुण रूप मे प्रतिष्ठित करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के प्रभाव से आगे चलकर रामभक्ति का विशेष प्रचार हुआ। उसको लेकर चलने वालो मे अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि प्रसिद्ध कवि हुए। जिस प्रकार स्वामी रामानन्द द्वारा रामभक्ति का प्रचार हुआ, उसी प्रकार निम्बार्काचार्य, मध्वा-

---

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ३-४

चार्य, विष्णुस्वामी तथा उनके अनुयायी चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभाचार्य द्वारा कृष्णभक्ति को प्रश्रय मिला। वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि मार्ग' द्वारा कृष्ण की अनुग्रह प्राप्ति का उपदेश दिया।[1]

अकबर ने तत्कालीन सभी प्रकार की धार्मिक भावनाओं का एकीकरण करना चाहा। उसकी धार्मिक उदारता का परिणाम था कि उसने जब बौद्धिक आधार पर अपनी प्रजा में धार्मिक एकता का प्रचार किया और दीनइलाही[2] की स्थापना की तो कुछ कट्टर मुसलमानों द्वारा उसका घोर विरोध किया गया।

प्रस्तुत आलोच्य कवियों के काल तक आते-आते वैदिक धर्म सुरक्षित तो रह गया था किन्तु उसका स्वरूप छिन्न-भिन्न हो गया था। वह अनेक वर्गों में बँट गया था और उन-वर्गों में भी अनेक नवीनताओं का समावेश हो गया था। सूफी-धर्म, कबीर आदि मतों द्वारा चलाए गए धर्म तथा योगियों और तान्त्रिकों के आडम्बरी धर्म भी विद्यमान थे। शैवों और वैष्णवों का झगड़ा अपने उत्कर्ष पर था। इसके साथ ही इसी समय एक ऐसा नूतन सम्प्रदाय भी उदित हो गया था जो बादशाह के दर्शन किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करता था। यह नर-पूजा विचित्र थी।

विविध विचार-पद्धतियों के पारस्परिक अन्तर के कारण धार्मिक शक्ति एक से अनेक हो चली जिससे मूल वर्णाश्रम धर्म के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों स्वरूपों पर बुरा प्रभाव पड़ा। धार्मिक शक्ति एक से अनेक होने के साथ ही अनेक प्रकृत दोष और पाखंड से भी युक्त हो गयी। जिनका लक्ष्य बाह्याडम्बर का जाल काटना था, वे स्वयं उसमें फँस गयी। यदि इन सबमें धर्म की अन्तरात्मा का भी मतैक्य होता तो इनके अनेक रहने पर भी संघर्ष न होता।[3]

आलोच्य मुक्तककारों में मुख्यतः गोस्वामी तुलसीदास जी ने सब पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और वे एक सजग धार्मिक नेता की भाँति, भारत के लिए सब प्रकार से वैदिक सनातन धर्म को हितकर समझकर उसकी प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील हुए। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को मेरुदण्ड माना और भगवान राम के आदर्श जीवन द्वारा भारतीय समाज में एक अपूर्व नवशक्ति का संचार किया। व्यर्थ के विवादों को मिथ्या सिद्ध कर और भारत की रीति

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग १, पृष्ठ ७०

२. अकबर द ग्रेट मुगल, पृ० १८२

३. डॉ० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० १६

नीति तथा धर्माचरण का महत्व सबको बताकर ऊँचा उठने का उपदेश दिया। अपनी सीमा में उन पर चाहे जिस धर्म का प्रभाव पड़ा हो, परन्तु इतना निश्चित है कि वे अधभक्त किसी के नही बने और वर्णाश्रम-व्यवस्था के माध्यम से वैदिक हिन्दू सनातन धर्म की प्रतिष्ठा की।

गोस्वामी तुलसीदास का ही अनुगमन अन्य राम काव्यकारो ने भी किया और सभी इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि हमारा वैदिक सनातन धर्म जीवत और बहुविध समर्थ बना रहे।

साहित्यिक परिस्थिति—राजनीति, समाज और धर्म के घनिष्ठ सम्बन्धो की चर्चा पहले की जा चुकी है। साहित्य जनता की चित्तवृत्तियो का जीवन आख्यान होने के कारण राजनीति, समाज और धर्म से स्वयमेव जुड जाता है। चूंकि आलोच्य काल मे राजनीति समाज और धर्म तीनो में एक व्यापक सक्रमण की स्थिति थी, इसलिए साहित्य मे भी उसका रूपायतन हुआ, विशेषत सामाजिक और धार्मिक मनोवृत्तियो एव विचारधाराओ का प्रतिफलन साहित्य मे अपेक्षाकृत अधिक वेग और विस्तार से होता है। धर्म का प्रवाह समाज की विस्तृत उर्वरा भूमि में कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओ मे चलता है, परन्तु उसकी यथार्थता पूर्णता एव जीवनता इनके सामजस्य मे ही प्राप्त होती है। साहित्य इन सबको वाणी देने का सर्वोत्तम माध्यम है। प्रस्तुत प्रतिपाद्य-काल मे साहित्य ने उन्हें ही अपना प्रमुख क्षेत्र बनाया।

स्वामी शकराचार्य ने अद्वैतवाद को अपनी भक्ति का मूल आधार-फलक बनाया था किन्तु व्यावहारिक-तल पर वह भक्ति के सम्यक् प्रसार के उपयुक्त नही था। अत स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना द्वारा उसे व्यावहारिक आधार प्रदान किया। विशिष्टाद्वैत के अनुसार जगत् के सारे प्राणी उस चराचर ब्रह्म के ही अश है। उसी से उनकी उत्पत्ति हुई है और अन्त में उसी मे उन्हें लीन हो जाना है। भक्ति द्वारा ब्रह्म के सामीप्य-लाभ से ही जीव का उद्धार हो सकता है। रामानुज के श्री सम्प्रदाय मे विष्णु या नारायण की उपासना है जिसकी शिष्य-परम्परा मे रामानन्द का नाम उल्लेखनीय है। रामानन्द ने सारे देश का भ्रमण करके अपना एक व्यवस्थित सम्प्रदाय चलाया। इनके लिखे केवल दो ग्रन्थ बताये जाते हैं जो सस्कृत मे हैं। तत्वत रामानुजाचार्य मतावलम्बी होते हुए भी इन्होंने अपनी उपासना-पद्धति का स्वरूप स्वतत्र रखा। अपनी उपासना मे वैकुण्ठ निवासी विष्णु को मान्यता न देकर इन्होने उनके अनेक अवतारों

में से लोक में लीला-विस्तार करने वाले अवतार 'राम' को छाँट लिया। इस प्रकार उन्होंने अपना इष्टदेव राम को बनाया और मूलमंत्र 'राम-नाम' को। राम को उन्होंने लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझा और मनुष्यमात्र को सुलभ सगुण भक्ति का अधिकारी माना। इसके लिए उन्होंने सिद्धों और नाथपंथियों के साहित्य एवं उपासना-पद्धति से प्रेरणा न लेकर महाभारत और पुराण आदि का सहारा लिया। रामानुज सम्प्रदाय में भक्ति का द्वार केवल द्विजातियों के लिए खुला था किन्तु रामानन्द ने सबके लिए खोल दिया। वे वर्ण और आश्रम की व्यवस्था को मानते हुए भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों की योजना भी स्वीकार करते थे। केवल उपासना-क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया। रामानन्द जी के शिष्यों की परम्परा लम्बी है। उसमें कबीर का नाम सर्वोपरि है। कबीर के इष्ट भी राम थे किन्तु वे घट-घट में व्याप्त रहने वाले राम थे। दशरथ-सुत राम को उन्होंने इसीलिए नहीं स्वीकार किया, क्योंकि उससे समाज के सभी वर्गों को समान लाभ नहीं था। समाज को भेद-भाव विरहित करने के लिए कबीर ने निर्गुण राम की उपासना को श्रेयस्कर समझा। डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार कबीर की शिक्षा में हमें हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है। यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी। कबीर की विशेषता इन्हीं धार्मिक पाखण्डों का स्पष्ट शब्दों में विरोध कर सत्यानुमोदन करने की है। कबीर ने निश्चय किया कि हिन्दू मुस्लिम विरोध का मूल कारण उनका अंधविश्वास है। धर्म का मार्ग संसार के कृत्रिम भेद-भावों से बिल्कुल रहित है। 'कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना। आपस में दोउ लरि-लरि मुए मरम न काहू जाना।' वास्तव में बंधुत्व के ये भाव कबीर द्वारा ही सर्वप्रथम व्यक्त किये गये थे। भक्ति-भाव के आंदोलन द्वारा भगवान के सामने सम-भाव का उपदेश तो रामानन्द ने भी दिया था पर जाति-विभाग और ऊँच-नीच के एकीकरण का साहस कबीर के पहले किसी ने भी नहीं किया।[१]

सगुण भक्ति की दो काव्य-धाराएँ थीं—एक कृष्ण-भक्ति शाखा और दूसरी राम-भक्ति शाखा। कृष्ण-भक्ति शाखा की काव्य-धारा में कृष्ण-प्रेम का अमृत प्रवाहित हो रहा था। यही धारा उस समय सर्वाधिक सशक्त और प्राणवानधारा थी, जिसे सूर जैसे महाकवि का वरदान प्राप्त था। इस काव्यधारा के द्वारा कृष्ण-प्रेम का जो पीयूष प्रवाहित हुआ वह निश्चय ही तत्कालीन समाज के लिए संजीवनी सिद्ध

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३७७

हुआ। किन्तु इसी के साथ हमे यह न भूलना चाहिए कि इस धारा में भी जीवन की समग्र-दृष्टि न होकर एकांगिता थी जिसे समय के थपेड़ों ने धीरे धीरे और भी विकृत कर दिया। आगे चलकर रीतिकाल मे तो इसका स्वरूप अत्यन्त निकृष्ट और गर्हित बन गया।

भक्तिकाल की इन विभिन्न काव्यधाराओ के साथ साथ वीरगाथाकालीन काव्यधारा भी अपनी जर्जरावस्था मे विकृत होकर साँस लेती रही। उसके स्वरूप मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया था और इस प्रकार की रचनाएँ यदा-कदा प्रकाश मे आ जाती थी, क्योकि उनके अनुकूल वातावरण का अभाव था। उनका महत्व केवल इतना ही कहा जा सकता है कि व अपनी परम्परा को जीवित बनाए हुए थी और अवशेष चिह्न के रूप मे जब-तब प्रकट हो जाया करती थी। इसके अतिरिक्त तत्कालीन राजाओ की छत्रछाया मे जिस प्रकार के साहित्य का सृजन हो रहा था, वह फारसी की गजलों तथा कव्वालियो से प्रभावित होता था और उसी प्रकार के साहित्य को प्रोत्साहित करता था। इस प्रकार के साहित्य के वर्ण्य-विषय किसी की विजय की बधाई, जन्म दिवस, राजकुल के विवाहोत्सव, राज-तिलक और अन्यान्य दरबारी त्योहार तथा कामाग्नि को प्रज्वलित करने वाले प्रसग होते थे।[1] राज्याश्रय मे पलने वाले कवि अपने आश्रयदाताओ की चाटु-कारिता मे ही लीन रहा करते थे। इसके अतिरिक्त बादशाह की प्रिय इमारतों तथा राज्य की कुर्सियों और मेजो आदि पर खुदवाने के लिए शेरो-शायरी की आवश्यकता रहा करती थी जिनके आधार पर कवियों को पुरस्कार भी मिला करते थे। तात्पर्य यह कि दरबारी साहित्य शासकों के विनोद और उनकी वैभव-शाली साज-सज्जा के प्रदर्शन का साहित्य था जिसमे न कोई जीवन था और न कोई रस।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है हिन्दी मे रामकाव्य अवधी और व्रजभाषा दोनों में प्राप्त है। अवधी मे रचा गया रामकाव्य प्रमुखत प्रबन्धात्मक है जबकि व्रज-भाषा मे रचा गया मुक्तक। तुलसीदास केवल अवधी भाषा मे प्रणीत रामकाव्य के ही सिरमौर नहीं हैं, अपितु व्रजभाषा मे रचे गये मुक्तक रामकाव्य के भी वही अग्रणी कवि-कलाकार हैं। तुलसीदास के अतिरिक्त अन्य व्रजभाषा मुक्तक राम-काव्य के प्रणेताओ मे—महाकवि सूरदास, प्राणचन्द, अग्रदास, नाभादास, सेना-पति, प्रतापकुँवरबाई और हृदयराम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

१ डॉ० राजपति दीक्षित तुलसीदास और उनका युग, पृष्ठ १७

ब्रजभाषा की व्यापकता—ढोला मारूरा दूहा आदि ब्रजभाषा की आरम्भिक रचनाएँ हैं। कई सन्त एवं भक्त कवियों ने भी इसी का आश्रय ग्रहण किया।[1] सूर पूर्व काल की रचनाओं में ब्रजभाषा का विकास रूप ही मिलता है। दूसरा उत्कर्ष काल भक्त महाकवि सूरदास से लेकर परवर्ती रीतिकालीन कवियों तक माना जा सकता है।

उत्तर भारत की मुख्य भाषा के रूप में ब्रज का व्यापक प्रयोग हुआ। अवधी, राजस्थानी का प्रयोग भी अनेक रचनाओं में मिलता है किन्तु ब्रज की तुलना में वह अत्यल्प है। ब्रज-भाषा का विस्तार कृष्ण-भक्ति के माध्यम के रूप में विशेष रूप से हुआ। कृष्णोपासना के साथ ब्रजभाषा भी आगे बढ़ती गयी। गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल में ब्रजभाषा के विस्तार का यही कारण माना जा सकता है किन्तु पंजाब तथा अन्य क्षेत्रों में ब्रजभाषा के प्रयोग से स्पष्ट है कि वह अपने युग की सर्वप्रान्तीय अथवा अन्तर्प्रादेशिक भाषा थी। कृष्ण-भक्ति तो उसके प्रचार-प्रसार के मूल में है ही किन्तु ब्रजभाषा के माधुर्य, लालित्य और चित्रमयता के कारण वह अधिक चित्ताकर्षक बन गयी।

ब्रजभाषा में कृष्ण-काव्य सम्बन्धी प्रचुर रचनाएँ उपलब्ध हैं। यदि यह कहा जाय कि मध्ययुगीन सम्पूर्ण कृष्ण काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है तो अनुचित न होगी। भक्तिकाल के अन्य अष्टछाप भक्त-कवियों तथा रीतियुग के रीतिमुक्त एवं रीतिबद्ध कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। गोस्वामी तुलसीदास ने भी ब्रजभाषा की व्यापकता के कारण अवधी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थी। उन्होंने केवल कृष्ण-काव्य ही ब्रज में नहीं लिखा वरन् राम-काव्य भी ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया, यह उनकी विशिष्टता थी। तुलसी की ब्रजभाषा विषयक कृतियों के अध्ययन से यह किंचित् मात्र भी पता नहीं चलता कि अवधी के विशेषज्ञ कवि की ये रचनाएँ हैं। उनका अवधी और ब्रज दोनों पर समान अधिकार परिलक्षित होता है।

रामचरित मानस की रचना गोस्वामी तुलसीदास ने अवधी में की थी और वह इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि राम-काव्य अवधी से उसी प्रकार सम्बद्ध हो गया था जिस प्रकार कृष्ण-काव्य ब्रजभाषा से सम्बद्ध कर लिया गया था। किन्तु तुलसी ने ब्रजभाषा में कवितावली, गीतावली, विनय-

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह . सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ ८

पत्रिका की रचना कर यह प्रमाणित कर दिया कि ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य और राम-काव्य दोनों कोटि की रचनाओं के लिए समान रूप से उपयोगी और महत्वपूर्ण है। गोस्वामी-तुलसीदास के भी पूर्व रामचरित सम्बन्धी काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया था। नाभादास और उनके गुरु अग्रदास ने ब्रजभाषा में रामचरित सम्बन्धी मुक्तक रचनाएँ लिखी। कालान्तर में सूरदास ने 'सूर सागर' के अष्टम स्कंध में रामचरित का सविस्तार वर्णन किया है। कई अन्य फुटकर कवियों ने भी ब्रजभाषा में रामकाव्य लिखा।

यह कहना सर्वथा उचित है कि ब्रजभाषा में कृष्ण-चरित का जितना विस्तार मिलता है, उतना राम-काव्य का नहीं। एक तो कृष्ण का जन्म-स्थान, क्रीडा स्थल, कार्य क्षेत्र आदि ब्रज प्रदेश ही था, इसलिए ब्रजभाषा और कृष्ण-भक्ति से सामजस्य होना स्वाभाविक है। कृष्ण-काव्य को ब्रजभाषा काव्य के नाम से कहा जाय तो उचित ही होगा। १५वीं सदी के अन्तिम काल से शुद्धाद्वैत मत के संस्थापक स्वामी वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी द्वारा संस्थापित 'अष्टछाप' के आठ भक्त-कवियों ने ब्रजभाषा में शृंगार और वात्सल्य की मधुर झांकी प्रस्तुत की। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' ब्रजभाषा गद्य की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। राधावल्लभी सम्प्रदाय के संस्थापक गोस्वामी हितहरिवंश तथा अन्य भक्त कवि हरिराम शुक्ल, व्यास, ध्रुवदास, चाचा हित वृन्दावन दास आदि ने ब्रजभाषा में अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री भट्ट जी, हरिव्यास जी, रसिक गोविन्द, सखी सम्प्रदाय के स्वामी हरिदास, नागरीदास, नरहरिदास आदि, चैतन्य सम्प्रदाय के रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी ने ब्रजभाषा के माध्यम से ही अपने सिद्धान्तों की विवेचना की है। भक्ति सम्प्रदायों से इतर अकबरी दरबार के कवि गग, बीरबल, तानसेन, टोडरमल, अब्दुर्रहीम खानखाना आदि ने ब्रजभाषा में रचनाएँ प्रस्तुत की है। ब्रजभाषा के संगीतज्ञ कवियों में तानसेन के अतिरिक्त गोपाल नायक, बैजू बावरा, नायक पांडे, बख्शू खां, गोस्वामी हरिदास, विष्णुदास, रामदास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

ब्रजभाषा सैकड़ों वर्षों तक इसलिए साहित्य-सृजन का माध्यम रही, क्योंकि उसमें संगीतात्मकता और माधुर्य आदि विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में वर्तमान थीं। ब्रजभाषा में लचीलापन, ग्रहणशीलता, समृद्धि, माधुर्य, संगीतात्मकता और संक्षिप्तता आदि गुण व्यापक रूप से मिलते हैं। ब्रजभाषा में नये-नये भावों और उक्तियों को लेकर अधिक स्पष्टता और सुबोधता के साथ देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दा

गों अपनाया गया है। उसमें विदेशी शब्दों को भाषा की प्रकृति के अनुसार ढाल कर प्रयोग किया गया है। अन्य बोलियों और भाषाओं के व्याकरणिक रूपों को उदारता के साथ ग्रहण किया गया है। सभी प्रकार के भावों—शृंगार, करुण, शान्त, वीर आदि की सरस अभिव्यक्ति मिलती है। ब्रजभाषा में आरम्भ से ही गेय काव्य की प्रधानता है। उसकी स्वाभाविक मधुरिमा, लय, ताल से बँधकर बहुत निखर उठी थी।[1] किसी अन्य भाषा में ये समस्त विशेषताएँ एकसाथ सम्पृक्त नहीं मिलती। इसलिए ब्रजभाषा प्रदेश, जाति की सीमाओं को लाँघकर जन-जन की कण्ठहार बन गई थी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

ब्रजभाषा की उपर्युक्त विशेषताओं का आधार उसकी भाषाविषयक विशिष्ट सरलता है। ब्रजभाषा के गठन में संयुक्त वर्णों का अभाव, तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग, कर्कश और परुष-ध्वनियों का निराकरण, प्रत्ययों के संयोग आदि के फलस्वरूप भाषा में स्वतः माधुर्य और कोमलता का समावेश हो जाता है। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति लचीलेपन की है इसलिए एक शब्द 'कृष्ण' के लिए कान्हा, कन्हैया, कन्हाई, किसन आदि का छन्द, लय और तुक की सुविधा के अनुसार प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार कोमल शब्द विन्यास के लिए नयन, वचन, पवन, भवन के लिए क्रमशः नैन, बैन, पौन, भौन आदि जैसे रूपों के प्रयोग हुए हैं।

ब्रजभाषा की उपर्युक्त चर्चा केवल इसी उद्देश्य से की गयी है कि यह स्पष्ट हो सके कि उसकी व्यापकता और लोकप्रियता से प्रेरित होकर ही अनेक कवियों द्वारा मुक्तक रामकाव्य सम्बन्धी रचनाओं का प्रणयन ब्रजभाषा में किया गया। इन कवियों ने राम-काव्य का सृजन ब्रजभाषा में कर इसके स्वरूप का और अधिक परिष्कार और परिमार्जन किया।

आलोच्य मुक्तक-ग्रंथ

आलोच्य विषय के अन्तर्गत मुख्यतः सूरदास, तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, सेनापति आदि द्वारा ब्रजभाषा में रचित मुक्तक रामकाव्य की विवेचना की गयी है। गौण रूप में अकबरी दरबार से सम्बद्ध गंग, ब्रह्म (बीरबल), रहीम, तानसेन आदि कवियों के स्फुट छंदों का भी यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है किन्तु उनकी रचनाओं में राम-कथा-सम्बन्धी कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। भक्तप्रवर

---

१. डॉ० सुरेन्द्रनाथ माथुर : १९वीं शताब्दी की ब्रजभाषा का अध्ययन, पृ० ११८ (डी० लिट्०, का अप्रकाशित शोधप्रबन्ध)

रामकथा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । सेनापति का आविर्भावकाल भक्ति और रीति युग के सधिकाल में माना जाता है किन्तु उनका 'रत्नाकर' सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल की रचना है । अतएव उसे भक्तियुग की परिधि मे लेना ही अधिक श्रेयस्कर समझा गया । रामकथा के मर्मज्ञ विद्वानो के मतानुसार ही इसे आलोच्य ग्रंथों मे समाविष्ट किया गया है । अकबरी दरबार के गग, ब्रह्म, रहीम आदि कवियो ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर रामविषयक केवल कुछ स्फुट छद ही कहे हैं । रामकथा से सम्बद्ध उनकी कोई उल्लेखनीय रचना प्राप्त नही होती । यहाँ पर अब उक्त आलोच्य ग्रथो का सक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा ।

सूर-राम-चरितावली—'सूर-राम-चरितावली' भक्तप्रवर सूरदास विरचित 'सूरसागर' के राम-चरित सम्बन्धी २९९ पदो का सग्रह है । सूरदास के राम-चरित सम्बन्धी जितने भी पद उपलब्ध हो सके है, वे सभी सपादक ने इस सग्रह मे सम्मिलित कर लिए है । यथासम्भव कोई भी पद छूटने नही पाया है । सूर-सागर की जितनी प्रतियाँ उपलब्ध थी, उन सबसे तो इन पदो की छान-बीन की ही गयी है, उनके अतिरिक्त 'विद्यामन्दिर' कॉकरौली की शोभाराम जी की हस्त-लिखित प्रति से भी कुछ पद लिए गए है जो सामान्य तथा मुद्रित प्रतियो मे नही मिलते । 'विद्यामन्दिर' में 'सूरसागर' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ है जिनमे पडित शोभाराम जी की लिखित प्रति सर्वाधिक प्राचीन है और उसी मे सबसे अधिक पद भी है ।

उपर्युक्त हस्तलिखित प्रति में कुछ पद ऐसे है जिनकी पक्तियाँ पूरी नही है । उनमें स्थान-स्थान पर शब्द छूटे हुए है । सम्भवतः उस प्रति के लेखक ने जिस प्रति से पद लिए हैं उस मूल प्रति मे वे अश कीडों के खाने या अन्य किसी कारण से नष्ट हो गए । प्रस्तुत संग्रह के सपादक ने वे अधूरे पद भी ज्यो के त्यो ले लिए हैं किन्तु अनुवाद मे उन लुप्त स्थानो पर जिस भाव के शब्द हो सकते थे, वह भाव कोष्ठको में दे दिया है जिससे पद के अर्थ की सगति यथासम्भव मिल जाय ।

डॉ० रामकुमार वर्मा का अनुमान है कि सूरसागर के नवम् स्कन्ध मे रामावतार की कथा के अधिक विस्तार मे न होने का कारण सम्भवतः यह है कि रामकथा का महत्व उस समय स्पष्ट रूप से साहित्य मे घोषित न हुआ था अथवा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के कारण सूरदास ने कृष्णभक्ति की महत्ता

रामभक्ति से अधिक घोषित की थी। जिस प्रकार का दृष्टिकोण चौरासी वैष्णव की वार्ता में है, वैसा ही दृष्टिकोण सूरदास ने अपने सामने रखा। इस रामकथा पर तुलसीदास के 'मानस' का किंचित् प्रभाव भी लक्षित नहीं है। 'सूरसागर' की कथा अधिकतर 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित है। परशुराम का राम से मिलन विवाह के बाद ही न होकर अयोध्या लौटते हुए मार्ग में हुआ है, जैसे प्रसंग वाल्मीकि-रामायण में है।'

सूरदास द्वारा वर्णित रामकथा में लोक शिक्षा अथवा धार्मिक एवं सामाजिक मर्यादा का भी विचार नहीं है जैसा तुलसीदास के मानस में है। 'सूरसागर' में दशरथ अपने सत्य पर दृढ़ रहने के बदले राम से अयोध्या में रुक जाने की याचना करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सूरसागर के नवम् स्कंध पर 'मानस का प्रभाव और उसका आदर्श नहीं है।

सूरदास जी के आराध्य यद्यपि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं किन्तु उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराम में अभेद-बुद्धि रखी है। यही कारण है कि श्री रामचन्द्रजी का स्मरण व गुणकीर्तन भी उन्होंने उसी भाव से किया है। यह अलग बात है कि श्रीकृष्ण की भक्ति के समान वे उसका उतना विस्तार नहीं कर सके। इसके मूल में हम उनका सम्प्रदायगत आग्रह ही विशेष जान पड़ता है। प्रस्तुत संग्रह के पदों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान राम के प्रति भी उनकी भक्तिभावना उसी कोटि की थी जैसी श्रीकृष्ण जी के प्रति, भले ही वे उनके आराध्य नहीं थे। आराध्य तो कोई एक ही हो सकता था, दूसरी बात यह कि वे सम्प्रदाय-विशेष में दीक्षित भी थे।

ब्रजभाषा मुक्तक-राम-काव्य के प्रणेताओं में भक्त-शिरोमणि सूरदास का नाम सदैव आदर के साथ लिया जायेगा, यह निर्विवाद है। उनकी 'रामचरितावली' इस शृंखला का वह जगमगाता रत्न है जिसके अमन्द प्रकाश में सहृदय भक्तजन चिरकाल तक आनन्द लाभ उठाते रहेंगे।

कवितावली—कवितावली के रचनाकाल का अभी तक विद्वानों को कोई ठोस प्रामाणिक आधार नहीं प्राप्त हो सका है। कवि ने स्वतः तो उसका रचनाकाल दिया नहीं और कवि के जीवनकाल की कोई प्रति ही ऐसी प्राप्त है जिसके माध्यम से किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। हाँ, यह अवश्य है कि कवितावली में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख हुआ है जिनका समय ज्योतिष की

१ डॉ रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७५८-५९

गणना और ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है। इस प्रकार के उल्लेख रुद्रबीसी मीन के शनि तथा महामारी सम्बन्धी हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय पदों में उनकी वृद्धावस्था का संकेत भी मिलता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ 'तुलसीदास' में इन सब पर सविस्तार विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मीन के शनि के लिए सं० १६६९-७१ तथा रुद्रबीसी के लिए स० १६५६-७६ और महामारी के लिए स० १६७३-८० की तिथियाँ लेना ही अधिक उचित होगा। इससे स्पष्ट है कि कवितावली में एक निश्चित अंश उनकी अंतिम अवस्था का भी है।

जहाँ तक सकलन की बात है उसमें अनुमान का ही आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि ग्रंथ की बहुतेरी प्राप्त प्रतियों एवं मुद्रित प्रतियों में पाठ की तुलना करने पर यथेष्ट अन्तर मिलता है। ऐसा लगता है कि कवि अपने जीवनकाल में इस कृति का संपादन नहीं कर सका था और संग्रह उसकी मृत्यु के बाद किया गया। कवितावली में ही 'बाहुक' भी जुड़ा हुआ मिलता है जिसके लिए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि बाहुक कवितावली की प्रतियों में अधिकतर एक परिशिष्ट की भाँति मिलता है और वैसे भी वह प्रकृत्या कवितावली के अन्तिम अंश से किसी प्रकार भिन्न नहीं है।[1]

रचना का स्वरूप और वर्ण्य-विषय—कवितावली सवैया-घनाक्षरी-छप्पय-झूलना छन्दों का कथानक निरपेक्ष गोस्वामी तुलसीदास का परम उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इसमें रामकथा के प्रमुख एवं मार्मिक स्थलों के सरस और रोचक वर्णनात्मक वृत्तों के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थिति के परिचायक, आत्मवृत्त के सूचक, दैवी आपदाओं के द्योतक और स्वतंत्र वर्णन विषयक छन्दों का सकलन किया गया है। इसमें अनेक दैवी आपदाओं तथा विभिन्न स्थानों और समयों पर लिखे गए छन्द इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि इसकी रचना एक अत्यन्त लम्बे समय में हुई है। ग्रन्थ राम कथा के परम्परागत विभाग के अनुसार सात काण्डों में विभाजित है। इनमें छन्द-संख्या का अनुपात व्यतिक्रमित है। बाल काण्ड में २२ छंद, अयोध्या काण्ड में २८ छंद, अरण्य काण्ड में १ छंद, किष्किंधा काण्ड में १ छंद, सुंदरकाण्ड में ३२ छंद, लंका काण्ड में ५८ छंद और उत्तर काण्ड में १८३ छंद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ३२५ छंदों का यह मुक्तक ग्रन्थ है। उत्तर काण्ड का विस्तार बहुत अधिक है। उसमें कवि की भिन्न विषयों पर स्फुट रचना है।

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : तुलसीदास, पृ० २५२

शेष छ काण्ड मिलकर भी उत्तरकाण्ड की समानता नहीं कर सकते।

पं० सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि तुलसीदास के भक्तों ने बहुत से कवित्त और सवैए, जो तुलसीदास ने समय समय पर लिखे थे, कवितावली में सकलित कर दिए है जिनका राम कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे छंद अधिकतर उत्तरकाण्ड मे ही हैं। सीतावट, काशी, कलियुग की अवस्था, बाहुपीर, राम-स्तुति, गोपिका-उद्धव-सवाद, हनुमान स्तुति, जानकी स्तुति आदि ऐसे ही स्वतत्र सदर्भ हैं।[1]

साराशत यह कहा जा सकता है कि कवितावली गोस्वामी जी की भक्ति-भावना एव विचार-दर्शन और आत्माभिव्यक्ति का एक अत्युत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है जिसमे प्रतिभा को नव्य दीप्ति विस्तार प्राप्त हुआ है। व्रजभाषा मुक्तक राम-काव्यो मे इसका स्थान अन्यतम है।

गीतावली—गीतावली की रचना कब हुई और उसके मूल पाठ का स्वरूप क्या था, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। कवि ने स्वत उसकी रचना तिथि का कहीं उल्लेख नहीं किया है और न उसम किसी ऐसी घटना का ही सकेत मिलता है जिसके आधार पर कृति के रचना-काल का निश्चय किया जा सके। उसकी जितनी भी प्रतिया प्राप्त हैं या मुद्रित सस्करण उपलब्ध है, उन सबका आकार प्रकार लगभग एक जैसा ही है जो सम्भवत कवि के जीवन-काल मे ही तैयार किया गया जान पडता है। यदि अन्य सस्करणो की प्रामाणिकता सदिग्ध भी हो तो भी कम से कम दो सस्करण तो उनके जीवनकाल मे अवश्य हुए थे—एक पदावली रामायण और दूसरा गीतावली। पदावली रामायण का गीतावली का रूप कब मिला, यह कह सकना कठिन है।

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने 'मूल गोसाई चरित' के आधार पर गीतावली का रचना काल स० १६१६-२८ माना है।[2] प० रामनरेश त्रिपाठी न गीतावली को मानस से पूर्व स० १६१५ और १६२० के बीच की रचना मानते हुए[3] अपन तर्क प्रस्तुत किय हैं, किन्तु उनके तर्क परस्पर विरोधी होने के कारण स्वय अपनी प्रामाणिकता को सदिग्ध बना देते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा 'गीतावली' का 'मानस' के बाद की और स० १६४३ के लगभग की रचना मानने के पक्ष मे हैं और उसका कारण यह बतात हैं कि गीतावली की कथा मे वाल्मीकि-रामायण की

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४१४-१५
२ डॉ० श्यामसुदर दास . गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७७-७८
३ प० रामनरेश त्रिपाठी : तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० ३८०-३९९

गणना और ऐतिहासिक साक्ष्यो से ज्ञात होता है। इस प्रकार के उल्लेख रुद्रबीसी मीन के शनि तथा महामारी सम्बन्धी है। इनके अतिरिक्त कतिपय पदो मे उनकी वृद्धावस्था का सकेत भी मिलता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ 'तुलसीदास' मे इन सब पर सविस्तार विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि मीन के शनि के लिए सं० १६६९-७१ तथा रुद्रबीसी के लिए स० १६५६-७६ और महामारी के लिए स० १६७३-८० की तिथियां लेना ही अधिक उचित होगा। इससे स्पष्ट है कि कवितावली मे एक निश्चित अश उनकी अतिम अवस्था का भी है।

जहाँ तक सकलन की बात है उसमे अनुमान का ही आश्रय लेना पडता है, क्योकि ग्रथ की बहुतेरी प्राप्त प्रतियो एव मुद्रित प्रतियो मे पाठ की तुलना करने पर यथेष्ट अन्तर मिलता है। ऐसा लगता है कि कवि अपने जीवनकाल मे इस कृति का सपादन नही कर सका था और सग्रह उसकी मृत्यु के बाद किया गया। कवितावली में ही 'बाहुक' भी जुड़ा हुआ मिलता है जिसके लिए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि बाहुक कवितावली की प्रतियो मे अधिकतर एक परिशिष्ट की भाँति मिलता है और वैसे भी वह प्रकृत्या कवितावली के अन्तिम अश से किसी प्रकार भिन्न नही है।[1]

रचना का स्वरूप और वर्ण्य-विषय—कवितावली सवैया-घनाक्षरी-छप्पय-झूलना छन्दों का कथानक निरपेक्ष गोस्वामी तुलसीदास का परम उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इसमे रामकथा के प्रमुख एव मार्मिक स्थलो के सरस और रोचक वर्णनात्मक वृत्तो के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थिति के परिचायक, आत्मवृत्त के सूचक, दैवी आपदाओं के द्योतक और स्वतत्र वर्णन विषयक छन्दो का सकलन किया गया है। इससे अनेक दैवी आपदाओ तथा विभिन्न स्थानो और समयो पर लिखे गए छन्द इस तथ्य की ओर इगित करते हैं कि इसकी रचना एक अत्यन्त लम्बे समय मे हुई है। ग्रन्थ राम कथा के परम्परागत विभाग के अनुसार सात काण्डो मे विभाजित है। इनमें छन्द-सख्या का अनुपात व्यतिक्रमित है। बाल काण्ड मे २२ छद, अयोध्या काण्ड में २८ छद, अरण्य काण्ड मे १ छद, किष्किधा काण्ड मे १ छद, सुदरकाण्ड मे ३२ छद, लंका काण्ड मे ५८ छद और उत्तर काण्ड मे १८३ छंद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ३२५ छदो का यह मुक्तक ग्रन्थ है। उत्तर काण्ड का विस्तार बहुत अधिक है। उसमे कवि की भिन्न विषयों पर स्फुट रचना है।

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : तुलसीदास, पृ० २५२

शेष छ काण्ड मिलकर भी उत्तरकाण्ड की समानता नहीं कर सकते।

पं० सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि तुलसीदास के भक्तों ने बहुत से कवित्त और सवैए, जो तुलसीदास ने समय समय पर लिखे थे, कवितावली में सकलित कर दिए है जिनका राम कथा मे कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे छद अधिकतर उत्तरकाण्ड मे ही हैं। सीतावट, काशी, कलियुग की अवस्था, बाहु पीर, राम-स्तुति, गोपिका-उद्धव सवाद, हनुमान स्तुति, जानकी-स्तुति आदि ऐसे ही स्वतत्र सदर्भ है।[1]

साराशत: यह कहा जा सकता है कि कवितावली गोस्वामी जी की भक्ति-भावना एव विचार-दर्शना और आत्माभिव्यक्ति का एक अत्युत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है जिसमे प्रतिभा को नव्य दीप्ति विस्तार प्राप्त हुआ है। व्रजभाषा मुक्तक राम-काव्यो मे इसका स्थान अन्यतम है।

गीतावली—गीतावली की रचना कब हुई और उसके मूल पाठ का स्वरूप क्या था, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। कवि ने स्वतः उसकी रचना-तिथि का कही उल्लेख नहीं किया है और न उसमे किसी ऐसी घटना का ही सकेत मिलता है जिसके आधार पर कृति के रचना-काल का निश्चय किया जा सके। उसकी जितनी भी प्रतियां प्राप्त हैं या मुद्रित सस्करण उपलब्ध है, उन सबका आकार-प्रकार लगभग एक जैसा ही है जो सम्भवतः कवि के जीवन-काल मे ही तैयार किया गया जान पडता है। यदि अन्य सस्करणो की प्रामाणिकता सदिग्ध भी हो तो भी कम से कम दो सस्करण तो उनके जीवनकाल मे अवश्य हुए थे—एक पदावली रामायण और दूसरा गीतावली। पदावली रामायण को गीतावली का रूप कब मिला, यह कह सकना कठिन है।

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर गीतावली का रचना काल स० १६१६-२८ माना है।[2] प० रामनरेश त्रिपाठी ने गीतावली को मानस से पूर्व स० १६१५ और १६२० के बीच की रचना मानते हुए[3] अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनके तर्क परस्पर विरोधी होने के कारण स्वय अपनी प्रामाणिकता को सदिग्ध बना देते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा 'गीतावली' को 'मानस' के बाद की और स० १६४३ के लगभग की रचना मानने के पक्ष में हैं और उसका कारण यह बताते हैं कि गीतावली की कथा मे वाल्मीकि-रामायण की

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४१४-१५

२. डॉ० श्यामसुदर दास : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७७-७८

३ प० रामनरेश त्रिपाठी : तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० ३८०-३९९

कथा से जिनकी प्रतिलिपि गोस्वामी जी ने स० १६४१ में की थी—पर्याप्त साम्य पाया जाता है।[1] चूंकि वाल्मीकि रामायण के साम्य वाले स्थलों पर ही 'रामाज्ञा प्रश्न' से भी गीतावली का साम्य पाया जाता है, इसलिए डॉ० वर्मा के मत को अन्तिम नहीं कहा जा सकता।

रचना का स्वरूप और वर्ण्य-विषय—गीतावली राम-भक्ति परक ३३० स्फुट गीतों का संग्रह है। इन गीतों में कोई क्रम और सम्बद्धता नहीं है, यहाँ तक कि विभिन्न काण्डों के विभाजन में भी किसी अनुपात का ध्यान नहीं रखा गया है। बालकाण्ड अपेक्षाकृत सबसे बड़ा है जिसमें ११० पद और अयोध्याकाण्ड में ८९, अरण्य काण्ड में १७, किष्किन्धाकाण्ड में २, सुन्दरकाण्ड में ५१, लंकाकाण्ड में २३ और उत्तरकाण्ड में ३८ पद हैं। सभी पद गेयत्व और संगीतात्मकता से युक्त हैं।

गीतावली की रचना मुक्तक में हुई है। अतएव गीतकाव्य की दृष्टि से इस पर विचार करना सर्वाधिक आवश्यक है। सफल गीतकाव्य के लिए आत्माभिव्यक्ति, विचारों की एकरूपता, संगीत और संक्षिप्तता आवश्यक है। गीतावली में संगीत का तो प्रधान स्थान है किन्तु शेष बातों की अवहेलना सी की गयी है। ग्रन्थ में प्रबन्धात्मकता न होते हुए भी घटनाओं की वर्णनात्मकता में पद बहुत लम्बे हो गए हैं। बालकाण्ड में रामजन्म से सम्बन्ध रखने वाले पद २४ पंक्तियों से कम है ही नहीं। दूसरा पद तो ५० पंक्तियों का है जिसमें आत्मनिवेदन भी नहीं है, केवल रामजन्म सम्बन्धी वर्णनात्मक कथन है। विविध घटनाओं की सृष्टि के कारण विचारों में एकरूपता संभव नहीं थी।

ब्रजभाषा की यह एक श्रेष्ठ कृति होने के साथ-साथ काव्यकला का उत्कृष्ट निदर्शन इस काव्य ग्रन्थ में हुआ है। ब्रजभाषा के माधुर्य के साथ भावों की कोमलता का सामंजस्य मणि-कांचन के योग का दृश्य प्रस्तुत करता है। रस की दृष्टि से शृंगार रस ही प्रधान है और उसमें भी वियोग शृंगार के वर्णन में कवि-कौशल अधिक प्रकट हुआ है। अयोध्याकाण्ड में वियोग शृंगार का चरम विकास देखा जा सकता है। अन्य रस भी यथास्थल आये हैं परन्तु कवि का मन उनमें अधिक नहीं रमा है। जहाँ तक छन्दयोजना की बात है, गीतावली में छंद विशेष न रखकर २१ रागों की योजना की गयी है। रागों का क्रम इस

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४१९-२१

प्रकार आया है—आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठा, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोडी, सारग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, चचरी, बसत और रामकली।

गीतावली का कथानक रामचरित मानस के कथानक से कुछ भिन्नता लिये हुए है। कुछ बातो का समावेश एक मे है तो कुछ बातो का दूसरी मे। इस प्रकार मानस का समस्त क्रम गीतावली मे नही अपनाया गया है। यहाँ कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र रहा है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त[1] व डॉ० विमलकुमार जैन[2] के समीक्षा ग्रन्थो मे इन तथ्यो पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

साराशत गीतावली मे तुलसी की मधुर अनुभूति का चित्रण है। अनेक स्थानो पर मनोदशा के बडे करुण चित्र हैं। तुलसीदास ने इसके लिए ब्रजभाषा के माधुर्य का अक्षय कोष प्रयुक्त किया है। भाषा मे तत्सम शब्दो के साथ तद्भव शब्दो के प्रयोग ने ब्रजभाषा को बहुत स्वाभाविक और मधुर बना दिया है। जिस प्रकार तुलसीदास को अवधी पर अधिकार था, उसी प्रकार ब्रजभाषा पर भी। अलकारो का प्रयोग भी मौलिक है पर अधिकतर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग, अप्रस्तुत प्रशसा अलकारो का ही प्रयोग किया गया है। गुणो मे माधुर्य और प्रसाद का प्राधान्य है। यद्यपि इस ग्रन्थ म कवि का कोई आध्यात्मिक या दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित नही है, पर जहाँ तक राम की कथा के कोमल स्वरूप का सम्बन्ध है, वह बडी सफलता के साथ 'गीतावली' मे प्रदर्शित हुआ है। राम का सौन्दर्य और ऐश्वर्य ही 'गीतावली' की आत्मा है।[3]

विनय पत्रिका—विनयपत्रिका गोस्वामी तुलसीदास जी के २७९ स्फुट पदो का एक सग्रह ग्रन्थ है। कवि ने इसके रचनाकाल का उल्लेख नही किया है और न कृति के किसी पद मे कही किसी ऐसी घटना का ही उल्लेख मिलता है जिसका सम्बन्ध ज्योतिष की गणना अथवा ऐतिहासिक साक्ष्यो के आधार पर किसी तिथि के साथ किया जा सके।

---

१ डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० २४४
हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० १२२

२ डॉ० विमलकुमार जैन तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० १७४, १७६-७७

३ डॉ० रामकुमार वर्मा . हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५८३

वेणीमाधवदास ने 'विनयपत्रिका' (विनयावली) का रचनाकाल सं० १६३९ के लगभग दिया था, जब वे मिथिला-यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले थे।[1] उससे यह भी विदित होता है कि कलियुग से सताये जाने पर तुलसीदास ने अपने कष्ट के निवारणार्थ इस ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ से यह तो अवश्य ज्ञात होता है कि तुलसी ने अपनी दारुण व्यथा प्रकट करने के लिए यह ग्रन्थ लिखा, पर रचनाकाल का निर्णय अंतर्साक्ष्य से नहीं होता। रचना की प्रौढ़ता के आधार पर उसके हनुमान-बाहुक के समय में रचे होने का आभास होता है।

विनयपत्रिका की एक प्रति कवि के जीवनकाल की भी प्राप्त है। यह प्रति सं० १६६६ की है और उसका नाम 'रामगीतावली' दिया हुआ है। परन्तु वह प्रति कवि हस्तलिखित नहीं है। कवि ने न तो उसकी प्रतिलिपि ही की है और न संशोधन ही। इस आधार पर डॉ० गुप्त का कहना है कि रामगीतावली सं० १६६६ के पहले की रचना होगी, यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है।[2] रामगीतावली मे कुछ पद ऐसे भी प्राप्त है जो कवि की वृद्धावस्था की ओर स्पष्ट संकेत करते है। इससे यह द्योतित होता है कि 'रामगीतावली' के पदों की रचना भी एक विस्तृत काल-क्षेत्र मे हुई। रामगीतावली के एक पद की पंक्ति—'तुलसिदास अपनाइऔं कीजै न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे'[3] के आधार पर डॉ० गुप्त अनुमान लगाते है कि कवि ने उक्त कथन कम से कम ६० वर्ष की अवस्था से पूर्व न किया होगा और संपादन रामगीतावली का उसके बाद ही किसी समय ६४-६५ वर्ष की अवस्था में अर्थात् सं० १६५३ के लगभग किया होगा।

'रामगीतावली' को 'विनयपत्रिका' का रूप कब मिला, यह कहना कठिन है। कारण यह है कि न तो कवि ने कहीं इस विषय का उल्लेख किया है और न कवि के जीवन-काल की कोई प्रति ''विनयपत्रिका' पाठ की प्राप्त है, ''रामगीतावली' की सम्पूर्ण प्रति प्राप्त न होने से यह अनिश्चित है कि कौन से पद विनयपत्रिका-पाठ में ऐसे है जो पहले से रामगीतावली की सम्पत्ति नहीं थे। इसलिए प्राप्त रामगीतावली के अतिरिक्त विनयपत्रिका का जो अंश है उसमे

१. मूल गोसाईं चरित, दोहा ५१
२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : तुलसीदास, पृ० २४१
३. विनयपत्रिका, पद सं० १३२

एसे उल्लेखो को ढूढना जिनका सम्बन्ध किन्ही तिथियो से स्थापित किया जा सके। उसके विषय निर्वाह और शैली के साक्ष्य पर भी कोई अनुमान करना ठीक न होगा। फिर भी यह प्राय निश्चित मान। जा सकता है कि 'विनयपत्रिका' पाठ का सकलन कवि ने स्वत अपने जीवन-काल मे किया होगा, क्योकि 'रामगीतावली' पाठ के अतिरिक्त उसकी जितनी भी प्रतियाँ मिलती हैं, उनमे आकार प्रकार विषयक कोई भी अन्तर आपस मे नही है।[१]

रामगीतावली का पाठ १७६ गीतो पर समाप्त हो जाता है किन्तु 'विनय-पत्रिका' की दूसरी हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियो का पाठ २७९ गीतो पर समाप्त होता है और रामगीतावली के पाच गीत विनयपत्रिका मे नही मिलते, जब कि 'गीतावली' म मिलते है, यद्यपि वे पद रामायण मे प्राप्त नही होते। इसी प्रकार पदो के सग्रह क्रम मे भी उल्लेख योग्य अन्तर है। रामगीतावली को विनयपत्रिका का वर्तमान कलेवर देने के लिए पूर्ववर्ती पाठ मे न केवल पदो का क्रम बढता गया बल्कि यदि अधिक नही तो कम से कम एक सौ आठ नये गीत भी जोडे गए। रामगीतावली पाठ किसी अन्य प्रति मे न मिलने के कारण सम्भव यह है कि 'पदावली रामायण' की प्रति की भाति 'रामगीतावली' की प्रति भी कवि की उसी नाम की स्वहस्तलिखित प्रति की प्रथम प्रतिलिपि हो और इस प्रतिलिपि के तैयार होने के कुछ ही दिनो बाद 'रामगीतावली' रूप को नष्ट कर और उसके गीतो मे और अधिक गीतो को जोडकर कवि ने 'विनय-पत्रिका' का पाठ तैयार कर दिया हो। विनयपत्रिका पाठ की प्राप्त प्रतियो मे सबसे प्राचीन स० १७६० की है। जहाँ तक पता चलता है, इसका पाठ मुद्रित पाठ से अभिन्न है।[२]

विनयपत्रिका के जो विभिन्न पाठ मिलते हैं उनमे कुछ भाषायी विभेद भी पाया जाता है, परन्तु उससे मूल विषय-वस्तु मे कोई अन्तर नही पडता। श्री वियोगीहरि की लाला भगवानदास जी द्वारा सपादित सटिप्पण सस्करण और सभा द्वारा प्रकाशित मूल संस्करण अधिक शुद्ध जान पड़े हैं। कही-कही पर बैजनाथ जी की प्रति का पाठ भी उन्हे अधिक शुद्ध जँचा है। श्री वियोगीहरि ने इन सब पर भाषा की दृष्टि से भी विचार किया है।

रचना का स्वरूप और वर्ण्य-विषय—सामान्यत विनयपत्रिका को कविता-

१ डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० २४३

२ डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० २०४-२०५

अपनी दोनों रचनाओं मे रसिक संज्ञा ऐसे भक्तो को दी है जो राम की रसमयी लीलाओ का ध्यान करते हैं।[1] अग्रदास ने अपने गुरु श्री कृष्णदास पयहारी के दिवंगत होने पर रसिक रामोपासना के बिखरे सूत्रो को समेट कर एक नयी साधना पद्धति का विकास किया और उसे रसिक सम्प्रदाय के नाम से स्थापित किया। अग्रदास की प्रकाशित रचनाओ मे ध्यानमंजरी, अष्टयाम पदावली, अग्र-ग्रन्थावली (कुंडलिया) को दो खंड उपलब्ध है। ध्यानमजरी, अष्टयाम पदावली क्रमश रामध्यानमजरी, रामाष्टयामपदावली, हितोपदेश के नामो से भी अभिहित किया गया है। कविरचित एक अन्य 'अष्टयाम' सस्कृत भाषा में प्रकाशित मिलता है। कविरचित अग्रसागर अथवा शृंगार सागर और पदावली दो अन्य रचनाओ का भी उल्लेख किया जाता है। अग्रसागर तो अनुपलब्ध है किन्तु पदावली की एक हस्तलिखित प्रति के पदो का प्रकाशन जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे किया है यद्यपि ये पद कविरचित अष्टयामपदावली मे पहले से ही प्रकाशित मिलते है। यहाँ पर प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओ का सक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा।

ध्यानमजरी—यह रचना ८० रोला छदों मे लिखी गयी है जिसमे अयोध्या के प्राकृतिक सौंदर्य, सरयू के महात्म्य, राम-सीता के रूपसौदर्य, उनके अगो की वेशभूषा आदि का अत्यन्त मनोहारी वर्णन हुआ है। ध्यानमजरी का टीकारहित एक सस्करण प० श्री रामवल्लभ शरण जी द्वारा स० १९९७ वि० का प्रकाशित मिलता है। एक बहुत प्राचीन प्रति रसरगमणि जी की मकरद माधुरी टीका सहित उपलब्ध है। टीका स्वय रसिकोपासना का एक स्वतत्र ग्रन्थ है। टीका की शैली पुरानी है पर तत्व निरूपण प्रभावशाली है।[2]

कवि ने ध्यानमजरी की रचना की द्वारा रसिक-साधना का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया है और गोपनीय रहस्य का पूर्णतया प्रकाशन किया है।[3] कवि की यह स्पष्ट धारणा है कि ईश्वरानुभूति रसिक भावना के द्वारा ही

१. डॉ भगवती प्रसाद सिंह : रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृष्ठ १४०

२. श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र : रामभक्ति में मधुर उपासना, पृ० १९१

३. श्री गुरु सन अनुग्रह ते असगोपुर वासी।
रसिक जनन हितकरन रहसि यह ताहि प्रकासी ॥
—डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ८८

सम्भव है, अन्य भाव के द्वारा उसका बोध नहीं हो सकता।[1] इस रसधार का आस्वादन कर लेने पर ज्ञान, योग, तप आदि छाँछ की तरह नीरस से लगते हैं।[2] इस प्रकार कवि ने ज्ञान, योग आदि पर रसिक भाव की श्रेष्ठता दिखायी है। अग्रदास ने इस रचना का हेतु रामचरित के श्रवण और उसके ध्यान को आनन्ददायक बताया है।[3] अतएव उक्त रचना का साम्प्रदायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व है।

अष्टयाम पदावली—अग्रदास की दूसरी महत्वपूर्ण रचना पदावली है जिसमे अग्रदास, अग्रअली, अग्रस्वामिनी, अग्रस्वामि, अग्रसहचरी की छापें मिलती है। अग्रदास रसिक सप्रदाय मे अग्रअली के नाम से विख्यात है जिसकी पुष्टि सप्रदाय के अनेक भक्तिकवियो ने की है। सप्रदायेतर विश्वसनीय स्रोतो—'सगीत राग कल्पद्रुम' और 'शिवसिंह सरोज' मे भी अग्रदास के नाम मे उद्धृत छदो मे अग्र-अली की छाप मिलती है। अग्रदास उनका शरणागति सूचक नाम था और अग्रअली उनके महली परिकर स्वरूप की सज्ञा थी।[4] अष्टयाम मे अष्ट प्रहर की सेवा का वर्णन है। इसमे वाह्य सेवा और मान सेवा होती है। मधुरोपासना मे अष्ट-याम सेवा मुख्य अग है।[5] अष्टयाम पदावली मे रामचन्द्रजी के जागरण से लेकर शयन तक का वर्णन किया गया है। प्रात काल उठने के समय की अग छवि का वर्णन, उपवनविहार, मुखप्रक्षालन, तेलउबटन, जलक्रीडा, यज्ञ, दान, सीता द्वारा सास ससुर का पूजन, कलेवा, चौपड, आखेट, मध्याह्न—जागरण,—सरयू विहार, रासक्रीडा, सखा सखियों द्वारा रामलीला, वसन्त, होली, हिंडोला, ब्यारू

---

१ यह दपति वर ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावैं।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहु नहिं पावैं॥
—ध्यानमजरी, छन्द स० ७२

२ अमर अमृत रसधार रसिकजन यह रसपागैं।
नहि को नीरस ज्ञान योग तप छोई लागैं॥
—ध्यानमजरी, छन्द स० ७३

३ परमसार यह चरित सुनत श्रवणन अघहारी।
ध्यान परम कल्याण सन्तजन आनन्दकारी॥
—ध्यानमजरी, छन्द सख्या ७४

४ डॉ भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति मे रसिक सप्रदाय, पृ० ३८०

५ श्री भुवनेश्वर मिश्र · रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृ० १८७

(रात्रि भोजन), शयन आदि पदो का विविध रागो मे वर्णन हुआ है। इससे युगल दम्पति की मधुरक्रीडाओं, शृंगारिक चेष्टाओ के वर्णनों की प्रधानता मिलती है। उपलब्ध पदावली मे केवल अग्रदास के ही पद संकलित नही है, उसमे अन्य मधुरोपासक कवियों के अनेक पद भी मिलते है, मुख्य रूप से रसिक अली, रामसखे, रामचरण, मधुरअली, युगलबिहारी, कृपा निवास, मोहन अली आदि के कतिपय पद इसमे दे दिये गये हैं। गोस्वामी तुलसीदास के भी दो पद मिलते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है, केवल अग्र, अगदास, अग्रअली, अग्रसहचरी और अग्रस्वर्णमनी छाप वाले पद ही आलोच्य कवि द्वारा रचित कहे जा सकते हैं। यहाँ पर इन छापों के दो-एक उदाहरण पादटिप्पणी मे द्रष्टव्य है।[1]

प्रस्तुत रचना की व्रजभाषा की प्रामाणिकता भी कही-कही सन्देहास्पद सी जान पड़ती है। यह अशुद्धियाँ अधिकाशतः वर्तनी सम्बन्धी है। सम्भवतः लिपिकारो के प्रमोद के फलस्वरूप ही यह अधिक सम्भव है। स्वामी अग्रदास द्वारा भाषा की ऐसी अशुद्धियो की सम्भावना नही जान सकती।

अग्र-ग्रंथावली—कवि की अन्य रचना 'कुडलिया' है जिसका प्रकाशन अग्र-ग्रथावली के नाम से दो खडो मे स्वामी राजकिशोरवरशरण जी ने क्रमशः १९३५, १९५८ में किया है। इस रचना को हितोपदेश उपपाणावावनी के नाम से भी अभिहित किया गया है। इस नाम से कतिपय पाडुलिपियाँ खाज मे प्राप्त हुई है।[2] कवि ने प्रथम खण्ड मे २५ और दूसरे खड मे ४७ कुडलियाँ दी

१. (अ) देखो झूलन राघो डोल।
जनकसुता लीन्हें संग सोभित गौर श्याम तन लोल।
अग्र अलि सुनि-सुनि सुख पावति बोलहि मीठे बोल॥
—स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली, पद सं० ३९७
ना० प्र० पत्रिका, काशी पृ० ३३९,

(ब) सखी मोहि राम भावै।
भावै नही पितावन सजनी सारगपानि सोहावै।
अग्रस्वामि मोहिनी मत्र लिए चितवन चितहि चुरावै॥
—वही, पद सं० ३२, पृ० २१

(स) आज बसंत पंचमी पूजा श्री रघुवर की बधाई।
अग्रदास गावहिं श्री रघुवर फगुआ परमपद पाई॥
—वही, पद सं० ९२, पृ० ६८

२. डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह . रामभक्ति मे रसिक संप्रदाय, पृ० ३८१

हैं। छंद का नाम 'कुडलिया छप्पय' दिया गया है जिसमें छ के स्थान पर सात चरण प्रयुक्त हुए हैं किन्तु अंतिम चरण पहले चरण की आवृत्ति मात्र है। इस प्रकार कुडलिया में मूलतः छः चरण ही हैं जिसमें दोहा और रोला मात्रिक छंदो का सम्मिश्रण हुआ है। कवि के कुडलिया प्रयोग मे कुछ विशिष्टता है जिसका विवेचन काव्य-कला प्रसंग में दिया गया है। कवि ने 'कुंडलिया' में मानव जीवन की क्षणभंगुरता, नीति-उपदेश, माया, मोह लिप्सा, ब्रह्मोपासना आदि विषयों का अन्योक्ति रूप में वर्णन सरल ब्रजभाषा में किया है। इसमें लोकोक्तियों का प्रधानता दी गयी है।

पहले कहा जा चुका है कि अग्रदास की अप्रकाशित रचनाओं में 'पदावली' के ५१ पदों का प्रकाशन डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी में किया है।[1] वस्तुतः इनमें से प्रायः सभी पद कवि की उपर्युक्त प्रकाशित रचना अष्टयाम पदावली में संकलित मिलते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि विरचित अष्टयाम अथवा रामाष्टयाम में पदावली के पदों को एक साथ मिला दिया गया है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। कि अष्टयाम पदावली में अनेक अन्य कवियों के पद भी मिले हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अष्टयाम पदावली में डॉ० सिंह द्वारा उल्लिखित रामाष्टयाम और राम ज्यौनार दोनों रचनाओं के पद आ गए हैं।[2]

नाभादास-अष्टयाम—रसिक सम्प्रदाय-परम्परा में नाभादास को अग्रदास का शिष्य माना जाता है। कहा जाता है कि इनका पालन-पोषण अग्रदास ने किया था और बड़े होने पर उन्होंने ही इनको मन्त्र दीक्षा देकर 'नारायणदास' नाम रखा। रसिक-परंपरा के अनुसार इनका आत्मसंबंधी नाम 'नाभाअली' भी कहा गया है। अग्रदास की कृपा से ही इन्हें रसिक साधना की प्रक्रिया का बोध हुआ और उन्हीं की आज्ञा से उन्होंने 'भक्तमाल' की रचना की।[3]

अष्टयाम—नाभादास रचित अष्टयाम अथवा रामाष्टयाम ५०९ छंदों की रचना है। पुस्तक के आरम्भ में एक सोरठा है जिसमें गुरु की वन्दना की

---

१ डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक २-४, सं० २०१८, पृ० ३२९-३४६

२ डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक २-४, सं० २०१८, पृ० ३३३

३ डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ३८४

गयी है। सम्पूर्ण पुस्तक में १ सोरठा, ६२ दोहे और ४४६ चौपाइयाँ हैं। दोहा और चौपाई का कोई क्रम नहीं है। कवि ने पुस्तक की रचना का कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि गुरुवर (अग्रदास) ने सज्जन पुरुषों से प्रेरित होकर अष्टयाम के रचने की आज्ञा दी जिसको उन्होंने शिरोधार्य कर ग्रंथ का प्रणयन किया।[1] ग्रंथ का प्रकाशन प० मदनमोहन शुक्ल द्वारा अयोध्या से हुआ है। कवि ने प्रस्तुत रचना में रामचन्द्र जी, उनके बन्धुबान्धवों, राजमहिषियों की अष्ट प्रहर की दिनचर्या का सुन्दर वर्णन किया है। अन्तःपुर अप्रतिम की साज सज्जा, राम-सीता का जागरण, राम और सीता का रूप सौंदर्य, स्नानविधि, जल-क्रीडा, धार्मिक अनुष्ठान, हवन आदि शृंगारिक प्रसाधन, वेशभूषा, विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, भोजनशाला, चौपड़ क्रीडा, भोजन के समय राम और सीता का हास-परिहास, शयनकुंज में प्रेमक्रीडा, अश्वशाला, गजशाला, मृगशाला तथा भाइयों के उपवन आदि का विचरण, चौगान क्रीडा, पतंगबाजी, सीता द्वारा गुरु-पत्नियों की पूजा, पारिवारिक सुख-संयोग, अनेक प्रकार की राग-रागिनियों में सखियों का गायन-वादन, विवाह लीला आदि विविध प्रसंगों का प्रभावपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ की विशेषता है।

कवित्त-रत्नाकर—कवित्त-रत्नाकर रीतिकाल के लब्धप्रतिष्ठ कवि सेनापति द्वारा विरचित ग्रन्थ है। यह एक संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें पाँच तरंग हैं। पहली तरंग में ९७ कवित्त हैं जिनमें से कुछ प्रारंभिक कवित्तों को छोड़कर शेष सभी कवित्त श्लिष्ट हैं। दूसरी तरंग में शृंगार सम्बन्धी ७४ छंद हैं जिनमें से केवल एक छप्पय है, अवशिष्ट कवित्त। तीसरी तरंग में ऋतु वर्णन सम्बन्धी ६२ छंद हैं, ८ कुंडलियाँ हैं तथा शेष कवित्त। चौथी तरंग में ७६ छंद हैं जिनमें राम-कथा कही गयी है। इनमें ६ छप्पय तथा अवशिष्ट कवित्त हैं। पाँचवी तरंग में भक्ति सम्बन्धी ८८ छंद हैं जिनमें से १२ छंद चित्र-काव्य के हैं। कुछ छंद ऐसे भी हैं जो कई तरंगों में समान रूप से पाये जाते हैं। पुनरावृत्ति वाले छंदों को जोड़ देने पर 'कवित्तरत्नाकर' में कुल मिलाकर ३८४ छन्द हैं। वैसे छन्दों की पूर्ण संख्या ३९४ है।[2]

---

१. सज्जन उर प्रेरित जिए, रघुवर आज्ञा दीन।
सो बल मन अवलम्ब लहि, बचन शीश धरि लीन॥
—अष्टयाम, नाभादास, छंद सं० ३

२. पं० उमाशंकर शुक्ल : संपादक कवित्त-रत्नाकर, भूमिका, पृ० ६

इस ग्रंथ में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शांत रस सम्बन्धी रचनाएं पायी जाती हैं। अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का अधिक विस्तार है। शृंगार में भी सेनापति का ध्यान संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार की ओर अधिक है। उनका विरह वर्णन प्रधान तथा प्रवास हेतुक और विरह न्तुक है। सेनापति को मानवजीवन की सुकुमार भावनाओं से उतना अनुराग न था जितना उत्साहपूर्ण वीरोल्लास से। उनकी इस प्रवृत्ति का परिचय उनके 'रामायण वर्णन' को देखने पर मिल सकता है। राम कथा मानव जीवन से सम्बन्धित नाना भावनाओं का भण्डार है जिसका विरले कवि ही सफलता पूर्वक चित्रित कर सकते हैं। महाकवि ही उसका सांगोपांग चित्रण करने में सफल होते हैं। सेनापति रामकाव्य की इस विशदता से भलीभाँति परिचित थे। इसलिए समग्रत उन्होंने सफलतापूर्वक अपनी तूलिका से रूपायित किया है। सीता-स्वयंवर, परशुराम मिलन मारीच-वध हनुमान का लंका जाना सेतु बाँधने का आयोजन हनुमान तथा राक्षसों का युद्ध अंगद का रावण के पास जाना राम रावण युद्ध तथा सीता की अग्नि परीक्षा के स्थल उन्होंने छाँटे हैं। ये सभी स्थल वीरोत्साह सम्बन्धी हैं। शेष प्रसंगों को कवि ने एकदम छोड़ दिया है। मुख्यत उसका ध्यान राम रावण हनुमान आदि के शौर्य तथा पराक्रम की ओर ही अधिक रहा है। इनसे अवकाश पाने पर अवश्य उसने भक्ति भाव से प्रेरित होकर राम का गुणगान किया है। वीर भाव के चित्रण में सेनापति की यह विशेषता रही है कि उन्होंने राम तथा रावण दोनों का समान उत्कर्ष वर्णित किया है। इसी से उनके वर्णनों में अधिक सजीवता आ सकी है।

भक्ति के क्षेत्र में जहां तक राम को नारायण रूप मानने की बात है सेनापति गोस्वामी तुलसीदास की भांति उन्हें परब्रह्म परमेश्वर ही मानते हैं। उन्होंने रामावतार के लोकोपकारी गुणों का वर्णन सविस्तार किया है। विशेषत राम के पराक्रम का वर्णन उन्होंने बड़ी ही तन्मयता से किया है। उनके वीरत्व तथा भक्त वत्सलता ने जितना उन्हें आकृष्ट किया है, उतना उनके असीम सौन्दर्य ने नहीं। भगवान के प्रति सेनापति के हृदय में सच्चा एवं अगाध अनुराग था और वे उसकी अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सफल हुए हैं। पं० उमाशंकर शुक्ल के शब्दों में सेनापति की भक्ति भावना में हृदय की तल्लीनता और अनुभूतियों की सच्चाई है।[1]

---

१ कवित्तरत्नाकर, भूमिका, पृ० २६

सेनापति ब्रजभाषा के प्रयोग मे अत्यन्त दक्ष थे। भाषा के साधारण से साधारण शब्दो द्वारा उन्होने बडी सुन्दर रचना की है। ब्रजभाषा से इतना परिचित होने के कारण ही उन्हे श्लिष्ट काव्य लिखने मे अपूर्व सफलता मिली है। उनकी भाषा मे संस्कृत शब्दो के तत्सम रूपो का प्रयोग कम हुआ है। प्रादेशिकता के विचार से कवित्तरत्नाकर की भाषा में खडी बोली के कतिपय रूपो का प्रभाव लक्षित होता है। कवित्तरत्नाकर की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।[1] वह सुव्यवस्थित तथा परिमार्जित है। उसमें शब्दो के विकृत रूप अधिक नही मिलते, एकाध जगह गढे हुए शब्द अवश्य देखे जाते है।

कवित्तरत्नाकर की अधिकाश प्रतियाँ भरतपुर ही में पायी गयी है। इससे इस बात का अनुमान दृढ हो जाता है कि भरतपुर के समीपस्थ किसी स्थान से सेनापति का सम्बन्ध अवश्य रहा होगा, फलत. उन पर भरतपुर की भाषा का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव स्वाभाविक है। वैसे सेनापति की भाषा का मूल ढाँचा बुलन्दशहर का है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कवित्त-रत्नाकर' भाषा-भाव और अनुभूति तथा अभिव्यक्ति सभी दृष्टियो से ब्रजभाषा की उत्कृष्ट कृति है और उनकी दूसरी रचना काव्य-कल्पद्रुम के उपलब्ध न होने के कारण उनकी कीर्ति का एकमात्र अक्षय आधार स्तम्भ भी है। ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य की शृखला में 'कवित्त-रत्नाकर' की चौथी तरग का अप्रतिम योगदान सर्वथा सराहनीय है।



१. कवित्त-रत्नाकर, भूमिका, पृ० ५०, ५२

द्वितीय अध्याय

मुक्तक रामकाव्यों की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन

राम की लगभग सम्पूर्ण कथा को लेकर हिन्दी के जो मुक्तक काव्य लिखे गये हैं, उनमे चार प्रमुख हैं—सूरदास रामचरितावली, गीतावली, कवितावली और कवित्त-रत्नाकर। इनकी कथा का तुलनात्मक अध्ययन चार उप-शीर्षकों के अन्तर्गत करना है—राम-जन्म का हेतु, राम-कथा का विभाजन, राम-कथा के मार्मिक स्थल और कवि विशेष की मौलिक उद्भावनाएँ।

१. **राम-जन्म का हेतु**—हिन्दी के प्राय सभी मुक्तककारो ने राम को पर-ब्रह्म माना है। अतएव उनके लिए प्रयुक्त 'जन्म' शब्द 'अवतार' का पर्यायवाची है। भारतीय सभ्यता के अनुसार परब्रह्म का अवतार धर्म की हानि होने पर होता है। उसका उद्देश्य रहता है-धर्म की पुनर्स्थापना,[1] परन्तु आलोच्य कवियो म सूरदास ने राम-जन्म का हेतु बताया है—जय और विजय नामक अपने पार्षदो का उद्धार—

जय अरु विजय पारषद दोई। विप्र सराप असुर भए सोई॥
रावन कुंभकरण सोइ भए। राम जनक तिनके हित लए॥[2]

यही बात 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध के एक पद मे सूरदास ने दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कही है—

जय अरु विजय कथा नहिं कछुवै, दस मुख-विसाम।[3]

'गीतावली' मे राम-जन्म के हेतु पर प्रत्यक्ष रूप से कुछ नही कहा गया है। परन्तु परोक्ष रूप से उसका उद्देश्य सत समाज को सुखी और दुष्टों का दलन ही बताया गया है—

सुखी भए सन भूमिसुर खलगन मन मलिनाई।
सबै सुमन बिकसत रवि निकसत, कुमुद बिपिन बिलखाई॥[4]

---

१ गीता ४/७ २. सूरदास रामचरितावली, पद १
३ सूरसागर, प्रथम स्कंध, पद २१५ ४. गीतावली, पद २-३

इसी प्रकार कवित्त-रत्नाकर के कवि ने भी राम की 'खराऊँ' को देव-दुख-दहन,[1] उनके चरणो को 'विश्व के भरन'[2] और स्वय राम को 'भवखडन', 'त्रिभु-वन-पालन-धार', 'विश्व-मंडल-करन' आदि बताया है।[3] इसमे अवतार सम्बन्धी जनमान्यता की ही पुष्टि की गयी है।

२. राम-कथा का विभाजन—'वाल्मीकि रामायण' के प्रायः सभी सस्करणो मे राम-कथा का विभाजन सात काण्डों मे किया गया है। आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर।[4] इन काण्डों मे से 'आदि' को 'बालकाण्ड' और 'युद्ध' को 'लकाकाण्ड' नाम दिये गये है। 'अध्यात्म रामायण' में शेष नाम इसमे ज्यो के त्यो अपना लिये गये है।[5] सूर-रामचरितावली के वर्तमान सस्करण मे काण्डों मे केवल प्रथम पद का ही उल्लेख है, 'उत्तरकाण्ड' का नाम कही नही दिया गया है। यद्यपि उसकी प्रचलित कथा उसके अन्त मे वर्णित है। 'गीतावली' और 'कवितावली' में सातो काण्ड मिलते है, यद्यपि अतिम की कथा मे दोनों मे कई अन्तर है। 'कवित्त रत्नाकर' में है तो पूरी राम कथा, परन्तु उसका विभाजन काण्डो मे नही किया गया है। ऐसी स्थिति मे आलोच्य कवियो की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन काण्डो के अनुसार ही करना उपयुक्त होगा।

क. बालकाण्ड की कथा—'सूर रामचरितावली' मे बालकाण्ड की कथा १६ पदो मे वर्णित है। इनमें प्रारम्भ के तीन पदो मे राम-जन्म पर अयोध्या-वासियो की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हुई है। राम का अवतार होने पर अनेक देशो से विविध प्रकार के रत्न, स्वर्ण, मोतियो के हार उपहारस्वरूप आये है। घर-घर मगलगीत और बधाइयाँ गाई जाने लगी। मागध, वदीजन यशगान करते है। गाय, हाथी, घोडे, वस्त्रादि दान मे दिये जा रहे है,[6] मगल-गीत गाए जा रहे है, जन्म-विधि-अभिषेक आदि कराया जा रहा है और सामवेद की ध्वनि दशरथ के आगन मे हो रही है। राम के अवतार की जन्म-तिथि मगलवार नवमी है।[7] प्रथम पद से राम के जन्म का हेतु बताया गया है। जय-विजय नाम के दो द्वारपाल थे जो ब्राह्मण के शापवश हिरण्याक्ष और हिरण्यकशपु हुए जिनको भगवान ने वाराह और नृसिंह अवतार लेकर मारा था, वे ही अब पुन. रावण और कुभकरण हुए है, उनके उद्धार हेतु राम ने अवतार लिया है।[8]

१. कवित्त रत्नाकर, छंद १
२ वही, छद २
३. वही, छद ३-४.
४. तुलसीदास का कथा-शिल्प, पृ० २
५. वही, पृ० ३
६ सूर-रामचरितावली, पद स० २
७. वही, पद स० ३
८. वही, पद स० १

जनकपुर में राम की सुकुमारता को देख कर सीता भगवान से राम को पति-रूप में प्राप्त करने एवं धनुष भंजन की प्रार्थना करती हैं। अन्तर्यामी राम सीता के मन की बात जान लेते हैं और धनुष तोड़ देते हैं।[1] एक पद में दशरथ का आगमन एवं वैवाहिक विधि का संकेत है। देवता प्रसन्न होकर दुंदुभी-वाद्य विशेष बजा रहे हैं। इसके बाद कंगन खेलने का संकेत तथा वैवाहिक अवसर पर गालियों एवं जुएँ का संकेत है।[2] एक अन्य पद में परशुराम का रोष, राम की नम्रता तथा परशुराम का ब्राह्मण-स्वरूप राम को समझकर वन लौट जाने के विषय में कहा गया है।[3] अनेक प्रकार के दहेजों को लेकर दशरथ प्रसन्न होकर अवध जाने के लिए विदा होते हैं तब राजा जनक के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़ते हैं।[4]

'गीतावली' के बालकाण्ड में ११० पद हैं जो सम्पूर्ण काव्य के लगभग अर्द्ध-भाग के बराबर हैं। इसके प्रथम पद में राम-जन्म एवं उसका माता पिता, समाज एवं देवलोक पर प्रभाव, दानादि, नगर की सजावट, रामभक्तों की गति और खलों पर उसका विषम प्रभाव वर्णित है।[5] साथ ही पुत्र जन्म के गीत (सोहिला) और नृत्य-वाद्यों के नामों का विस्तृत वर्णन है।[6] इसके पश्चात् सुगन्धित जलों से सेचन, भीड़, मंगल-गीत, वैदिक जातकर्म, अवधवासियों की प्रसन्नता[7] के अतिरिक्त लंका-निवासियों तथा लंकाधिपति रावण की व्याकुलता अभिव्यक्त हुई है।[8] अवध में देव, पितृ-गण गुरु एवं विप्र का आदर सम्मान होना है और याचकों को इतना दान मिला है कि अब वे स्वयं दानी हो गए हैं। उमा, रमा, ब्राह्मणी के आशीर्वाद एवं प्रशंसा का भी प्रसंग है। छठी, बरही तथा नामकरण-संस्कारों का वर्णन है।[9] अवध की शोभा, देवताओं की प्रसन्नता, देव-पूजन, नगर की साज-सज्जा, लोक रीति, वेद-विधि की पूर्ति, अवध में मंगल शकुन एवं लंका में अशकुन एवं संकट आदि प्रसंग वर्णित हैं।[10] माताओं एवं देवताओं का वात्सल्य एवं शिशुओं के चलने के प्रयत्न की उत्कंठा, राम का स्नान, अंजन, काजल, उबटन आदि रूपों का वर्णन हुआ है। नजर लगने पर राम का दूध न पीना,

---

१ सूर रामचरितावली, पद सं० ९
२ वही, पद सं० १०
३ वही, पद सं० ११
४ वही, पद सं० १५
५ गीतावली, बालकाण्ड, पद सं० १
६ वही, पद सं० २
७ वही, पद सं० ३
८ वही, पद सं० ४
९ वही, पद सं० ५
१० वही, पद सं० ६

गुरु वशिष्ठ द्वारा नजर उतारना, राजा दशरथ का प्रसन्न होकर गुरु का सम्मान करना वर्णित है।[1] यहाँ राम के वास्तविक स्वरूप का परिचय मुनि वशिष्ठ द्वारा दिया गया है।

विश्वामित्र राम-अवतार के हेतु को जानकर अपने यज्ञ-रक्षणार्थ राम-लक्ष्मण की याचना के विचार से पुलकित हो उठे। विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना करने पर दशरथ राम के अतिरिक्त सभी कुछ देने के लिए प्रस्तुत है।[2] वशिष्ठ दशरथ को राम का ईश्वरत्व एव उनके अवतार का कारण बताते है। दशरथ यह जान कर मुनि के चरण-स्पर्श कर राम-लक्ष्मण को उनके साथ भेज देते हैं।[3] इस प्रसग मे भी राम-लक्ष्मण के रूप-सौंदर्य और स्वभाव का सुन्दर चित्रण हुआ है। अहिल्या-उद्धार, उसके द्वारा राम का दर्शन, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा का वर्णन है।

जनकपुर मे राम के दर्शन के लिए नर-नारियाँ अपने भवनो पर चढ जाती है और उनके नेत्र एव शरीर पुलकित हो उठते है। जनक राम-लक्ष्मण के विषय मे पूछते है—'कौन बडे भागी के सुकृत परिपाके है।' महाराज जनक के द्वारा परिचय प्राप्त करने से सम्बन्धित ये पक्तिया उनकी महानता की प्रतीक है। इनमे राजा जनक के स्नेह का सुन्दर चित्रण हुआ है। विश्वामित्र उनका परिचय देते हुए राम-लक्ष्मण के द्वारा राक्षसो का विनाश किये जाने का बखान करते है।[4] राम-लक्ष्मण के दर्शन के लिए सम्पूर्ण नगर मघाजल के समान उमड पड़ता है। जनक राम के स्नेह से शिथिल अग हो गए है।

नगर की नर-नारियां राम-सीता के विवाह के लिए शकुन देखती हैं।[5] विश्वामित्र का प्रभाव, जानकी को राम का पति-रूप मे मिलने की आशा, उद्यान मे राम और सीता का परस्पर दर्शन, पूर्वराग, सीता का गौरी से राम को पति-रूप मे मागना, राम का स्वयंवर मे आना, उनके आगमन से राजाओ के ऐश्वर्य का फीका पड जाना आदि वर्णित है।[6] जनकपुर की स्त्रियाँ राम के दर्शन के लिए व्याकुल है। ये राम के रूप-सौंदर्य को देखकर शिथिल अग हो गयी है। राम के प्रति उनकी भावनाएँ अत्यधिक स्नेहपूर्ण है और उनको पलक मारने का वियोग भी असह्नीय है। स्त्रियाँ कहती हैं कि राम और सीता की जोडी जब

१ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० १३
२. वही, पद स० ४९
३. वही, पद सं० ५१
४. वही, पद सं० ६६
५ वही, पद स० ७०
६. वही, पद सं० ७३

स्वय विधाता ने निर्मित की है तो उनका विवाह स्वाभाविक ही है। शिव को राम प्रिय हैं और पार्वती को सीता। अत विवाह का सयोग होना निश्चित ही है। शूलपाणि राजा जनक पर अनुकूल है।[1]

गुरु की आज्ञा से राम धनुष भजन हेतु आते है। राम जनक के योग के विषय मे प्रशसा करते है। वदीजन राजा जनक के प्रण एव धनुष की गरिमा, रावणादि महान् वीरो की विवशता एव विफलता के विषय मे कहते है और राजा जनक अपना विषाद व्यक्त करते हैं जिनको सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो उठे और उन्होने भी अनेक उपमानो द्वारा अपनी शक्ति का परिचय दिया।[2] यह सुनकर जनक एव नगर-नर नारी प्रसन्न हुए। राम लक्ष्मण नेत्रो से सकेत कर और जनक को निराश देखकर धनुष के समीप जाते हैं। लक्ष्मण जी कश्यप, वाराह दिग्पालो को राम के धनुष भजन के समय सतर्क करते है। धनुष भजन एव उसके फलस्वरूप जनक, जानकी एव अन्य जनो, देवो की प्रसन्नता एव धनुष भजन की ध्वनि से देवताओ, दिग्पालो मे भय उत्पन्न हो जाता है लक्ष्मण की आज्ञा का पालन कश्यप, वाराह, शेषादि द्वारा किया जाता है। धनुष राम के स्पर्श से टूट कर स्वय हल्का हो जाता है। देवताओ की प्रसन्नता व्यक्त की गयी है।[3] सीता राम को जयमाल पहनाती हैं।

यहाँ तीन पदो मे राम लक्ष्मण के विषय मे कौशल्या की चिन्ता वर्णित है। वे शका करती हैं कि वे सकोचवश गुरु विश्वामित्र से अपनी आवश्यकताओ के विषय मे नही कह पाते होगे। राजा दशरथ को कर्त्तव्य-विवश होकर पुत्रो को देना पडा तभी से उनका कोई समाचार नही मिला।[4] तभी शतानन्द जनक की ओर से दशरथ के समीप आते है। वे राम लक्ष्मण की कुशलक्षेम के समाचार के साथ विवाह की पत्रिका लाए है। भरत यह समाचार अन्त पुर मे माताओ को देते हैं। अवध मे मगल गीत एव वाद्य बजने हैं। बारात अवध से चल देती है।[5] जनकपुर मे बारात का आगमन और सीता राम की युगल जोडी एव विवाह का वर्णन केवल एक पद मे वर्णित है। लक्ष्मण और उर्मिला के विवाह का भी सकेत है। वधू सीता एव वर राम का रूप वर्णन तीन पदो मे है। अयोध्या लौटने पर रानी कौशल्या का राम की भुजाओ पर न्यौछावर होना

---

१ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ८०

२ वही, पद स० ८९

३ वही पद स० ९९

४ वही, पद स० ९९-१०१

५ वही, पद स० १०५

एव पुत्रों और पुत्रवधुओं की आरती करना दो पदों मे वर्णित है।[1]

'कवितावली' की कथावस्तु २२ पदों में वर्णित है। उसमे राम के जन्म का वर्णन नहीं है। कथा का प्रारम्भ एक सखी की वार्ता से होता है जो दशरथ की गोद मे राम के अलौकिक रूप का दर्शन करती है।[2] चार पदों में राम की बाललीला का वर्णन है।[3] दो पदों मे शिशु का रूप-चित्रण है।[4] एक पद में जनकपुर मे सीता-स्वयवर मे आये हुए राजाओ के वैभव का कथन है और एक पद उनकी विशेष शक्तियों के विषय मे कहा गया है तथा उनके रूप की छटा अनेक उपमानों द्वारा वर्णित है।[5] एक पद मे राजाओ के धनुष-भजन के प्रयत्न का कथन है किन्तु उनके सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए अपितु धनुष और भी अधिक भारी हो जाता है।[6] अन्य पद मे राम के धनुषभजन के साथ पृथ्वी की दयनीय दशा, दिग्पाल, गजराज, शुकर, कश्यप, शेषनाग, देवताओ के विमान, सूर्य एव चन्द्रमा का परस्पर सघर्षण, रावण की भयभीत दशा एव सभी की कपित, विखडित एव विषम स्थिति तथा उनके अन्तर्गत मे विद्यमान हलचल का मार्मिक चित्रण है।[7] एक पद मे हृदय एव नयनाभिनदन राम की कोमल अवस्था एव ध्यान किंचित्-प्रयत्न मात्र से धनुष को विखडित की अभिव्यक्ति तथा सीता की स्नेहमयी सखियों के कथन का वर्णन है। धनुष-भजन के द्वारा सीता, जनक, सखियों एव नगरजनों की मनोवाछित आकाक्षाओ की पूर्णता दिखायी गई है। राम के रूप, गुण, शक्ति की चर्चा, सखियो के द्वारा की गई है तथा वे राम की माता कौशल्या पर अपने को न्योछावार करती है—'कौसिला की कोखि पर तोप तन वारिये री'।[8] इस कथन से राम की महानता, उनकी अलौकिक शक्ति एव कौशल्या की गौरव-गरिमा की अभिव्यक्ति हुई है। राम के गले मे जयमाला देखकर पृथ्वी एव आकाश-लोक मे प्रसन्नता की लहर दौड जाती है। आकाश मे भी पृथ्वी-लोक के समान ही वाद्य एव नृत्य होने लगते हैं तथा देवताओ द्वारा पुष्पो की वर्षा की जाती है। सखिया आनन्दप्लावित हृदय से आशीर्वाद देती हैं।[9]

---

१. गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ११०
२ कवितावली, बालकाण्ड, छद सं० १
३ वही, छद सं० २-५
४. वही, छद स० ६-७
५. वही, छंद स० ८-९
६. वही, छद स० १०
७ वही, छंद स० ११
८ वही, छंद सं० १२
९ वही, छद सं० १४

मनरंजन नृप, दुर्जन राजाओं से राम, सीता, दशरथ और जनक की प्रशंसा तथा राम और सीता की अलौकिकता की चर्चा करते हैं।[1] सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, महादेव, शेषनाग, नारद, विष्णु, लक्ष्मी, हनुमान द्वारा राम और सीता के अलौकिक व्यक्तित्व की पुष्टि हुई है। इसकी मुख्य विशेषता है—सीता स्वयवर के प्रसंग में हनुमान का नामोल्लेख। व्रज-भाषा भक्तियुगीन अन्य मुक्तक रामकाव्यों मे इसका उल्लेख नही मिलता।[2] एक पद मे सीता का वधू रूप एव राम सीता के वैवाहिक प्रसग का कथन है, सीता की अलौकिक सौम्य मूर्ति के दर्शन में अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं।[3]

कवितावली के कुल २२ पदो म रामकथा का बालकाण्ड समाप्त हो जाता है जबकि गीतावली म यह १०२ पदो म वर्णित है। कवितावली म बालकाण्ड का आरम्भ ही राम के बालस्वरूप के अद्वितीय रूप-माधुरी से होता है किन्तु गीतावली की अपेक्षा यह अत्यधिक सक्षेप मे है। जैसा कि पहले कहा गया है—कवितावली की एक मुख्य विशेषता है—भक्तशिरोमणि हनुमान का राम के विवाह म उपस्थित होना जो कि गीतावली और सूर सागर म नही है। शायद तुलसी की कवितावली मे भक्त हनुमान का विशप ध्यान आ गया और इनकी उपस्थिति बालकाण्ड के प्रारम्भ मे ही दिखा दी गयी है।

'कवित्तरत्नाकर म बालकाण्ड सम्बन्धी कथा प्रथम २८ छदों में वर्णित है। आरम्भ मे राम के गुणगान म कवि ने अपनी असमर्थता प्रकट की है। राम को भगवान का अवतार कहा गया है, व राम परब्रह्म पूर्णपुरुष हैं—'पूरो अवतार भयो पूरन पुरुष को।[4] आठ स दस छन्दो मे बालक राम का अलकृत सौन्दर्य वर्णित है।[5] अगल दो छदा मे सीता स्वयवर का वणन है तथा आगत राजाओ के वैभव अभिमान, चमक दमक की अभिव्यक्ति है, किन्तु राम के चरण-कमल पडते ही, सूर्यवश के सूर्य राम के उदित होते ही कुमुदिनी सदृश देव असुर सभी की चमक-दमक, सौंदर्य सुषमा लुप्त हो जाती है और केवल सूर्यवशी राम का आलोक सभी को आलोकित करने लगता है। सभी उपस्थित राजाओ का धैर्य जाता रहता है और वे चकित होकर राम के रूप का अवलोकन करते रह जाते

---

१ कवितावली, बालकाण्ड, छद स० १५
२ वही, छद स० १६ ३ वही, छद स० १७
४ कवित्तरत्नाकर चौथी तरग, छद स० ७ ५ वही, छद स० ११-१२

है।[1] अन्य छंद मे राम धनुष-भजन के लिए आगे बढते हैं तो सभी देवताओ के विमानों से आकाश भर जाता है और सभी राम के द्वारा धनुष-भंग की प्रतीक्षा करने लगते हैं। सुन्दरियो द्वारा अपनी चित्रशालाओ पर चढ कर राम के रूप-सौंदर्य की प्रशंसा किया जाना भी इसी प्रसंग मे वर्णित है।[2] अगले छद मे भी राम के अद्वितीय सौंदर्य की ही झांकी अंकित है।[3] फिर दो छंदो मे धनुष-भंग के समय पृथ्वी, दिग्गजो आदि की कारुणिक-कंपित दशा का चित्रण है, शिव का हृदय भी कंपित हो उठता है और शेषनाग की तो बुरी दशा हो जाती है।[4] तदुपरान्त धनुष-भग के पश्चात् की स्थिति एवं सीता द्वारा राम को जयमाल पहनाना तथा परस्पर दर्शन और आकर्षण आदि की ओर संकेत है।[5] राम और सीता के सौंदर्य का वर्णन भी इसी प्रसग मे हुआ है। इसके बाद राम और सीता का विवाह वर्णित है तथा दोनो का परस्पर प्रेम सागर मे निमग्न होना बताया गया है।[6] अगले तीन-चार छदो मे पुनः वरवेशधारी राम एव वधू सीता के रूप-सौंदर्य की शीतल चन्द्रिका बिखरायी गयी है। इसी अवसर पर विधि को सीता के अद्भुत रूप से स्पर्धा की चर्चा है जिससे प्रेरित होकर वह बार-बार चन्द्र का उनसे अधिक सुन्दर बनाना चाहता है, परन्तु पूर्णिमा को अपनी असफलता देखकर, चन्द्र का इच्छित स्वरूप न बना पाने पर वह उसे घटाना प्रारम्भ कर देता है।[7] तत्पश्चात् एक छद मे सीता का सुहाग का वर्णन[8] करने के बाद दो छदो मे परशुराम का क्रोध वर्णित है, परन्तु राम की विनम्रता उदधि की गहराई की थाह पाने मे असमर्थ होकर परशुराम उनको प्रणाम करके उनकी महत्ता स्वीकार कर लेते हैं।[9] इसके बाद के छदो मे राम की नम्रता, धैर्य, परोपकार, त्याग आदि के अनुपम गुणो का वर्णन है।[10]

बालकाण्ड मे बाल्यावस्था की प्रत्येक गतिविधि की बडी सूक्ष्मता एव गहनता से निरूपण है। १०८ पदो मे पर्याप्त अवकाश आदि को अपनी प्रतिभाजन्य लोक-पावन राम की बाल्यावस्था एव उस समय की अन्य क्रियाएँ उपस्थित करने के अनक अवसर आते हैं। जबकि सूर-रामचरितावली मे कवि ने केवल

१. कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ११-१२ २. वही, छद स० १३
३. वही, छद स० १४ ४. वही, छद स० १५-१६
५. वही, छद स० १७-१८ ६. वही, छंद स० १९-२०
७. वही, छंद स०, २१-२४ ८ वही, छद स० २५
९. वही, छद सं०, २६-२७ १०. वही, छंद स० २८-२९

१६ पदो मे उस समय की प्रभावकारी स्थिति का वर्णन किया है और ल्या-वस्था की प्रमुख विशेषताओ को सूक्ष्म दृष्टि से परखा है। सूर के बालकाण्ड मे विस्तार अवश्य नही है, पर गहराई एव सूक्ष्मता अत्यधिक है।

कवितावली मे २२ पदो मे बालकाण्ड की कथा है। गीतावली मे तुलसी का मु य उद्देश्य राम के सौदर्य का वर्णन करना प्रतीत होता है जबकि कवितावली मे उन्होन स तुलन रख कर सभी काण्डो को स्थान दिया है।

गीतावली मे वर्णित राम कथा, कवितावली और सूर-रामायण की अपेक्षा अधिक व्यापक है। उसमे राम के आविर्भाव से लेकर सीता निर्वासन और लवकुश के बाल-चरित तक के विविध प्रसगो का वर्णन है। गीतावली मे दशरथ राम से अत्यधिक स्नेह करते है। उनका राम के प्रति मोह माया का ही रूप है। विश्वामित्र दशरथ के मना करने पर कुपित नही हुए बल्कि उन्होने इस लौकिक प्रेम दृष्टिको देखा और राम-जन्म का हेतु, उनको स्वय समझाया, किन्तु सूर-रामायण मे केवल निम्न पद ही इस घटना पर प्रकाश डालता है[१]—

दशरथ सो रिस आनि कह्यौ।
असुरीन सौं होन न पावत राम लखन जब सग दयौ।

गीतावली मे अहिल्या चरणा का स्पर्श कर स्वर्गलोक चली गयी। सूर-रामायण मे अहिल्या को पाषाण-रूप ही माना गया है[२]—

गगा तट आए श्री राम।
जहा पाषण रूप पग परसे गौतम ऋषि की वात।
गई अकास देवतन धरि कै अति सुन्दर अभिराम।

सूर सागर के रचयिता महात्मा सूरदास ने ता रामावतार की कथा सक्षिप्त होने पर भी राम की बालक्रीडाओ का सुन्दर वर्णन किया है—राम को त्राण-कर्त्ता भगवान के अवतार रूप मे ही सूरदास ने लिया है, किन्तु गोस्वामी जी के से बन्धन उनके नही हैं।[३] गोस्वामी जी की दृष्टि राम के सौंदर्य एव अलौकिकत्व पर अधिक टिकी रही है। सूरदास की राम-कथा मे एक ही पद मे धनुप यज्ञ का वर्णन है।

१ तुलसीदास का कथा शिल्प, पृ० ३१
२ वही, पृ० ३४
३ वही, पृ० २४

सेनापति रचित कवित्त-रत्नाकर के बालकाण्ड में २८ छंद हैं, जो गीतावली की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है, किन्तु गीतावली, कवितावली और सूर-रामायण के प्रायः सभी प्रमुख स्थल इसमें आ गये हैं। सूर एवं तुलसी भक्तकवि हैं, उनके बाल-वर्णन में हृदय की भक्ति-भावना निहित है। सेनापति भक्ति और रीति-युग के संधिकाल में हुए। अतः इनके बालकाण्ड की कथावस्तु में सौंदर्य एवं स्तुति का अद्भुत सम्मिश्रण है, रीतिकाल की सौंदर्य-छटा के दर्शन इनके बालकाण्ड में पूर्णतया लक्षित है। उस समय रीति-काल का उदय हो रहा था। अतः इसकी छाप इनके काव्य पर पड़ना स्वाभाविक है। एक प्रमुख विशेषता सीता के सौंदर्य की अनुपम छवि-वर्णन में दिखायी गयी है कि सीता के सौंदर्य की तुलना की होड़ में विधि को अनेक चन्द्र बनाने और मिटाने पड़ते हैं, पर उनका सौन्दर्य उसमें आ नहीं पाता। रूप की यह शालीनता सूर और तुलसी के रामचरित में सीता के संदर्भ में नहीं है। संक्षेप में सेनापति का बालकाण्ड पूर्ण वैभव एवं ऐश्वर्य के मध्य आलोकित है। उसमें शालीनता एवं सौंदर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है।

सूरसागर में अयोध्या काण्ड की सभी प्रमुख घटनाएँ आ गयी हैं। तुलसी की ग्राम-वधुएँ उनके वन-गमन पर राजा के प्रति निष्ठुरता का भाव प्रकट करती हैं तथा कैकयी की निन्दा करती हैं, उन्हें अपशब्द कहती हैं, जबकि सूर की ग्रामीणाएँ उन लोगों के अद्भुत सौंदर्य से मुग्ध होकर उनके प्रति प्रेम-भाव से विभोर हो जाती हैं तथा वे उन्हें अपने घर अतिथि के रूप में ले जाना चाहती हैं। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। वे अपने-अपने गांवों और घरों को छोड़ कर बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे ठगी सी चली आती हैं।[1]

सूर के द्वारा चित्रित दशरथ और कौशल्या जैसे पात्र भावुकता से ओत-प्रोत होकर मानो उन्हीं के हृदय की पुकार को प्रदर्शित करते से जान पड़ते हैं। वात्सल्य के साथ-साथ वियोग का और भी स्वाभाविक एवं मार्मिक अंकन उन्होंने प्रस्तुत किया है। दशरथ एक के लिए राम को रोक लेना चाहते हैं, चार पहर उनके मीठे वचनों को सुनकर तृप्त होना चाहते हैं। उन्हें इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि राम से बिछड़ कर उनके प्राण शरीर से भी बिछुड़ जायेंगे।[2] सारांश यह कि सूर ने अत्यन्त संक्षिप्तता के होते हुए गहरायी और सूक्ष्मता से सजीव चित्रण किया है।

---

१. त्रिलोकचन्द्र गुप्त : सूर का राम-काव्य, पृ० ३४

२. वही, पृ० ३५

गीतावली मे अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत दशरथ राम के अभिषेक की वार्ता करते हैं। यह समाचार तुरन्त कैकयी के कानो तक पहुचता है और अभिषेक के स्थान पर वनवास का आदेश हो जाता है। कौशल्या राजा दशरथ की निन्दा करती हैं और अनेक प्रकार से अपना शोक भी प्रकट करती हैं। राम सीता से घर पर रहने के लिए कहते हैं किन्तु वे किसी प्रकार भी तैयार नही होती और अनेक प्रकार के तर्क एव भारतीय सस्कृति तथा राम के महान् गुणो की ओर सकेत करते हुए उनके परब्रह्मत्व का स्मरण दिलाकर वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। लक्ष्मण अपनी माता से राम-सीता के साथ वन जाने की आज्ञा मागते हैं उस समय सुमित्रा के शब्द उनकी मानवता एव उज्ज्वलता के प्रतीक है —

'सीय रघुवर सेवा सुचि ह्वैहौ तो जानि है सही सुत मोरे।'[1]

दशरथ राम लक्ष्मण और सीता के वन जाते समय अत्यधिक दुखी होते हैं। सारी अयोध्या शोक-सागर मे निमग्न हो जाती है। राम वन-मार्ग पर सीता की व्याकुलता तथा उनके शरीर की कोमलता एव वन के कठोर मार्ग को देखकर अत्यन्त दुखी होते हैं। तदनतर राम, लक्ष्मण, सीता के वनवास से दुखी ग्रामीण स्त्रियाँ उन लोगो के अनुपम नख-शिख सौंदर्य की चर्चा अपनी बुद्धि के अनुसार करती हुई, स्त्री के वशीभूत राजा दशरथ, कैकेयी एव अन्य माताओ की निंदा करती हैं, जिन्होने उन्हे वनवास की आज्ञा दी। उन तीनो के चले जाने पर परस्पर उनके विषय मे वार्ता करती हुई, उनके अधिक समय से वापिस न आने की बात कहती हैं तथा उनका कोई सदेश न मिलने से दुखी है तथा अपनी व्यथा को परस्पर व्यक्त करके मन को शान्त करती हैं। उनकी वार्ता मे राम, लक्ष्मण, सीता के सौंदर्य की पुनरावृत्ति है।

गीतावली के अयोध्याकाण्ड मे करुण रस का अथाह समुद्र उमड पडा है किन्तु इस करुण रस के मूल मे 'सज्जन हिताय' वाला सिद्धान्त निहित है। राम परब्रह्म के अवतार हैं। उनका अवतार भूमि पर सज्जनो के उद्धार-हेतु हुआ है। इसका कथन सीता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से द्रष्टव्य है। तुलसीदास की आत्मिक भक्ति भी इन्ही पदो के मध्य दिखायी पडती है। उनके भरत राम की परम भक्ति एव परोपकार के प्रतीक, पृथ्वी पर मानव-जाति के लिए आदर्श तथा अज्ञानजन्य अकर्तव्य धारा मे निमग्न मनुष्यता के लिए ज्योति स्तम्भ हैं। कौशल्या और सुमित्रा के चरित्र की कसौटी का भी यही महत्वपूर्ण काण्ड है जिस पर वे शत-

१ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद स० ११ ८

प्रतिशत खरी उतरती हैं। कुछ दृष्टियों से सुमित्रा कौशल्या से भी उच्च चरित्र एवं महान् गुणों की निधि हैं। सीता के सहज, सबल और स्वाभाविक चरित्र का विकास भी इसी काण्ड में है जिसमें सीता दीप्तमान् प्रेम-त्याग की साकार मूर्ति, मार्ग-निर्देशिका एवं मनुष्य का स्थायी कल्याण-कारयित्री आदर्शरूप में चित्रित हैं।

कवितावली में अयोध्याकाण्ड की कथा २८ पदों में वर्णित है जिसके प्रमुख विषय ये हैं—राम, लक्ष्मण और सीता वन जा रहे हैं, अयोध्या के प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं है, उन्होंने पिता का राज्य सामान्य पथिक की भांति छोड़ दिया। कौशल्या और सुमित्रा की परस्पर बातचीत, जिसमें राम-लक्ष्मण-सीता के वनवास पर दुःख प्रकट किया गया है। राम के द्वारा नाव की याचना, केवट के तर्क एवं राम के चरणों का प्रक्षालन, वन-गमन के मार्ग पर ग्रामीण स्त्रियाँ राम, लक्ष्मण और सीता के सौंदर्य का चित्रण कई पदों में हुआ है। वे कैकेयी की निंदा करती हैं और सीता से राम-लक्ष्मण का उनसे सम्बन्ध की जिज्ञासा प्रकट करती हैं।

कवितावली के अयोध्याकाण्ड में, गीतावली में वर्णित कुछ घटनाओं को छोड़ दिया गया है। कैकेयी की कुटिल भावनाओं एवं वनवास के आदेश का कहीं वर्णन नहीं है। फिर भी सभी प्रमुख विषय आ गये हैं। गीतावली में तुलसी प्रत्येक स्थान पर रुक-रुक कर आगे बढ़े हैं, इसलिए किसी भी दृश्य का वर्णन छूटने नहीं पाया है और कवितावली में वे तीव्र गति से आगे बढ़ गए हैं। कवितावली में अयोध्याकाण्ड के विषय प्रायः उपेक्षित हैं, केवल एक पद में अयोध्याकाण्ड की कथा है। राम विश्व के उद्धार हेतु पैदल ही वन को चल पड़ते हैं। सेनापति ने कवित्त-रत्नाकर में राम के वनगमन की चर्चा केवल एक छंद में की है। राम अपने भक्तों की इच्छा की पूर्ति तथा विश्व का सुधार करने के लिए अपना राज-भवन छोड़कर पैदल ही वनमार्ग की ओर चल देते हैं।

सूर-सागर में अरण्य-काण्ड की प्रमुख विशेषता राम की वियोगजन्य स्थिति की गहनता और उसका व्यापक प्रभाव है जो पशु-पक्षी और प्रकृति पर भी पड़ता है। राम की वियोग दशा चरम सीमा पर पहुंच जाती है जबकि वे वृक्ष-लताओं आदि से सीता का पता पूछते हैं—

फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बली।
अहो बंधु, काहू अवलोकी इहि मग बधू अकेली।[1]

---

१ सूर-रामचरितावली, पद सं० ५९

गीतावली के अरण्यकाण्ड की कथावस्तु १७ पदों में वर्णित है जिसमें १७वाँ पद अधिक बड़ा है। उस पद के अन्तर्गत ८ पद हैं, यह पद शबरी से सम्बद्ध है। राम के वन-आगमन पर पशु-पक्षियों एवं राम के सौंदर्य का कई पदों में वर्णन है। स्वर्ण-मृग को पकड़ने के लिए सीता आग्रह करती हैं। राम द्वारा उसके पीछे जाकर मारना, उस कपट-मृग के रूप में मारीच द्वारा लक्ष्मण का नाम पुकारना और सीता द्वारा उस आवाज को राम की आवाज समझ कर लक्ष्मण को वहाँ जाने के लिए प्रेरित करना आदि घटनाओं का वर्णन है। लक्ष्मण के जाने के उपरान्त, रावण द्वारा सीता का अपहरण और जटायु द्वारा सीता को छुड़ाने का प्रयत्न किन्तु अन्त में रावण द्वारा उसको मारा जाना वर्णित है। जब राम लौट कर आते हैं तो सीता को वहाँ नहीं पाते। सीता के वियोग में पशु-पक्षी-वृक्ष सभी शोक-विह्वल हैं। इस स्थिति में राम पर तुषारपात होता है। परब्रह्म का अवतार होते हुए भी सामान्य व्यक्ति की भाँति विलाप करते हुए वे पशु, पक्षियों, लताओं आदि से सीता के विषय में पूछते फिरते हैं।

जटायु मृत्यु के समय अपने को धिक्कारते हुए राम का स्मरण करता है। उसी समय उसे राम के दर्शन होते हैं। यद्यपि राम उससे अनेक प्रकार से अनुनय करते हैं कि वह कुछ दिन और संसार में जीवित रहे, तथा राम को कुछ सेवा करने का अवसर दे, किन्तु उसने राम-दर्शन का महत्व समझाते हुए संसार में जीवित रहना स्वीकार नहीं किया। राम ने पिता के सदृश उसका दाह-संस्कार करके उसे मोक्ष प्रदान किया। शबरी को शुभ शकुन होते हैं और राम के स्वागत में फलादि एकत्रित कर उनका स्वागत अश्रु-जल से अर्घ्य देकर करती है। इसी समय देव-गण आकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं। शबरी की भक्ति असाधारण है और राम की भक्त वत्सलता से प्रभावित होकर देवगण पुष्प-वृष्टि करते हैं। राम उसे भी मोक्ष प्रदान करते हैं।

गीतावली के अरण्यकाण्ड में एक प्रसंग विशेष सुखकारी एवं कल्याणप्रद है। राम के वन में आने पर वहाँ के सभी कोटि के जीव आनन्द की तरंगों से तरंगित हैं, शेष सभी घटनाएँ शोक की सुरसरि को गतिमान कर रही हैं जिसमें विशेष घटना—राम की वियोगावस्था में राम द्वारा परब्रह्मत्व को भूल सा जाना है। राम मायापति हैं, पर यहाँ माया स्वयं उनकी स्वामिनी बन जाती है और उनकी स्थिति सीता के वियोग में एक सामान्य व्यक्ति से भी गई-बीती है—

चले बूझत वन-बेलि बिटप खग मृग अलि अवली सुहाई।

प्रभु की वेमा सों समौ कहियें को कवि उर आह न आई ।[१]

कवितावली के अरण्यकाण्ड में केवल एक पद है जिसमें वर्णित है कि राम, लक्ष्मण, सीता पंचवटी में विराजमान हैं और सीता, राम को स्वर्णमृग मारने का आग्रह करती हैं। गीतावली के गृहीत अरण्यकाण्ड के अन्य विषयों को छोड़ दिया गया है। कवित्त-रत्नाकर में अरण्यकाण्ड का प्रकरण दो छंदों मे मिलता है।[२] इनके मुख्य विषय हैं—मारीच को जब राम, सीता, लक्ष्मण के विषय में ज्ञात होता है तो वह हृदय में मुक्ति-हेतु रामभक्ति से प्रेरित होकर तथा एक युक्ति बनाकर घर से निकलता है। उसके आने के समय, सागर का जल उद्वेलित हो उठता है, वायु आंदोलित होने लगती है, पृथ्वी धँसने लगती है, सर्प पाताल की ओर भागते हैं। मारीच अपनी युक्ति से राम को सीता से दूर कर देता है, रावण सीता का हरण करके ले जाता है, गिद्धराज जटायु उनको बचाना चाहता है किन्तु रावण उसका वध कर देता है।

सूरसागर के किष्किन्धाकाण्ड मे वर्णित विषय है—ऋष्यमूक पर्वत पर राम, लक्ष्मण और सीता का आना, राम और हनुमान का परिचय, बालि वध, सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति, सीता-शोक, सम्पाती द्वारा सीता की वियोगावस्था का चित्रण करना, जिसमे सीता को साक्षात् विरह-मूर्ति कहा गया है। इस काण्ड की कथा सात पदों मे समाप्त हुई है। गीतावली मे किष्किन्धाकाण्ड की कथा केवल दो छंदों मे है जिनके विषय है—राम का लौट कर पर्णकुटी में आना तथा सीता को न देख कर सामान्य व्यक्ति की भांति विलाप करना, लक्ष्मण और वानर-समूह का उनकी असह्य वियोग दशा को देखकर दुःखी होना, हनुमान द्वारा राम की अगूठी लेकर सीता की खोज मे जाना। कवितावली मे किष्किन्धा काण्ड केवल एक पद मे वर्णित है जिसका विषय है किस प्रकार पवन-पुत्र हनुमान ने लंका गमन हेतु अपनी शक्ति प्रकट की। कवित्तरत्नाकर मे किष्किन्धाकाण्ड के विषय है—हनुमान द्वारा लंका गमन। सुग्रीव एव बालि की कथा का उसमे कही नाम नही आया है।

सूरसागर मे सुन्दरकाण्ड के प्रमुख विषय ये हैं—अंगद द्वारा हनुमान की वीरता को देखकर, उनको सीता की खोज के लिए भेजना, हनुमान का सीता की खोज मे लंका जाना तथा सीता के विषय मे अनेक विचार प्रकट करना; रावण से उनका वार्तालाप एवं सीता की दयनीय स्थिति का अवलोकन; राक्षसी और

१. गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद स० ११
२. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ३१, ३२

सीता की परस्पर वार्ता में राक्षसी सीता को रावण की बात मान लेने का आग्रह करती है। अन्त में विफल होकर रावण से सीता का तेज एवं क्रोध का वर्णन करके उसे अपना हठ छोड़ने के लिए कहती है। इस प्रसग में रावण एक गूढ़ उत्तर देता है—

जो सीता सत् से विचलै तौ श्रीपति काहि सभारे।
मोसे मुग्ध महापापी कौं कौन क्रोधकरि तारे॥[1]

यह सब जानते हुए भी रावण प्रकट रूप में सीता के प्रति अपनी कुत्सित वासनाएं प्रकट करता है तथा उन्हे राज वैभव, स्वामित्व, पटरानी होने के प्रलोभन देता है। किन्तु सीता पर इनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता और वे रावण का अनेक अपशब्द कहती हैं। त्रिजटा भी जो राम के महत्व को जानती है रावण से सीता की ओर से विरत होने को कहती है। उससे भी रावण अपने विचार इस प्रकार करता है—

गुप्त मतो रावन कहै तू त्रिजटी सुनि आइ।
जो पै सीता सत टरैं, सूर तीन भुवन जरि जाइ॥[2]

रावण इसके उपरान्त स्वयं अन्य राक्षसियों के साथ प्रकट रूप में सीता को अपने अधीन करना चाहता है। अन्त में त्रिजटा सीता के पास आकर रावण को नल-कूबर (कुबेर पुत्र) का शाप याद दिलाकर आश्वासन देती है तथा अपना स्वप्न सुनाकर राम प्राप्ति के सम्बन्ध में सीता को आश्वस्त करती है। सीता प्रसन्न होकर राम-प्राप्ति के दिनों की प्रतीक्षा एवं कल्पना में आनन्द-विभोर हो उठती है और मनसा, वाचा, कर्मणा राम के प्रति श्रद्धा प्रकट करती है। हनुमान उसी समय अगूठी लेकर आते हैं और सीता के समीप डाल देते है। सीता अपनी अनेक भावनाएं अगूठी के समक्ष प्रकट करती है, इसी समय हनुमान को अपने समीप बुलाकर उनसे राम को मिलाने की तीव्र इच्छा व्यक्त करती है।[3]

'सूर-रामचरितावली' में सीता और हनुमान की परस्पर वार्ता पन्द्रह पदों में है। इनमें राम और लक्ष्मण का कुशल-क्षेम पूछना, हनुमान द्वारा सीता को रामानुचर होने का विश्वास दिलाना, राम की स्थिति से सीता को अवगत कराना, सीता को आश्वासन देकर उनका सदेश राम के पास ले जाना आदि वर्णित है। इसके उपरान्त दो पदों में रावण और हनुमान की वार्ता है, जिसमें

१ सूर-रामचरितावली, पद स० ६९
२ वही, पद स० ७१
३ वही, पद स० ७७

हनुमान राम की प्रशंसा और रावण की भर्त्सना करते हैं। इसी प्रसंग के अन्य विषय है—लका में हनुमान का आग लगाना, अशोक वन को नष्ट करना, हनुमान-रावण-संवाद, मदोदरी का रावण को समझाना, सीता का हनुमान को चूडामणि देना, हनुमान का सागर लाघकर कपि समूह मे लौटकर आना, अगद को लका का समाचार देना, राम से लका की स्थिति और सीता की दशा आदि बताना। सूर ने सुन्दरकाण्ड की यह सारी कथा ३५ पदो मे लिखी है।

गीतावली के सुन्दरकाड की कथा को लेकर ५१ पद लिखे गये हैं। इनके विषय है—हनुमान का अपने साथियो नल-नील-अंगद आदि के साथ सीता की खोज मे जाना[1], लका मे सीनों की दशा देखकर दुःखी होना और मुद्रिका फेंक देना[2], मुन्दरी से सीता द्वारा राम-लक्ष्मण की कुशल पूछना, मुद्रिका द्वारा उसका उत्तर[3], हनुमान का सीता की दशा को देखकर दुखी होना, हनुमान का अपना परिचय देना[4], सीता और हनुमान की बातचीत, रावण और हनुमान की भेंट, परस्पर वार्ता[5], सीता से विदाई[6], हनुमान का भगवान राम के पास पहुचना, राम से सीता की विरह दशा का कथन[7] आदि। इनमे सीता की रामदर्शन की लालसा और राम तथा सीता की वियोग-दशा का वर्णन बहुत मार्मिक बन पड़ा है—

मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु विरह मूरति मन मारे।[8]

रावण की मन्त्रणा, विभीषण-शरणागति, उसका भविष्य मे मगलमय परिणाम, जानकी-त्रिजटा सवाद आदि 'गीतावली' के सुन्दरकाण्ड के अन्य विषय है। कवितावली के सुन्दरकाण्ड मे ३२ छद है। इसके सर्वप्रथम दो छदों में अशोक वन का वर्णन है[9], एक छन्द मे मेघनाथ द्वारा हनुमान का ब्रह्मपाश से बाधा जाना[10], २३ छदो में लका मे आग लगना और उसके प्रभाव का वर्णन है।[11] इसके अनन्तर लका से वापिस आने पर हनुमान का स्वागत, हनुमान द्वारा राम को सदेश देना[12] आदि वर्णित है। कवितावली मे त्रिजटा-सीता-सवाद, मन्दोदरी-रावण-

१ सूर रामचरितावली, पद स० १
२. वही, पद स० २
३. वही, पद स० ३
४ वही, पद स० ५–६
५. वही, पद स० १२–१३
६ वही, पद स० १४–१५
७. वही, पद स० १७–२०
८ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद स० ८
९. कवितावली, सुन्दर०छद स० १–२
१० वही, छद स० ३
११. वही, छद स० ४–२७
१२ वही, छद स० ३०

सवाद नही है। लका-दहन और हनुमान की वीरता का विस्तृत कथन है। अग्नि के व्यापक प्रभाव का वर्णन कवितावली की विशेषता है—

पानी, पानी, पानी सब रानी अकुलानी कहे,
जानि है परानी, गति जानि गज चालिहै।
बसन बिसारें, मनिभूषन सभारत न,
आनन सुखान कहैं क्योह कोऊ पालिहै ॥[1]

कविद्धरत्नाकर मे सुन्दरकाण्ड के विषय हैं—हनुमान की वीरता, राम की उन पर विशेष कृपा दृष्टि एव हनुमान द्वारा लका मे शक्ति-प्रदर्शन आदि।

सूरसागर के लकाकाण्ड मे सम्पूर्ण कथा ७८ पदो मे वर्णित है जिनके मुख्य विषय है—हनुमान की वीरोक्तियाँ[4], शरणागत विभीषण[5], रावण-मदोदरी-सवाद[6], अगद का दूतत्व[7], लकापति का इन्द्रजीत को युद्ध की तैयारी का आदेश[8], लक्ष्मण का युद्ध-गमन[8], पुन रावण और मदोदरी-सवाद[9], मेघनाथ की ब्रह्मा से वर-प्राप्ति[10], कुम्भकरण-रावण सवाद[11], लक्ष्मण को शक्ति लगना, राम का विलाप[12], राम के प्रति हनुमान के वचन[13], अयोध्या मे भरत के तीर से हनुमान का गिरना और लक्ष्मण शक्ति के समाचार से अयोध्या मे कोलाहल[14], कौशल्या और हनुमान-सवाद, सुमित्रा-हनुमान सवाद[15], सजीवनी से लक्ष्मण का सचेत होना[16], लक्ष्मण की प्रतिज्ञा, राम और रावण का युद्ध और रावण-वध[17], मदोदरी विलाप[18], लक्ष्मण द्वारा सीता का दर्शन[19], राम द्वारा सीता की उपेक्षा,

---

१ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छद स० १०
२ कवित्त रत्नाकार, चौथी तरग, छद स० ३४–३७
३ सूर रामचरितावली, पद स० ११०–११६
४. वही, पद स० ११७–११९ | ५ वही, पद स० १२०–१३२
६ वही, पद स० १४२–१५३ | ७ वही, पद स० १५४
८ वही, पद स० १५७–१५८ | ९ वही, पद स० १५९–१६०
१० वही, पद स० १६१ | ११ वही, पद स० १६२–१६३
१२ वही, पद स० १६४–१६७ | १३, वही, पद स० १६८–१६९
१४ वही, पद स० १७०–१७१ | १५ वही, पद स० १७२–१७४
१६ वही पद स० १७५ | १७ वही, पद स० १७९–१८२
१८ वही, पद स० १८४ | १९ वही, पद स० १८५

सीता की अग्नि-परीक्षा एव राम का इन्द्र से अमृत वर्षा करने को कहना, सब वानर का जय-जयकार करते हुए जी उठना[1]। गीतावली के लकाकाण्ड में २३ पद हैं, जिनके विषय है—मदोदरी द्वारा रावणका प्रबोधन[2], अंगद का दौत्य कार्य[3], दोनों की परस्पर वार्ता[4], लक्ष्मण-शक्ति[5], राम का विलाप[6], हनुमान का राम को अश्वासन[7], हनुमान का सजीवनी बूटी लाना[8], मार्ग मे भरत द्वारा उनको वाण मार कर गिराया जाना, भरत-हनुमान-शत्रुघ्न की परस्पर वार्ता[9], और अन्त मे विजयी राम का सौंदर्य-वर्णन।[10] 'गीतावली' मे युद्धस्थलीय दृश्यो का, सीता की शुद्धि आदि का कही उल्लेख नही मिलता है।

कवितावली के लकाकाण्ड मे ५८ पद हैं जबकि गीतावली मे २६ और सूर रामायण में ४५ पद है। कवितावली के प्रारम्भिक विषय है—लकादहन के प्रभाव एवं परिणामस्वरूप राक्षसो मे निरुत्साह[11], सीता और त्रिजटा की परस्पर वार्ता, जिसमे त्रिजटा का राम को सर्वोपरि समझना तथा राम की शूरता की प्रशसा करना[12], लका-निवासियों द्वारा भी राम की शूरता के गुणगान करना[13], अगद का दौत्यकर्म तथा रावण को राम से समझौता करने के लिए कहना[14], रावण पर उनकी सलाह का कोई प्रभाव न पडना आदि। इसके बाद १८ पदो में युद्ध के दृश्य वर्णित है, जिसमे बीभत्स एव भयानक रस का परिपाक हुआ है।[15] लक्ष्मण को शक्ति लगना, हनुमान द्वारा सजीवनी बूटी लाना, रावण और मेघनाथ-वध, देवताओं द्वारा राम-विजय पर प्रसन्नता आदि इस काड के शेष विषय है। गीतावली की भांति भरत द्वारा हनुमान को वाण मारना और सूरसागर की भांति सीता की शुद्धि का कवितावली मे कथन नही है।

गीतावली, कवितावली और सूररामायण के लकाकाण्ड मे सभी प्रमुख

---

१ सूर रामचरितावली, पद स० १८६-१८७
२ गीतावली, लकाकाण्ड, पद स० १
३. वही, पद सं० २
४ वही, पद स० ३, ४
५ वही, पद स० ५
६. वही, पद स० ६, ७
७ वही, पद स० ८
८. वही, पद स० ९
९ वही, पद स० १०-१५
१०. वही, पद स० १६
११ कवितावली, लकाकाण्ड, छंद स० १
१२. वही, छद स० २-४
१३. वही, छद स० ५
१४. वही, छद स० ९-११
१५. वही, छद सं० ४०-५८

विषय आ गए है। तीनो मे अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं। सभी मे भावो को पूर्णरूपेण स्पष्ट एव् साकार करने का प्रयत्न किया है। वीर रस के अनुपम उदाहरणों के साथ करुण, वीभत्स और रौद्र रसों के भी अच्छे उदाहरण हैं। कवित्त-रत्नाकर मेलका-दहन और युद्ध का विस्तृत वर्णन तीस छदो मे मिलता है। इसमे लकाकाण्ड के चुने हुए विषय ही सम्मिलित किये गये हैं जिसका आलकारिक एव दार्शनिक विवेचन महत्वपूर्ण है। कवि का सारा ध्यान इस काण्ड मे राम, रावण, हनुमान आदि के शौर्य तथा पराक्रम की ओर ही रहता है जहाँ इनके वर्णन से कुछ अवकाश मिलता है, वहाँ वह भक्ति भाव से प्रेरित होकर राम का गुणगान करने लगता है। कवित्तरत्नाकर मे वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, क्योकि उन्होने कथा के उन्ही अशो पर विशेष ध्यान दिया है। इनके उत्साह मे मर्यादा का भाव सर्वदा वर्तमान रहता है। वीरो की वीरता अपनी सीमा उल्लघन नही करती, कथा मे विभिन्न स्थलो पर पूर्ण सयम है। राम और लक्ष्मण पर परशुराम अत्यधिक क्रोधित हैं किन्तु उनको पूज्य ब्राह्मण एव अपना वश समझते हुए उनके प्रति राम बडे सयमित एव विनम्र है।

'सूररामचरितावली' मे उत्तरकाण्ड की कथा केवल ग्यारह पदो मे लिखी गयी है।[1] गीतावली के उत्तरकाण्ड मे कथावस्तु की प्रमुखता न होकर राम के सौदर्य-निरूपण एव उनकी महानता का विशेष रूप से वर्णन है। प्रमुख विषय ये हैं—राम का रूप वर्णन[2], अयोध्या की रमणीयता विशेष रूप से वर्षा ऋतु मे हिंडोला-वर्णन, सुन्दर स्त्रियो का झूला झूलना[3], दीपमालिका की अनुपम छटा[4], वसत विहार[5], अयोध्या का आनन्द[6], रामराज्य[7], सीता वनवास[8], लव कुश-जन्म[9], रामचरित की महानता एव दार्शनिक-पक्ष का उद्घाटन। कवितावली मे उत्तरकाण्ड आधे भाग मे है तथा अन्य सभी काण्ड शेष आधे मे हैं। इसमे भी गीतावली के समान ही राम की महानता एव स्तुति वर्णन है। अन्य विषय ये हैं—भक्त पर राम का विशेष प्रेम[10], राम की भक्ति ही सर्वोपरि[11], जानि-

---

१ सूर रामचरितावली, पद स० १८९-१९९
२ गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद स० १-१७
३ वही, पद स० १८ १९
४ वही, पद स०, २०
५ वही, पद स० २१ २२
६ वही, पद स० २३
७ वही, पद स० २४
८ वही, पद स० २५-३३
९ वही पद स० ३४-३७
१० कवितावली, उत्तर०, छद स० १-२३
११ वही, छद स० २४-६९

पाति के भेद-भाव का अभाव[1], प्रह्लाद, द्रौपदी की रक्षा एवं अहिल्या को शाप-मुक्त करके सुदेह प्रदान करना, स्वयं कवि तुलसीदास की राम से प्रार्थना, राम के गुणों का कथन[2], राम की दयालुता से गिद्धराज जटायु एवं शबरी के उद्धार का उल्लेख, विभीषण एवं अजामिल की रक्षा, राम के गुण-यश-कृपा, सर्वोपरि शक्ति आदि गुणों का कथन।[3] इस प्रकार तुलसीदास ने राम के सौंदर्य का बड़ी रुचि एवं तल्लीनता के साथ चित्रण किया है। उनका यह चित्र भी बड़ा हृदय-ग्राही है। हिंडोला, अयोध्या-सौंदर्य, राम-सौंदर्य, वसंत-विहार आदि के साथ-साथ दार्शनिक विषयों के चित्रण में भी उन्होंने बहुत रुचि दिखायी है।

'कवितारत्नाकर' के उत्तरकाण्ड का आरम्भ अयोध्या की शोभा, उसके शृंगार एवं वैभव के वर्णन से होता है। इस काण्ड में सेनापति ने लव और कुश की ओर भी इंगित किया है जबकि 'सूरराम चरितावली', 'गीतावली' और कविता-वली' में इनकी कोई चर्चा नहीं है। 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड में 'गीतावली' की अपेक्षा विषयों का नवीन रूप वर्णित है, भक्ति को श्रेष्ठता एवं महानता प्रदान की गयी है। इसमें राम-स्तुति एवं गुणों की अधिक चर्चा है। उसके पदों में कवि ने अपने बचपन से लेकर अन्तिम समय तक की जीवन-स्थितियों पर भी यत्किंचित प्रकाश डाला है। तुलसी के अधूरे प्रामाणिक जीवनवृत्त के आकलन में पद का विशेष योगदान है।

सूर के काव्य में हनुमान की जैसी उत्साह और वीरता से पूर्ण उक्तियां हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। गीतावली और कवितावली में इस प्रकार की उक्तियां नहीं है। सूरदास का भावुक हृदय उनके 'रामचरित' सम्बन्धी पदों में पग-पग पर पलक पावड़े बिछाता हुआ, भक्तों और रसिकों को रसमग्न करता हुआ, उनमें अद्भुतता, सहृदयता और संवेदना जगाता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

मार्मिक स्थलों की तुलना—कवि की भावुकता का ज्ञान सबसे अधिक उसके मार्मिक स्थलों की पहचान से होता है। इस क्षेत्र में सूर और तुलसी दोनों ही अद्वितीय हैं। इस सम्बन्ध में प० रामचन्द्र शुक्ल के विचार द्रष्टव्य हैं—'राम कथा के भीतर ये स्थल है—अत्यन्त मर्मस्पर्शी राम का अयोध्या त्याग और पथिक रूप में वन-गमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामी

१. कवितावली, उत्तरकाण्ड, छंद सं० ७०-७२
२. वही, छंद सं० ७८-९२   ३ वही, छंद सं० १२०-१२८

तुलसीदास जी ने अच्छी तरह पहचाना है[1] इनका उन्होने अपने मानस, कवितावली और गीतावली मे अत्यन्त सहृदयता के साथ वर्णन किया है।

सूरदास ने भी अपने राम-काव्य मे इन स्थलो का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इस संदर्भ मे डॉ० व्रजेश्वर वर्मा के विचार अवलोकनीय है—"रामकाव्य निर्माण अपनी हृदय-गत भावनाओ से विवश होकर ही किया था। उनका प्रयोजना कथा को पूर्वापर प्रसग के साथ कहना नही था, अपितु भावो की मार्मिकता प्रस्फुटित कर देना मात्र था। इसी कारण उनके द्वारा चुने हुए मार्मिक स्थल जिनमे राम-जन्म, बाल केलि, धनुर्भंग, केवट-प्रसग, पुरवधू-प्रश्न, भरत भक्ति, सीता हरण पर राम विलाप हनुमान द्वारा सीता-खोज, हनुमान सीता सवाद, रावण मदोदरी-सवाद, लक्ष्मण-शक्ति पर राम विलाप, हनुमान का सजीवनी लाना, सीता की अग्नि-परीक्षा और राम का अयोध्या-प्रवेश विशेष उल्लखनीय है।[2] गीतावली मे दशरथ कहते हैं —

मोको विधु वदन विलोकन दीजै।
राम लखन मेरी यहै भेंट, बलि जाउ जहा मोहि मिलि लीजै।।[3]

इन शब्दो मे दशरथ का हृदय चित्रण है। वे स्पष्ट शब्दो मे कह देते है कि उनकी यह भेट अतिम है। अत उन्ह राम लक्ष्मण के चन्द्र वदन से जितनी शीतलता मिल सके, मिल जाय, क्योकि अब भविष्य मे उनके दर्शन सम्भव नहीं है। कवितावली के अयोध्याकाण्ड मे यह प्रसग नही है। सूर-रामायण मे दशरथ केवल एक दिन के लिए राम को रोक लेना चाहते है, चार प्रहर उनके मीठे वचनो को सुनकर अपने हृदय की ज्वाला को शीतल करना चाहते हैं, पूर्ण विश्वास है कि राम के बाद उनका जीवित रहना सम्भव नही है इसलिए राम के दुर्लभ दर्शन को वे एक दिन के लिए और सुलभ बना लेना चाहते हैं।

गीतावली मे जब राम-लक्ष्मण और सीता वन-पथ पर जाते है। ग्राम-वधुएँ उनको देखकर उनके दर्शन से प्रसन्न और उनके वनवास से अत्यधिक दु खी होती हैं। वे उनका वृतान्त सुनकर कैकेयी और दशरथ की निंदा करती है—कैसे मातु पितु कैसे ते प्रिय परिजन है।[4] कवितावली मे भी—तुलसी सुनि ग्राम वधू बिथकी

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल त्रिवेणी, पृ० १४४
२ डॉ० व्रजेश्वर वर्मा सूरदास, पृ० २९४
३ तुलसी ग्रंथावली, गीतावली, पृ० २७६
४ वही, पृ० २८१

पुलकी तन औ चले लोचन स्वै"[1] वर्णित है। उनके मन और शरीर राम को पथिक दशा मे देखकर सतप्त हैं।

सूरदास की ग्राम-वधुएँ राम, लक्ष्मण, सीता की इस दशा से दुःखी होकर अश्रु-वर्षा करती हैं, अपनत्व भूल कर उनके पीछे-पीछे चली जाती हैं, उन्हे अतिथि सदृश अपने घर ले जाना चाहती है। गीतावली मे भरत राम-वन-गमन से माता की करनी के पश्चाताप रूपी अग्नि में जल रहे है। माता कैकेयी की भर्त्सना करते हुए अपने भाग्य को दोषी ठहराते है, राम के बिना उनके लिए सब व्यर्थ है। कवितावली मे इस विषय का कोई कथन नही है। भरत के अन्दर ग्लानि की आग सुलग रही है, राम को भरत के कारण वन-वन भटकना, इससे बढ़कर दूसरा पाप भरत अपने लिए नही समझते। राज्य उन्हे अग्नि सदृश जल रहा है। वे कहते है–"कौन काज यह राज हमारे, इहि पावक परि कौन जियो।"

श्री अग्रदास कृत अष्टयाम पदावली—मुक्तक काव्य होने से कथावस्तु का क्रमिक उप-स्थापन आवश्यक नही है। पूर्व लिखित गीतावली, कवितावली और सूररामायण मे तो कथावस्तु का कुछ स्वरूप निश्चित एव क्रमबद्ध है किन्तु अष्टयाम मे केवल बालकाण्ड के विषय प्रमुख है। अन्य काण्ड के विषयो का निरूपण नही है। केवल उनकी दिन-चर्या का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत राम का प्रातः उत्थापन, बाग-विहार, यज्ञ-दान, पति-पूजन, कलेऊ, सास ससुर-पूजन, शृंगार, वाणी सभा, कुज विहार, चौपड-खेल, गुरुजन-स्वागत, सखियो का गान, आखेट लीला, दिन का शयन, दिन का जागरण, शृंगारवन, ग्रीष्म मे सरयू-विहार, श्री प्रमोद वन विहार, श्री अशोक वन विहार, लीला-विहार, श्री ओहवर विहार, कलेऊ विहार, वसत पचमी, झूलन विहार, ब्याह, शयन, अष्टयाम प्रसग झाकी पद, राम वधाई उत्सव, सर्वेश्वरी जू की बधाई आदि की चर्चा है। इसकी मुख्य विशेषता, जो गीतावली, कवितावली, सूर-रामायण से भिन्न है, वह यह है कि अष्टयाम मे राम की रतिकेलि बडी कोमल एव रस-पूर्ण शब्दवाली मे निबद्ध है। इसमे कलेऊ के विभिन्न भोजनो का निरूपण है। अन्य प्रसंगो मे राम और सीता का रूप सौंदर्य, उनके विभिन्न दैनिक कार्य कलाप एवं रति चर्या विशेष रूप से उल्लिखित है। अग्रदास रचित ध्यान मंजरी में कथावस्तु के नाम पर केवल राम का अद्वतीय रूप-सौन्दर्य चित्रित है, साथ ही अयोध्या तथा सरयू नदी

---

१ तुलसी ग्रंथावली, पृ० १४०

की शोभा वर्णित है। कवि का लक्ष्य राम कथा सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख करना नहीं जान पड़ता। मुक्तक रूप में उसने कवि ने राम के सौन्दर्य और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन मात्र किया है।

नाभादास कृत अष्टयाम—इसमें कथावस्तु का विषय केवल बालकाण्ड से सम्बन्धित है। अन्य काण्डों के विषयों का निरूपण नहीं है। बालकाण्ड विस्तृत रूप में वर्णित है, छोटी सी छोटी वस्तु का भी विस्तार मिलता है, जैसे राम और सीता की केलि (काम-क्रीड़ाएं), दोनों का अलौकिक रूप, वेश-भूषा, खान-पान, वस्त्राभूषण, रहन सहन आदि। इसमें जिन विषयों की चर्चा की गई है, वे हैं—राम गुरु स्वरूप हैं, उनकी वंदना, राम के चरित कहने में अपनी बुद्धि की तुच्छता प्रकट करते हुए सकोच करना, सहचरियों की विशिष्टता, अवधपुरी की शोभा, सहचरियों (सेविकाओं) के विशेष कार्यक्रम, राम और सीता के जागरण हेतु विभिन्न वाद्य-यन्त्रों का वादन एवं नृत्य तथा अनेक प्रकार के मधुर रसपूर्ण वचन कहना। कथावस्तु की एक विशेषता हृदय के तारों को झंकृत करने वाला संयोग शृंगार का वर्णन है। प्रातः अनेक प्रकार के अनुनय-विनय एवं रसिक साधनों से जागने पर राम और सीता शीघ्रता में परस्पर एक दूसरे के आभूषण धारण कर लेते हैं।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुक्तक रामकाव्यकारों की कृतियों में रामकथा के विविध पक्षों का काण्डों के अनुसार विभक्त कथाओं में अधिकांश साम्य होते हुए भी यत्रतत्र भिन्नता भी दृष्टिगत होती है। इसी अध्याय के अन्तर्गत सभी आलोच्य कवियों की रामकथा का तुलनात्मक विवेचन इस दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है ताकि उनकी नवीनता और मौलिकता का स्पष्ट आभास हो सके। विशेष रूप से मार्मिक स्थलों की ही तुलना की गयी है और प्रासंगिक रामकथा के रूपों का भी विवेचन किया गया है।



---

१ सिय के भूषण लाल सँवारे। लालन के भूषण सिय धारे॥
—अष्टयाम, नाभादास, पद सं० ५७

तृतीय अध्याय

मुक्तक रामकाव्यों में चरित्र-चित्रण

आलोच्य कृतियों के पात्रों में कुछ पात्र राम-पक्ष के हैं और कुछ रावण-पक्ष के। अतएव सुविधा के लिए दोनों वर्गों के पुरुष और स्त्री-पात्रों के चरित्र अलग-अलग लिखना ही उपयुक्त है।

१. राम पक्ष के पुरुष-पात्र—इन वर्ग के पात्रों में दशरथ, राम, भरत, हनुमान और अंगद प्रमुख हैं—आलोच्य कृतियों के आधार पर इनके चरित्र इसी क्रम से दिये जा रहे हैं।

क. दशरथ—अयोध्या के राजा दशरथ के तीन रूपों का चित्रण आलोच्य कवियों ने किया है, वे हैं—उनका यज्ञ-रक्षक रूप, पति-रूप और पिता-रूप। सूरदास ने इन तीनों रूपों के सम्बन्ध में संकेत किया है। तुलसीदास ने केवल अन्तिम के चित्रण में रुचि ली है, परन्तु सेनापति तीनों रूपों के सम्बन्ध में मौन है।

अ. यज्ञ रक्षक-रूप—विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के लिए राजा दशरथ द्वारा अपने दोनों पुत्र उनको सौंप देने की बात बहुत प्रसिद्ध है। 'मानस' में इस अवसर पर राजा पुत्रों के मोह में पड़कर 'राम देत नहिं बनहिं गोसाईं' आदि कहकर[1] अपनी असमर्थता दिखाते हैं। परन्तु सूरदास के दशरथ विश्वामित्र द्वारा राम की याचना सुनते ही दोनों पुत्रों को इनके साथ करके अपने यज्ञरक्षक रूप का प्रमाण देते हैं।[2]

आ. पति-रूप—कैकेयी के प्रति राजा दशरथ की विशेष आसक्ति भी प्रसिद्ध है। स्वयं कैकेयी भी इस बात को समझती है, इसीलिए 'मानस' में कैकेयी के कोपभवन में होने की बात सुनते ही राजा दशरथ 'सूख' जाते हैं[3] और कवि

---

१. रामचरितमानस, बा० का०, दो० २०८ क

२. दशरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।
   असुरनि सौं जग होन न पावन, राम लषन, तब मग दयौ॥
   —सूरसागर, ९, २१

३. कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड परइ न पाऊ॥
   —रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा २५

उनकी दशा देखकर 'काम प्रताप बड़ाई' की बात कहकर व्यंग्य करने लगता है।[1] सूरदास ने भी इस प्रसंग को उठाया तो है, परन्तु उनके दशरथ स्वयं आकर राम को युवराज बनाने की अपनी योजना कैकेयी को बताते हैं और तभी कैकेयी उनसे राम का वनवास और भरत का राज्य माग लेती है।[2] कैकेयी के सर्वथा अप्रत्याशित वचन सुनकर राजा उसे बार-बार समझाते हैं लेकिन वह अपना हठ नहीं छोड़ती। इस तरह सूर ने दशरथ के सामान्य पति-रूप का चित्रण किया है, कामुक पति रूप का नहीं।

इ पिता-रूप—दशरथ के पिता रूप चित्रण में तुलसीदास का वर्णन सर्वाधिक विस्तार से है। उनके दशरथ 'गीतावली' में पुत्र जन्म सुनते ही अत्यन्त हर्षित होते हैं,[3] अपार दान देते हैं[4] और सभी जातकर्म सोल्लास सम्पन्न कराते हैं।[5] 'कवितावली' में राजा शिशु राम को स्नेह से गोद में लिये दिखायी देते हैं।[6] 'सूर रामचरितावली' में भी कवि ने दशरथ द्वारा राम जन्म पर 'नग हीर दान करने'[7] और हय चीर लुटाने[8] की बात कही है। सूर के दशरथ वशिष्ठ मुनि से पुत्रों का भविष्य पूछते भी बताये गये हैं।[9] राम विवाह के प्रसंग में सूरदास ने तो राजा दशरथ के सोल्लास वर-वधू सहित लौटने भर की बात कही है,[10] परन्तु तुलसीदास ने यद्यपि 'कवितावली' में यह प्रसंग छोड़ दिया है, तथापि 'गीतावली' में उनको गौरी गणेश का पूजन करके बारात सजाकर जनकपुर की ओर

---

१ सुरपति बसइ बाहुबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
—रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा २५, १ से ५

२ यह सुनि बोली नारि कैकयी, अपनो वचन सभारौ।
चौदहँ वर्ष रहे बन राघव, छत्र भरत सिर धारौ॥ —सूरसागर, ९ ३०

३ गीतावली, बालकाण्ड, पद १ ४ वही, पद २ ५ वही, पद ३ से ५

६ अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद के भूपति लै निकसे।
—कवितावली, बालकाण्ड, छंद १

७ दन दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर। —सूरसागर, ९, १६

८ मागध बन्दी सूत लुटाए, गो गयन्द हय चीर। —सूरसागर, ९, १८

९ पूछन विधिहि अजोध्या कौ पति, कहिये जनम गुसाईं। —सूरसागर, ९, १७

१० दसरथ चले अवध आनदत। —सूरसागर, ९, २७

प्रस्थान करना लिखा है।[१] पुत्रों के विवाह देखकर 'गीतावली' के दशरथ जनक-राज के साथ अपने अंक मे आनद सिंधु भरते बताये गये है।[२]

'कवितावली' के अयोध्याकाण्ड का आरम्भ वनवास-प्रसग से हुआ है, परन्तु 'सूर-रामचरितावली' और 'गीतावली' मे सारी कथा सप्रसग वर्णित है। सूर के दशरथ राम को युवराज बनाकर स्वय वनवास-व्रत लेने को प्रस्तुत होते है[३] तो 'गीतावली' के मुनिवर वसिष्ठ से राम को युवराज बनाने की प्रार्थना करते दिखाये गये है।[४] 'गीतावली' के दशरथ कैकेयी को अनेक प्रकार से समझाते है और उसके हठ न छोडने पर इतने विकल होते है[५] कि उनके नेत्रो से अश्रुधाराए प्रवाहित होने लगती हैं।[६] अन्त मे 'सूरसागर' और 'गीतावली' दोनों मे दशरथ वन जाने को प्रस्तुत राम से अपने पास कुछ 'याम' ही रुक जाने की याचना करते है।[७] 'गीतावली' के दशरथ इसके बाद मौन हो जाते हैं, परन्तु 'सूरसागर' के दशरथ कभी बिलखते है[८] और कभी कैकेयी की भर्त्सना करते हुए उसके कठोर हृदय को द्रवित करने के लिए अनेक प्रकार से उसे समझाते है।[९] इतना ही नही, जब राम वन को चलने लगते हैं तब सूर के दशरथ ऊंची अटारी पर चढकर उन्हे देखते-देखते मूर्च्छित होकर गिर पडते है।[१०] सारांश यह कि 'सूर-रामचरितावली' और 'गीतावली' मे राजा दशरथ के पितृ-हृदय का चित्रण बहुत सुन्दरता से किया गया है।

ख. राम—आलोच्य कवियो के नायक श्रीराम है, इसलिए सर्वाधिक विस्तार से उन्होने इन्ही का चरित्र लिखा है। पुत्र, माता और पति—राम के प्रमुख तीन रूपो का वर्णन करने के साथ-साथ उनके कुछ अन्य गुणो की चर्चा भी सूरदास ने की है जबकि तुलसीदास ने 'कवितावली' मे इनमे से अधिकाश रूपो को छोड

१. तुलसिदास दसरथ बरात सजि, पूजि गनेसहि चले निसान।
—गीतावली, बालकाण्ड, पद १०३

२. इत अवधेस, उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिंधु हिलोरी।
—गीतावली, बालकाण्ड, पद १०५

३. सूरसागर, ९, ३०
४. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद १
५. सूरसागर, ९, ३०
६. सूरसागर, ९, ३१
७. (क) सूरसागर, ९, ३३ (ख) गीतावली, अयोध्या०, पद १२
८. सूरसागर, ९, ३३
९. सूरसागर, ९, ३८
१०. सूरसागर, ९, ३९

दिया है, 'गीतावली' मे भी सभी अगो पर प्रकाश नही डाला है। सेनापति के 'कवित्त रत्नाकर' मे तो राम के चरित्र के सम्बन्ध में केवल दो तीन छंद ही मिलते हैं।

अ पुत्र-राम—श्रीराम के आदर्श पुत्र-रूप का परिचय माता कौशल्या या विमाता सुमित्रा के प्रति व्यवहार स उतना नही चलता जितना वनवास की आज्ञा देने वाले पिता और विमाता कैकेयी के प्रति व्यवहार से लगता है। सूर के राम कैकेयी के मुख से वनवास की आज्ञा के सम्बन्ध मे पिता के सकोच की बात[1] सुनते ही चतुर बुद्धि से सारी स्थिति समझकर आदर्श पुत्र की भांति पिता के सत्य की रक्षा के लिए इस प्रकार दृढ निश्चयी हो जाते है कि राजा का[2] कहना या स्नेह से मूच्छित हो जाना[3] भी उन्हे नही रोक पाता। वे समझ लेते हैं कि मेरा मोह ही इनकी सारी वेदना का कारण है जिसकी ओर ध्यान देने का अर्थ होगा पिता के सत्य को लाछित करना। चित्रकूट मे भी उनके निधन का समाचार पाकर राम अपने को ही उसका दोषी मानकर बिलखने तो लगते हैं[4] परन्तु जब भरत के साथ साथ कौशल्या भी उनसे अयोध्या लौट चलने को कहती है तब भी उनका दृढ स्वर म उत्तर है—'चौदह बरष तात की आज्ञा मोपै मेटि न जाई।'[5]

तात्पर्य यह कि पिता के सत्य की रक्षा को ही राम अपना सर्वोपरि कर्तव्य समझते हैं और अनेकानेक कष्ट सहकर भी अन्त तक उसका निर्वाह करते है।

कैकेयी ही वनवास प्रसग का मुख्य कारण है। यह जानते हुए भी राम उसके प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव मन मे नही आने देते और माता कौशल्या के साथ साथ ही उसका सादर उल्लेख सदैव करते हैं। उदाहरण के लिए-तीनो माताओ के साथ समान व्यवहार करने की सीख उन्होने भरत को दी है।[6]

आ भ्राता राम—भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनो राम के अनुज है। इनमे से शत्रुघ्न के प्रति राम के स्नेह का स्वतन्त्र चित्रण नही किया गया है, भरत के साथ-साथ उनका भी नाम कहीं-कहीं ले लिया गया है, जैसे—

भरत सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कठ लगायौ।
गद्गद् गिरा, सजल अति लोचन, हिय सनेह जल छायौ॥'[7]

१ सूरसागर, ९, ३२ २ सूरसागर, ९, ३२ ३ सूरसागर, ९, ३९
४ (क) सूरसागर, ९, ५२ (ख) सूरसागर, ९, ५२
५ सूरसागर, ९, ५३ ६ सूरसागर, ९, ५४ ७ वही, ९, ५५

भरत के प्रति राम के स्नेह का परिचायक दूसरा स्थल है, वनवास की अवधि समाप्त होने पर इनका *अयोध्या लौटना*। सूर के राम इस अवसर पर अपने सखाओ मे भरत का परिचय जिन शब्दो मे देते है, वे अपार स्नेह से ओतप्रोत है।[1] 'कवितावली' और 'गीतावली' का रचयिता इस सम्बन्ध मे मौन है।

इ **पति राम**—सीता के प्रति राम के आदर्श पति-भाव का उद्घाटन मुख्यत. तीन स्थलो पर होता है। पहला है—वनवास-प्रसग जिसमें सूर के राम वन के कष्टो से सीता को बचाने के लिए उनको अयोध्या मे ही रुकने को कहते हैं—

तुम जानकी जनकपुर जाहु।
कहा आनि हम सग भरमिहौ, गड्वर बन दुख सिंधु अथाहु।

दूसरा स्थल है-वन्य जीवन। सुकुमारी सीता वन के कष्ट भोगने मे सर्वथा असमर्थ है, यह जानते हुए भी सूर के राम ने वन-यात्रा मे उनकी सुख-सुविधा की कोई चिन्ता की, ऐसा कवि ने कहीं नही लिखा है। तुलसी के राम इस सम्बन्ध मे अधिक उदार है। 'कवितावली' मे सीता की आतुरता लखकर उनका नेत्रो से अश्रु बहाना[2] और सीता को श्रमित जानकर पैर के कांटे निकालने मे विलम्ब करना,[3] तथा 'गीतावली' मे उनकी जिज्ञासा पर 'अभी वन कहाँ' कहकर नेत्रो मे जल भर लेना[4] आदि उल्लेख राम के आदर्श पति-भाव के पोषक है।

तीसरा स्थल है-सीता-हरण का, जब सूर के राम उनको कुटी मे न पाकर बिलख उठते हैं।[5] बहुत खोजने पर भी जब सूर के राम को सीता का पता नही चलता तब तो वे विक्षिप्त-से होकर लक्ष्मण से अपनी दशा कहते हैं।[6]

सूर के राम का यह उन्माद इतना बढ जाता है कि वे जड-चेतन का भी भेद भूलकर द्रुम-बेली और पशु-पक्षी से उनका पता पूछने लगते है—

फिरत प्रभु पूछत द्रुम बेली।
अहो बधु, काहू अवलोकी इहिं मग बधू अकेली।
अहो विहग, अहो पनग नृप, या कदर के राइ।
अबके मेरी बिपति मिटाओ, जानकि देहु बताइ।
चपक पुहुप बरन तन सुन्दर, मनो चित्र अवरेखी॥[7]

---

१. सूरसागर, ९, १६८
२. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद ११
३. वही, छद १२
४. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद १३
५ सूरसागर, ९, ६२
६. वही, ९, ६३
७. वही, ९, ६४

सीता की खोज मे\अशोकवाटिका पहुँचने पर हनुमान ने राम की विरह-दशा का जो वर्णन उनसे किया है, वह भी आदर्श पति भाव का परिचायक है—

कल्प समान एक छिन राघव, क्रम क्रम करि हैं वितवत।
तातें हौं अकुलात, कृपानिधि ह्वै पैंडो चितवत॥[1]

'कवितावली' मे तो नही, 'गीतावली' मे राम के इस पक्ष का सामान्य सकेत भर है।[2]

ई **राम के व्यक्तित्व के अन्य पक्ष**—आलोच्य कवियो ने राम के चरित्र के अन्य कई पक्षो पर भी प्रकाश डाला है, यथा—शील, त्याग, शौर्य और आत्म-विश्वास कृतज्ञता, शरणागत वत्सलता, नीतिज्ञता, जन्मभूमि-प्रेम आदि। स्पष्ट है कि राम के व्यक्तित्व के इन अनेक गुणो पर प्रकाश डालकर आलोच्य कवियो ने उन्हे मानवता के उच्चतम निदर्शन के रूप मे प्रतिष्ठित करने का श्लाघ्य प्रयास किया है।

शील—राम के शील का परिचय सूरसागर ने गुरुवर वशिष्ठ और वयो-वृद्ध मत्री सुमत्र के प्रति विनम्र व्यवहार एव श्रद्धा-भाव द्वारा दिया है। चित्र कूट मे वे भरत को समझाते हैं कि उन दोनो को ही अपना शुभचिंतक समझ कर उनकी मत्रणा से ही राज्य का सचालन करके तुम प्रजा का कल्याण कर सकोगे—

गुरु बसिष्ठ और मिलि सुमत सो परजा हेतु विचारें।[3]

चित्रकूट से गुरुवर वशिष्ठ और मत्रिवर सुमत्र की विदा के समय राम स्वय भी उनसे विनय का व्यवहार करते हैं।[4] वनवास के उपरात राम जब अयोध्या लौटते हैं, तब गुरवर वशिष्ठ का परिचय उन्होने जिन शब्दो मे अपने सखाओ को दिया है, वह भी राम के शील का परिचायक है।[5] तुलसीदास ने 'गीतावली' मे विश्वामित्र के प्रति राम का ससकोच, सभय और सविनय बात करना बताकर उनके शील की पुष्टि की है।[6] विश्वामित्र के प्रति राम के सेवा-भाव की प्रशसा करते करते स्वय कवि भी गद्गद् होकर कह उठता है—

---

१ सूरसागर, ९, ८७
२ (क) गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद ११ (ख) वही, सुन्दरकाण्ड, पद ८
३ सूरसागर, ९, ५४
४ वही, ९, ५५
५ वही, ९, १६७
६ गीतावली, बालकाण्ड, पद ५५

रूप के अगार, भूप के कुमार, सुकुमार,
गुर के प्रान आधार मग सेवकाई है।
नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,
कौसिक के कोही बस किये दुह भाई हैं॥[1]

त्याग—राम के त्याग का वर्णन तुलसी ने 'कवितावली' के दो छदो मे किया है। राजसी वस्त्राभूषणो के साथ-साथ अयोध्या का पैतृक राज्य 'बटाऊ' की भाँति त्याग देना साधारण बात नही थी।[2] कविवर सेनापति ने राम के मानवीय गुणो की विशिष्ट चर्चा नही की है, फिर भी उनके त्याग की प्रशसा करने का लोभ वे नही सवरण कर पाये हैं।[3]

शौर्य और आत्मविश्वास—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ने जिस असाधारण शौर्य का परिचय दिया, उसका वर्णन आलोच्य कवियो ने नही किया है। हाँ, धनुष-भजन के अवसर पर उसके साकेतिक वर्णन में प्रायः सभी ने रुचि ली है। कवि सूर उस पिनाक को 'अतिदुसह' और 'दीरघ'[4] बताकर और तुलसी ने 'कवितावली' में समस्त कठोर पदार्थो का सार लेकर उसके निर्माण किये जाने की बात कहकर[5] उसका भजन करने वाले राम के असाधारण शौर्य की ही परोक्ष पुष्टि की है। इस अवसर पर उपस्थित राजाओ पर राम-प्रताप के आतक का वर्णन सेनापति ने भी किया है।[6]

'गीतावली' मे कवि ने राम के आत्मविश्वास का बहुत सुन्दर परिचय दिया है। रावण द्वारा सीताहरण की बात मरणासन्न जटायु से सुनकर राम उनसे निवेदन करते हैं कि पिता से तुम इस घटना का जिक्र मत करना, कुछ दिनों मे स्वयं रावण सपरिवार वहाँ आकर अपनी करनी और उसका फल उन्हे सुनाएगा—

---

१. गीतावली, बालकाण्ड, पद ७१
२. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद १ और २
३. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद २९
४. यह अति दुसह पिनाक, पिता प्रन राघव वयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यो, सखि ! यह संसय मोर॥
—सूरसागर, ९, २३
५. कवितावली, बालकाण्ड, छंद १०
६. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छद १२

मेरी सुनियो, तात ! सँदेसो ।
सीय हरन जनि कहेहु पिता सो, ह्वैहै अधिक अँदेसो ।
रावरे पुन्य-प्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं ।
कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं ॥[१]

लका के युद्ध मे राम ने जिस शौर्य का परिचय दिया, उसका वर्णन भी सभी आलोच्य कवियो ने किया है ।

विभीषण को अपने पास आया जानकर राम उसको लका का राज्य देने की प्रतिज्ञा जिस प्रकार करते है, उनसे भी उनका असाधारण आत्मविश्वास ही सूचित होता है—

तब हौ नगर अजोध्या जैहौ ।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य विभीषन दैहौं ॥[२]

कृतज्ञता—जटायु, हनुमान एव अन्य सहायको के प्रति उनकी सहायता के लिए, आलोच्य कवियो ने राम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते बताये गये है । जटायु के प्रति राम की कृतज्ञता का उल्लेख 'गीतावली' मे विशेष रूप से हुआ है ।[३] हनुमान के प्रति राम की कृतज्ञता सूचित करने के लिए तुलसी ने तो 'कवितावली' मे इतना ही लिखा है कि ये मानो उनके हाथ बिक गये—

हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिन्धु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै ॥[४]

परन्तु सूर ने उसका अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन किया है । उनके राम तो लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान को 'सकटमित्र,' 'पुनीतमीत' और 'हितबधु' तक कहते है—

कहाँ गयौ मारुत पुत्र कुमार ।
ह्वै अनाथ रघुनाथ पुकारे, सकट मित्र हमार ॥
अहो पुनीत मीत केसरिसुत, तुम हित बन्धु हमारे ।

---

१ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद १६
२ सूरसागर, ९, ११३
३ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद १३ से १५
४ कवितावली, लकाकाण्ड, छद ५५
५ सूरसागर, ९, १४७

शरणागत वत्सलता—आलोच्य कवियों ने विभीषण को राम की शरण में आया बताकर इनकी शरणागत-वत्सलता के वर्णन का अवसर निकाल लिया है। राम के इस गुण को 'कवितावली' और 'कवित्त रत्नाकर' में विशेष रूप से उभारा गया है। विभीषण को लंकाधीश बनाने का ध्यान राम को इतना अधिक है कि लक्ष्मण के शक्ति लगने पर भी भाई के जीवन से अधिक राम उसकी ही चिन्ता करते हैं।[1]

'कवितावली' में भी राम को न तो सीता की चिंता करते बताया गया है और न लक्ष्मण की, चिन्ता वे करते हैं तो शरण में आये हुए एकमात्र विभीषण की—

तीय हरी, रन बंधु परयो, पै भरयो सरनागत सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है॥[2]

सेनापति ने राम की शरणागत वत्सलता का वर्णन दो छंदों में किया है[3] और उसे अपने नायक की असाधारण दानवीरता के रूप में देखा है।[4]

नीतिज्ञता—व्यवहार कुशल व्यक्ति आवश्यक प्रसंगों और समस्याओं के सम्बन्ध में अपने सहायकों से मंत्रणा करके उनके मनोभावों का परिचय पा लेता है और उनकी सम्मति भी जान लेता है। 'गीतावली' के राम इसी नीतिज्ञता का परिचय उस समय देते हैं जब राक्षसराज रावण का अनुज विभीषण उनकी शरण में आता है। उसे आश्रय दिया जाय या नहीं, यह जानने के लिए राम जाम्बवान, सुग्रीव, नल, नील, अंगद आदि को बुलाते हैं[5], जब सबके साथ-साथ हनुमान[6] और लक्ष्मण[7] भी उसे शरण देना ही उपयुक्त बताते हैं, तभी राम वैसा करते हैं। स्पष्ट है कि राम की इस नीतिज्ञता ने उक्त सहायकों का मान उनकी दृष्टि में बढ़ा दिया होगा।

जन्मभूमि-प्रेम— राम के जन्मभूमि प्रेम का वर्णन केवल सूरदास ने दो पदों में किया है।[8] एक पद में राम लंका से लौटते समय जन्मभूमि अयोध्या को सुरपुर से भी अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।

---

१. कवितावली, लंकाकाण्ड, छंद ५२
२. वही, छंद ५३
३. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद ३९, ४०
४. वही
५. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद ३२
६. वही, पद ३३
७. सूर रामचरितावली, पद १९१
८. वही, पद ३४

राम के व्यक्तित्व के अनेक और गुणा की चर्चा आलोच्य कवियो न की है, परतु उनके नायक के सम्बन्ध मे उनके दृष्टिकोण का परिचय केवल उक्त गुणो से ही मिल जाता है।

ग भरत—भ्रातृ-स्नेह के कारण प्राप्त राज्य का जो असाधारण त्याग भरत ने किया, वही हिन्दू समाज की दृष्टि म उनको स्मरणीय बनाय हुए है। 'कवितावली और 'कवित्तरत्नाकर' मे भरत के इस महत्व का वैसा उल्लेख नही है जैसा सूर की रामकथा और तुलसी-गीतावली मे। ननिहाल से लौटते ही भरत को अग्रज की वनयात्रा की सूचना मिलती है और सूर के भरत तत्काल कैकयी क पास पहुच कर उसके 'कुमत्र के लिए उसकी भर्त्सना करत हुए कहत हैं—

तैं कैकई कुमत्र कियो।

अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ करि नृप अपराध लियौ।[1]

धृग तव जन्म, जियन धृग तेरो, कही कपट मुख बाता।[2]

'गीतावली के भरत भी माता कैकेयी के प्रति, सूर के भरत की भाति ही, इस अवसर पर कटु वचन कहते सुनायी देते हैं।[3] इसी प्रसग के दूसरे पद म 'गीतावली' के भरत का स्वर कुछ अधिक सयत हो गया है, सम्भवत राम के स्वभाव की उदारता के स्मरण ने ही उनके स्वर की कटुता दूर कर दी है।[4]

कौशल्या और भरत की भेंट का प्रसग 'सूरसागर मे नही है, परन्तु 'गीतावली' मे भरत जिन शब्दो मे माता के कुमत्र से अपनी अनभिज्ञता सूचित करते है, उनसे इस प्रसग मे उनकी ग्लानि स्पष्ट है—

जो पै हौ मातु मते महँ ह्वैहौ।

तौ जननी! जग मे या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौ?[5]

भरत अयोध्या के राज्य को अग्रज का ही प्राप्य समझते हैं। इसी कारण वे बहुत स्पष्टता से कहते हैं—

(क) हम सेवक, वै त्रिभुवन पति, कत स्वान सिंह बलि खात।[6]

---

१ सूरसागर, ९, १६५
२ वही, ९ ४८
३ वही, ९, ४९
४ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ६०
५ वही, पद ६१
६ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ६२
७ सूरसागर, ९ ४७

प्रथम परिचय वनवास-प्रसग मे मिलता है, जब उनके मुख से अयोध्या मे ही रहने की बात सुनते ही[1] वे नेत्रो मे जल भरकर उनके चरणो से लिपट जाते हैं।[2]

आ. आज्ञाकारिता—लक्ष्मण यो तो सभी अवसरो पर अग्रज की सभी आज्ञाएँ शिरोधार्य करते बताये गये हैं, परन्तु 'गीतावली' मे सीता का निर्वासन ऐसा प्रसग है जब उनकी आज्ञाकारिता विशेष रूप से सामने आती है। राम की इस अवसर पर निष्ठुर आज्ञा है गर्भवती सीता को वाल्मीकि के आश्रम मे छोड़ आने की जिसे लक्ष्मण केवल 'जो आज्ञा' कहकर ही शिरोधार्य करते हैं।[3] विधि की वामता देखकर लक्ष्मण ग्लानि से गल रहे है,[4] भावज के दीन वचन सुन कर उनके नेत्रो से अश्रु बहने लगते है,[5] बहुत विकल होने पर भी वे आज्ञापालन से पीछे नही हटते और यही सोचते है कि पिता को कठोर वचन कहने का ही कुफल आज इस दारुण दुख के रूप मे मुझे सहन करना पड रहा है।[6] इसमे कोई सन्देह नही कि लक्ष्मण को आज जिस कर्म के सम्पादन का दायित्व सौंपा गया है, वह घोर कष्टदायी है, परन्तु अग्रज के प्रति आज्ञाकारिता का ऐसा आदर्श भाव उनमे है कि वे उनका प्रत्येक आदेश 'अविचारणीय' रूप से करणीय मानते हैं, चाहे उसके सम्पादन मे उनको कितना भी मानसिक क्लेश क्यो न सहना पडे। 'गीतावली' के कवि ने इस अवसर पर लक्ष्मण की घोर मानसिक पीडा का मार्मिक अकन किया है।[7]

इ. आत्मविश्वासपूर्ण शौर्य—लक्ष्मण के आत्मविश्वास का प्रथम परिचय धनुषभग के अवसर पर मिलता है। किसी प्रतिष्ठित वीर द्वारा धनुष का भंग न होना देखकर जब राजा जनक निराश होकर वीरो को लाछित करने वाले वचन कहते है, तब लक्ष्मण आत्मविश्वासपूर्ण स्वर मे अपने शौर्य का बखान करते हुए उत्तर देते हैं—

> भूपति, विदेह कही नीकियै जो भई है।
> बड़े ही समाज आजु राजनि की लाज-पति
> हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है।[8]

---

१. सूरसागर, ९, ३६
२ सूरसागर, ९, ३७
३. गीतावली, उत्तराकाण्ड, पद २७
४. 'तपन गरत गलानि' —गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद २८
५. गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद २९
६. वही पद ३०
७ वही, पद ३१
८. गीतावली, बालकाण्ड, ८५

श्रीराम द्वारा धनुष तोड दिये जाने पर जब कुटिल राजागण विवाह का विरोध करने को प्रस्तुत हो गये और उनका वह भाव देखकर जनकपुर वासी भयभीत से दिखायी देने लगे तब भी लक्ष्मण द्वारा निर्भीक स्वर मे कहे गये वचनो से उनके आत्मविश्वास का परिचय मिलता है।[1]

लका के युद्ध मे विश्वविजयी राक्षसराज की सेना के चुने हुए वीरो—मेघनाद और कुम्भकर्ण को मारने की प्रतिज्ञा सूर के लक्ष्मण करते दिखायी देत हैं—

(क) रघुपति जौ न इन्द्रजित मारौं।
तौ न होउँ चरननि कौ चेरा, जौ न प्रतिज्ञा पारौं।[2]
(ख) लषन कह्यौ करवार सम्हारौं।
कुभकरन अरु इन्द्रजीत कौं, टूक-टूक करि डारौं।[3]

'गीतावली' मे तो नही, 'कवितावली' के एक छद मे लका के युद्ध मे लक्ष्मण के शौर्य का वर्णन तुलसी ने भी किया है—

सूर गजोइल साजि सुबाजि सुसेन धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं।[4]

इ हनुमान—हनुमान के चरित्र की दो विशेषताओं—आज्ञाकारिता और असाधारण वीरता का वर्णन प्राय सभी आलोच्य कवियो ने मुक्त कण्ठ से किया है।

अ. आज्ञाकारिता—हनुमान अपने को श्रीराम का सेवक समझते हैं और 'सेवक' का आदर्श स्वामी का आज्ञाकारी होना ही मानते है—

सेवक को सेवापन एतो, आज्ञाकारी होइ।[5]

हनुमान इस सेवक धर्म के निर्वाह म तभी तत्पर हो पाते हैं जब उन्हे अपने स्वामी की आज्ञा मिल जाती है। सूर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि राम की आज्ञा ही जैसे हनुमान को असाधारण काय करने की शक्ति प्रदान कर देती है—

हनुमत बल प्रगट भयो, आज्ञा जब पाई।[6]

तात्पर्य यह कि कार्य सम्भव है या असम्भव, हनुमान के सामने इसका प्रश्न नही उठता, बस जिस कार्य के लिए स्वामी की आज्ञा मिल गयी, वह समझिए कि पूर्ण हो गया, परन्तु जिस बात के लिए आज्ञा नही मिलती है उसका सपादन करने म उन्हे अन्त तक सकोच बना रहता है। कहना चाहिए कि उसके सम्पादन

---

१ सूरसागर, ९, १३७
२ वही, पद ९५
२ वही, ९, १४३
३ कवितावली, लकाकाण्ड, छद ३३
५ सूरसागर, ९, ९९
६ वही, ९, ९६

का उनको नाहम ही नही होता। अशोक-वाटिका मे उन्होंने सीता से कहा भी है कि रावण को मारकर आपको मैं राम के पास इसी कारण नही ले जा रहा हूं कि राम ने मुझे वैसा करने की आज्ञा नहीं दी है--

क. रावन मारि तुम्हें ले जातौ, रामाज्ञा नहि पायौ।
ख. अबहि लिवाइ जाउँ सब रिपु हति,
इरपत हौं आज्ञा अपमानहि।[१]

लका जलाकर हनुमान ने अपने स्वामी की शक्ति का आतंक ही राक्षसों पर बैठाया है, फिर भी उन्हें चिंता लगी रहती है कि बिना स्वामी की आज्ञा पाये वैसा करके मैंने अपराध ही किया है--

सोचि जिय पवन पूत पछिताइ।
बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहै लोइ।[२]

सेतु-बन्धन के पूर्व राम एक बार हनुमान की ओर मात्र देखते ही हैं, बस उनकी दृष्टि के मूक आदेश से ही सूर के हनुमान को जैसे अपार बल मिल जाता है और वे बड़े आत्मविश्वास के साथ अनेक असाधारण कार्यों के सपादन को प्रस्तुत हो जाते हैं।[३]

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम स्पष्ट शब्दों मे कहते हैं कि हनुमान के अतिरिक्त कोई अन्य सजीवनी लाने मे समर्थ नही है।[४]

तुलसी की 'गीतावली' मे भी हनुमान अपने स्वामी को बन्धु के वियोग मे दु.खी देखकर इसी प्रकार की उक्तियाँ कहते है।[५]

उक्त कथन से स्पष्ट है कि सूर के हनुमान राम के परम आज्ञाकारी सेवक के रूप मे चित्रित है। यो तो तुलसी, सेनापति आदि आलोच्य कवियो के हनुमान भी राम के आदेशों का तत्परतापूर्वक पालन करने को सदैव कटिबद्ध

---

१. सूरसागर, ९, ८८
२. वही, ९, ९५
३. वही, ९, १०८-१०९
४. नाहिन और कियो कोउ समरथ, जाहि पठावौं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै, बिना पौन के पूत॥
--सूरसागर, ९, १४७
५. गीतावली, लकाकाण्ड, पद सं० ८

रहते है, परन्तु इन कवियो ने इनकी आज्ञाकारिता-भावना का उस रूप मे चित्रण नही किया है जिस रूप मे सूर ने किया है। जिनको हनुमान स्वयं स्वीकार करते है कि आपकी आज्ञा ही मेरा एकमात्र बल है जिसे पाते ही मैं सब कुछ तुरन्त कर डालना चाहता हू, कोई बात आगे के लिए नही टालना चाहता, परन्तु जब तक मुझे आपकी आज्ञा नही प्राप्त होती, तब तक जैसे मेरी कर्मठता पर ऐसा अकुश लग जाता है कि मैं कुछ कर ही नही पाता—

विना कहे अकुस मेरे सिर, तातैं करत न आगी।
बात उठाय धरौ नहि राखौ और दिननि कौ लागी ॥[1]

सेवक की आज्ञाकारिता की शोभा उसकी विनयशीलता मे मानी जाती है। इस प्रकार विनयशीलता का आज्ञाकारिता की पूरक भावना कहा जा सकता है। सूर के हनुमान म यह पूरक गुण भी विद्यमान है। वे अनेक असाधारण कार्यो का सपादन करके भी उसका श्रेय स्वामी के प्रताप को ही सदैव देते है, अपनी शक्ति का गर्व कभी नही करते। सीता जब हनुमान से पूछती है कि दुस्तर सागर पार करके अमख्य राक्षसो द्वारा सुरक्षित लकापुरी मे प्रवेश तुम कैसे कर सके, तब इनका सविनय उत्तर है—

राम प्रताप सत्य सीता को, यहै नाव कनधार।
तिहि अधार छिन मे अवलध्यौ, आवत भई न बार ॥[2]

लका मे हनुमान के लौटने पर जब राम उनसे पूछते है कि त्रैलोक्य विजेता रावण की लका जलाकर सुरक्षित तुम कैसे लौट सके, तब भी इनका विनम्रतासूचक उत्तर है—

तुम्हरे क्रोध साप सीता के, दूरि जरत हम देखे।
हौं जगदीस, कहा कहौं तुम सौं, तुम बल तेज मुरारी ॥[3]

सजीवनी लाकर जब हनुमान लक्ष्मण को जिलाने मे सहायक बनते है और राम उनकी प्रशसा करते है, तब भी हनुमान ससकोच कहते हैं—

जु कुछ करी सु प्रताप तुम्हारे, हौं को करिबे लायक।[4]

असाधारण वीरता—सूरदास न हनुमान की वीरोक्तियाँ तो बहुत विस्तार से दी है, उनके असाधारण आत्मविश्वास का भी सुन्दर चित्रण किया है। वे रावण की सभा मे बडी निर्भीकता से उसको फटकारते हुए कहते है—

---

१. सूररामचरितावली, पद स० ११५ २. सूरसागर, ९, ६९
३ वही, ९, ७०   ४. सूररामचरितावली, पद स० १७७

जे जे तुव सूर सुभट, कीट सम न लेखौं।
तौ कौं दसकंध अघ, प्राननि बिनु लेखौं॥
नख सिख ज्यौं मीन जाल, जड्यौ अंग अंग।
अजहुँ नाहिं सुक धरत, बानर मनि भंग॥
जोइ सोइ मुखहिं कहत, मरन निज न जानै।
जैसे नर, मनिपात भरै बुध बखानै॥[1]

आगे चलकर अपने स्वामी राम से अपनी प्रशंसा सुनकर वे सविनय परन्तु आत्मविश्वासपूर्ण स्वर में कहते हैं—

हौं सेवक हरि ऐसी तुम्हरी, निज मुखकर का गाऊँ।
सुर और असुर सबै जुरि आवैं, रन नहिं पीठ दिखाऊँ॥[2]

सूरदास ने अपनी रामकथा में हनुमान की वीरता का वैसा चित्रण नहीं किया है, जैसा तुलसी की कवितावली में है। इस काव्य के लंकाकाण्ड के अठारह छंदों में हनुमान के युद्धवीर रूप का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है।[3] 'गीतावली' में भी, सूर की रामकथा की भांति ही हनुमान के युद्ध-वीर रूप का तो चित्रण नहीं किया है, हाँ राक्षसराज की सभा में अवश्य निर्भीकतापूर्वक कहलाया है—

जो हौं प्रभु आयसु लै चलतो।
तौ यहि रिस तोहि सहित दसानन! जातु धान-दल दलतो।
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक-खल खलतो॥
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो।
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो॥[4]

कविवर सेनापति ने रामपक्ष के पुरुषों में सम्भवतः सबसे अधिक वर्णन हनुमान का ही किया है जिसके सम्बन्ध में 'रत्नाकर' में सात छंद लिखे गये हैं। पहले तीन छंदों में उनके सागर पार जाने के वेग का वर्णन है।[5] हनुमान लंका पहुंचते हैं—सीता की खोज में, परन्तु सेनापति उन दोनों के संवाद में रुचि न लेकर आगे के दो छंदों में लंका-दहन का वर्णन करते हैं।[6] इसके उपरांत सेनापति ने हनुमान के युद्ध-वीर रूप का और वर्णन एक छंद में बहुत प्रभाव-

---

१. सूरसागर, ९,९७
२. सूररामचरितावली, पद ११४
३. कवितावली, लंकाकाण्ड, छंद ३८
४. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद १३
५. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद ३२
६. वही, छंद ३५, ३६

पूर्ण किया है।[1] हनुमान को आलोच्य कवियो ने राम के सवको मे शिरोमणि माना है और इसी कारण अपने स्वामी के श्रीमुख से उनकी प्रशसा म कहलवाया है—

जिह्वा रोम रोम प्रति नाही, पौरुष गनी तुम्हारे।
जहा जहा जिहि काल सभारे, तह तह त्रास निवारे।
सूर सहाइ कियौ बनबसिके, बन बिपदा दुख टारे ॥[2]

च अगद—वानरो के युवराज अगद के चरित्र की जिन विशेषताओ का उल्लेख आलोच्य काव्यो मे हुआ है, वे हैं—स्वामिभक्ति और आत्मविश्वास पूर्ण निर्भीकता।

(अ) **स्वामिभक्ति**—अगद का पिता वालि राम द्वारा मारा गया था, इस लिए इस पक्ष के वीरो म यदि किसी की स्वामिभक्ति म किसी प्रकार सदेह किया जा सकता था तो वह था केवल अगद। केशवदास की रामचद्रिका म अगद का राम के प्रति कहा गया एक कथन है भी, जिसम उसने युद्ध के लिए चुनौती दी है।[3] परन्तु आलोच्य कवियो का अगद, राम के प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति का परिचय आद्यन्त देता है। लका की सभा म अगद क पहुँचने पर जब रावण राम का उपहास करता है, तब स्वामी की निन्दा की खीज उसने तीक्ष्ण स्वर म प्रकट की है।[4] अगद के ही मुख से राम द्वारा बालि का वध किये जाने की बात सुनकर, उसी सूत्र को पकडकर रावण राजनीति की चाल चलता है और उसके हृदय मे पितृघाती राम के प्रति विद्रोह जगाने का कहता है।[5]

वस्तुत रावण के वे शब्द इतने प्रभावशाली है कि अगद यदि क्षण भर को विचलित हो गया हो तो आश्चर्य की बात नही होगी। रावण तभी एक और चुभता हुआ तथ्य सामने रखकर अगद को सुग्रीव क प्रति भी विद्रोही बनाने को कहता है—

होहि ऐसौ बली, काहे नहि सुग्रवल, बादि से बाप कौ बैर लीनौ।
तात क भ्रात तव मान पत्नी करी, सत्रु की मरन जाय मूंड दीनौ ॥[6]

परन्तु सूर का स्वामिभक्त अगद रावण की चाल समझ लेता है और दृढता-पूर्वक उत्तर देता है।[7]

---

१ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद ३७ २ सूरसागर, ९, १४७
३ केशवदास, रामचद्रिका, २६, ३४ ४ सूरसागर, ९, १२९
५ वही, ९, १३४ ६ सूररामचरितावली पद १५१
७ सूरसागर ९, १३४

अगद के उत्तर का अर्थ रावण यह लगाता है कि अपने को साधनहीन समझ कर ही वानरो का यह युवराज सुग्रीव और राम से विद्रोह करने का साहस नही जुटा पा रहा है, अतएव वह नयी युक्ति से काम लेता है और लका के आधे राज्य का प्रलोभन देकर कहता है कि यदि तू उनका विद्रोही बन जाय तो मैं ससैन्य तेरी सब तरह से सहायता करने को प्रस्तुत हू।[1] अगद की स्वामिभक्ति मे यदि जरा भी शिथिलता होती तो उक्त प्रलोभन उसे अवश्य डिगा देता, परन्तु राम के प्रति उसका सेवक भाव सच्चा है, इसी कारण वह दृढ स्वर में उत्तर देता है—

श्री रघुनाथ चरन व्रत उर धरि, क्यो नहि लागत पाइ ?
सबके ईस परम करुनामय, सबही कौ सुखदाइ ।[2]

आश्चर्य है कि 'कवितावली', 'गीतावली' तथा 'कवित्तरत्नाकर' आदि मे अगद की स्वामिभक्ति की परीक्षा के उक्त प्रसगो की चर्चा भी नही की गयी है।

(आ) **आत्मविश्वासपूर्ण निर्भीकता**—राम का दूत बनकर अगद का लका की राजसभा मे पहुँचना ही एकमात्र ऐसा प्रसग है जिससे इसकी आत्मविश्वास-पूर्ण निर्भीकता का ज्वलत परिचय मिलता है। इस प्रसग का वर्णन प्राय सभी आलोच्य कवियो ने समान रुचि से किया है। सूरदास का अगद तो रावण के व्यक्तित्व या उसके सैन्यबल से लेशमात्र आतकित नही होता और विवाद बढते ही उसको मार डालने को खिलवाड समझता है।[3] लका की राजसभा के प्रसंग मे अगद के प्रत्येक वाक्य से उसकी निर्भीकता की पुष्टि होती है। उसके आत्म-विश्वास का परिचायक वह स्थल है जब वहाँ उपस्थित समस्त राक्षस वीरो को चुनौती देता हुआ वह सक्षोभ कहता है कि यदि कोई भी मेरे इस चरण को जरा भी डिगा दे तो राम, सीता के लिए युद्ध किये बिना ही वापस चले जायेंगे।[4] लंका के सभी प्रतिष्ठित वीर अगद का पैर डिगाने का लाख-लाख प्रयत्न करते हैं, परन्तु किसी को सफलता नही मिलती। तब रावण स्वय ऐसा करने को उठता है। यह देखकर अगद ऐसी बात कहता है जिससे सारी सभा के सामने रावण खिसिया कर रह जाता है। अगद का कथन है कि मेरे चरण पकडने से तेरा उद्धार नही होगा, अपना उद्धार चाहता है तो जाकर राम के चरण पकड़—

१. सूर सागर, ९,१ ३४ २ सूरसागर, ९, १३४
३. सूरसागर, ९, १२९-१३२ ४. वही, ९, १३२

कह्यौ अगद, कहा मम चरन कौं गहत,
चरन रघुबीर गहि क्यो न जाई ।[1]

कवितावली का अगद भी रावण से बडे आत्मविश्वास के साथ कहता है कि चित्रकूट पर्वत पर बसी लका को समुद्र मे डुबो देना, केवल हाथ के थपडो से उसको तोड फोड डालना, तरे सारे सभासदों को मीजकर उन रक्त मे नहाना आदि बातें मेरे लिए बहुत सुगम है परन्तु स्वामी की आज्ञा न होने से वैसा करने से अपने को रोक रहा हूँ। अब यदि मैं बालि का पुत्र होऊँगा तो युद्ध मे तेरे दसो मुखो के सारे दात तोड़ूगा।[2] कवितावली के अन्य दो छदो म रावण की सभा म अगद द्वारा पाव रोपे जाने और किसी राक्षस वीर द्वारा उसे डिगान म सफल न हो पाने का वर्णन है जिसकी शैली से अगद के आत्मविश्वास के गान म कवि का स्वर भी सुनायी दता है।[3]

गीतावली म अगद का दूतत्व लकाकाण्ड के तीन पदो[4] में वर्णित है, जिनम रावण को समझान के लिए कहे हुए कुछ सतर्क कथन मात्र हैं।

'कवित्तरत्नाकर' मे अगद के दूतत्व का प्रसग उठाया तो गया है, परन्तु कवि तत्सम्बन्धी छदो म अगद के आत्मविश्वास के चित्रण मे उतना रस नहीं लता जितना उसकी प्रशसा मे। एक छद में अगद द्वारा सभा मे पैर रोपे जाने ही मानो पातालो का पापड सा फूट जाना उसने बताया है।[5]—यही बात तीसरे छद के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है, क्योकि उसमे भी अगद के पाँव रोपने पर भीषण परिणाम के भाव वर्णित है।[6]

परन्तु उक्त दोनो के बीच के छद मे अवश्य सेनापति ने अगद के मुख से आत्मविश्वासपूर्ण स्वर मे प्रभावशाली रीति से गर्वोक्ति कराई है।[7]

रावण-पक्ष के पात्र—रावण, कुभकरण मेघनाद और विभीषण इस वर्ग के चार प्रमुख पात्रो की चर्चा आलोच्य काव्यो मे हुई है, परन्तु कवियो का ध्यान मुख्य रूप से केवल रावण पर ही केन्द्रित रहा है और उसके चरित्र के चित्रण मे ही उन्होंने सर्वाधिक रुचि दिखाई है। यह ठीक है कि राम के भक्त होने के कारण आलोच्य कवियो ने रावण के दोषो का उद्घाटन तो विस्तार से किया है गुणो

---

१ सूरसागर, ९, १३५
२ कवितावली, लकाकाण्ड, छद १४
३ कवितावली, लकाकाण्ड, छद १५, १६
४ गीतावली, लकाकाण्ड, पद २ ३ ४
५ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद ५३
६ वही, छद ५५
७ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद ५४

की उपेक्षा ही की है, फिर भी प्रसगवश कुछ ऐसे उल्लेख उन्होंने कर दिये हैं जिससे रावण के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी पाठक के सामने आ जाता है।

क. रावण के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष—तुलसीदास, सेनापति आदि कवियों ने अपने परमाराध्य राम की भक्ति के आवेश में एक तो रावण के व्यक्तित्व को आलोच्य काव्यों में उभारने की ओर ध्यान नहीं दिया है और यदि उसके सम्बंध में कुछ लिखा भी है तो उसकी मदांधता, गर्वोन्मत्तता आदि का ही अधिक वर्णन किया है। इसके विपरीत कवि सूरदास रावण के चरित्र के उज्ज्वल पक्ष के चित्रण की भी उपेक्षा नहीं करते। उन्होंने अपनी राम कथा में रावण की अलौकिक शक्ति, क्षत्रियोचित आत्माभिमान, असाधारण भक्ति और असाधारण आध्यात्मिक ज्ञान का भी परिचय देकर रावण के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान की है।

अ अलौकिक शक्ति— रावण की वीरता को असाधारण नहीं, अलौकिक कहना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी के राजाओ को ही नहीं, उसने देववर्ग को भी पराजित कर लिया है। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए उसने कहा है—

(क) पाक पावक करै, वार सुरगुरु कहै, वेद ब्रह्मा पढ़ै पौरि टेरे।
जच्छ, मृतु, वासुकीनाग, मुनि गधर्व, सकल बसु, जीति मे किये चेरे॥
कोटि तैंतीस मम सेव निसिदिन करत,"———————॥[1]

(ख) सुर असुर नाग बली जेते है जगत मे, इद्र, ब्रह्मा सबहि मैं नवाए।
छत्र की छाह इन्द्रादि थरथर करैं,"——————॥[2]

वस्तुत: रावण की उक्त असाधारणता का वर्णन करके सूरदास ने राम का ही माहात्म्य बढाया है, क्योंकि जिसने सारे देववर्ग को अपने अधीन कर रखा हो, उसे मारने वाला उससे अधिक ही बली समझा जायगा।

आ. क्षत्रियोचित आत्माभिमान—सूर का रावण जन्म से ब्राह्मण भले ही रहा हो, परन्तु अस्त्र-शस्त्र द्वारा राज्य की प्राप्ति करने के उपरात तो उसकी जीवन-चर्या क्षत्रियोचित ही हो जाती है। अतएव रावण अपने क्षत्रियोचित आत्माभिमान का आद्यत निर्वाह करता है। अपनी भगिनी शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिए तो उसने सीता का हरण किया था। इसलिए जब राम ससैन्य लका पर आक्रमण करते हैं, तब रावण यदि प्राणो या राज्य के लोभ से उनकी शरण आ जाता तो उसका क्षत्रियत्व ही उसे धिक्कारने लगता। यही बात सूर के रावण ने अगद से बहुत स्पष्ट शब्दो में कही भी है—

१. सूरसागर, ९, १२९   २. सूरंरामचरितावली, पद १५१

सकट परें जो सरन पुकारौं, नौ छत्री न कहाऊं।
जन्महि तें तामस आराध्यौ, कैसे हित उपजाऊं॥[1]

तात्पर्य यह कि रावण का क्षत्रियोचित अभिमान ही उसको राम के सामने झुकने से अन्त तक रोकता रहता है क्योंकि झुक जाने पर उसके प्राणों और राज्य की रक्षा भले ही हो जाती, क्षत्रियत्व का विनाश निश्चित ही था।

ड असाधारण भक्ति—रावण शिव जी का ऐसा परम भक्त बतलाया गया है जिसने पूजा करके फूलों के स्थान पर अपने सिर हाथ से काट काट कर उन पर चढ़ाये हैं। यह तथ्य इतना विख्यात है कि स्वयं राम भी उसे स्वीकार करते हैं—

सिव पूजा जिहि भाँति करी है सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप फल प्रेरित, सिर माला सिव सीस चढ़ैहौं॥[2]

उधर शिव जी भी रावण की भक्ति से पूर्णतया सतुष्ट बतलाये गये है कि राम द्वारा उसके मारे जाने पर उसका सिर स्वयं उठा ले जाते हैं—

सिर सँभारि लै गयौ उमापति, रह्यौ रुधिर कौ गारौ।[3]

गीतावली मे हनुमान और अगद भी रावण की भक्ति और उसके तप की प्रशसा करते दिखाये गये हैं। हनुमान का कथन है—

तपबदल, भुजबल, कै सनेह बल, सिव-बिरचि नीकी बिधि तोपे।[4]

इसी प्रकार 'गीतावली' के लकाकाण्ड म राम का दूत अगद भी राक्षसराज को प्रशसा करता हुआ कहता है—

ता महँ सिव-सेवा, बिरचि बर,
भुजबल बिपुल जगत जस पायौ।[5]

भक्ति की अनन्यता तब समझी जाती है जब भक्त अपने आराध्य के अतिरिक्त किसी भी अन्य देवी-देवता की शरण जाना तो दूर, उसका स्मरण तक न करे। सूर का रावण इसी अनन्य भक्ति का परिचय देता हुआ अगद से कहता है—

अब तौ सूर यहै बनि आई, हर की निज पद पाऊँ।
ये दस सीस ईस निरमायल, कैसे चरन छुवाऊँ॥[6]

ई असाधारण आध्यात्मिक ज्ञान—सूर का रावण शिव का परम भक्त और ब्रह्मा का अपनी तपश्चर्या से सतुष्ट करने वाला होकर, राम का पर-

---

१ सूरसागर, ९, १३२   २ वही, ९, १५७   ३ वही ९ १५९
४ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद १२   ५ गीतावली, लकाकाण्ड, पद २१
६ सूरसागर, ९, १३२

ब्रह्मत्व न समझता हो, ऐसी बात भी नही है। वस्तुतः अपने आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर जानता है कि राम परब्रह्म हैं और सीता जगज्जननी हैं, फिर भी अपनी राक्षसी प्रकृति के कारण शत्रु-भाव की भक्ति ही कर सकता है, दास-भाव की नहीं। इसकी पुष्टि सीता को पतिव्रत से डिगाने मे असफल होकर लौटने वाली निशचरी दूती से कहे हुए सूर के रावण के निम्नलिखित कथन से होती है—

> जो सीता सत तैं बिचलैं, तौ श्रीपति काहि सँभारैं ।
> मोसे मुग्ध महापापी कौ, कौन क्रोध करि तारैं ॥
> ये जननी वै प्रभु रघुनन्दन, हौं सेवक प्रतिहार ।
> सीता राम सूर सगम बिनु, कौन उतारै पार ?[1]

रावण के उक्त कथन से स्पष्ट है कि वह राम को परम प्रभु और सीता को जगत्‌जननी मानता है और अपने को उनका सेवक भी समझता है, परन्तु अपना उद्धार उसे उनका विरोध करने मे ही दिखायी देता है, सेवक बनकर उनकी भक्ति करने मे नहीं। मंदोदरी से भी उसने कहा है कि सीता को लौटा देने का सीधा-सादा अर्थ होगा अपने हाथ से अपना वैकुण्ठ खो देना—

> सुनि प्रिय तोहि कथा सुनाऊँ ।
> यह परमोद बसत जिय मैं गति, कत वैकुण्ठ नसाऊँ ॥[2]

इसी प्रसंग के एक अन्य पद मे रावण ने सीता को विषय-वासना सागर से पार उतारने वाला 'बोहित' और राम को उसको 'केवट' भी बताया है—

> यह सीता निरमै कौ बोहित, सिंधु सुरूप बिषै को पानी ।
> मोहि गवन सुरपुर कौं कीबे, अपनैं कौं मैं हरि आनी ।
> सूरदास स्वामी केवट बिन, क्यों उतरै रावन अभिमानी ॥[3]

ख. रावण के चरित्र के दोष—'दुराग्रह' और 'मतिअंधता' रावण के चरित्र के दो ऐसे दोष हैं जिनका बार-बार उल्लेख आलोच्य कवियो ने किया है।

अ. दुराग्रह—रावण इतना बड़ा दुराग्रही है कि अपने हठ के आगे किसी की बात नही सुनता। राम के दूत-हनुमान[4] और अगद[5] की बात यदि रावण नही

---

१. सूरसागर, ९, ७८ २. सूर रामचरितावली, पद १२९ ३ वही, पद १३०
४. सूरसागर, ९, ९६; गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद १२
५ सूरसागर, ९ १३२; सूरसागर, ९, १३३
सूरसागर, ९, १३४; कवितावली, लकाकाड, छंद १०
कवितावली, लंकाकाड, छद १२; गीतावली, लंकाकाण्ड, पद २

मानता तो उसे अधिक दोष नही दिया जा सकता, क्योंकि ये शत्रु पक्ष के हैं जो अपने स्वामी की ही विजय चाहते हैं। परन्तु रावण जब अपने ही शुभ-चिंतक, आत्मीयजनो की सीख मानने को तैयार नही होता, तब उसका कारण दुराग्रह ही कहा जायगा। रावण हितैषियो मे निशचरी, विभीषण और मदोदरी प्रमुख हैं जो उसे बैर त्यागने की सलाह देते हैं। सर्वप्रथम वही दूती निशचरी उसे समझाती है जिसे उसने सीता को पातिव्रत से डिगाने के लिए नियुक्त किया था। यह दूती लौट कर रावण को समझाती है—

उनकैं क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता चाउ।[1]

रावण का अनुज विभीषण बहुत स्पष्ट शब्दो म राम के परब्रह्मत्व का बखान करके कहता है कि उनसे सधि कर लेने मे ही तुम्हारा कल्याण है।[2]

मदोदरी रावण की पत्नी है जिसका सारा सुख सौभाग्य रावण के जीवन से बधा है। अतएव जब जब राम पक्ष के किसी वीर द्वारा कोई ऐसा कार्य किया जाता है जो राक्षसो के आत्मबल को गिराने या घटाने वाला है, तब तब सूर की मदोदरी पति को राम से सधि करने को प्रेरित करती है। हनुमान द्वारा लका दहन किये जाने के बाद वह पति से कहती है—

कहत मदोदरी सुनहु दसकध पिय,
बडौ अपमान करि गयौ चेरौ।
अजहु मन समुझि कै मूढ ! मिलि राम सौं,
सूर मतिमद कह्यौ मान मेरौ।।[3]

सूर और तुलसी ने मदोदरी द्वारा रावण का प्रबोधन अनेक बार कराया है, किन्तु रावण इतना दुराग्रही है कि अपने किसी शुभचिंतक या आत्मीयजन का परामर्श मानकर राम से सधि करने का किसी तरह प्रस्तुत नहीं होता।

आ **मतिअधता**— मतिअध से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो प्रत्यक्ष घटना को देखकर भी उससे कुछ सीखने समझने को तैयार न हो। आलोच्य काव्यो मे रावण की इसी मतिअधता को उसके विनाश का सर्वोपरि कारण बताया गया है। इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियो से विहीन करने और सहस्रार्जुन का वध करने वाले परशुराम का राम से पराजित होना, महाप्रतापी वानर राज बालि का राम के एक ही बाण से मारा जाना ऐसे प्रसग हैं जो रघुवीर की असा-

१ सूरसागर, ९, ७८ २ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद २५
३ सूररामचरितावली, पद स० १०४

धारण वीरता के परिचायक हैं। इन घटनाओं से रावण की आँखें खुल जानी चाहिए थी, विशेष रूप से इस कारण और भी, क्योंकि स्वयं रावण, बालि और सहस्रार्जुन द्वारा पराजित हो चुका था। राम द्वारा सागर पर सेतु बाँध दिया जाना, हनुमान का आकर लंका दहन कर जाना, सभा मे रोपे गये अंगद के पैर का किसी भी वीर द्वारा हटा न सकना आदि बातें भी प्रत्यक्ष रूप से राम-पक्ष की असाधारण शक्ति का परिचय देने वाली थी जिनसे रावण को विरोधिनी शक्ति की प्रबलता समझनी चाहिए थी। तत्पश्चात् घर के भेदी विभीषण के राम से जा मिलने पर तो रावण का जैसे दाहिना हाथ ही कट जाता है। इन सारी बातो को रावण स्वयं देखता है, फिर भी अपनी मतिअंधता के कारण ही वह किसी भी घटना से सीख लेने को प्रस्तुत नही होता। हार कर सूर की मंदोदरी जैसे करम ठोंक कर कहती है—

भाल की रेखा, अल्प मृत्यु तुव आइ तुलानी।[1]

तुम्हैं कहा दोष दीजै, काल अवधि-आई।[2]

मन्दोदरी—शत्रु पक्ष के नारी पात्रो मे मंदोदरी, त्रिजटा, शूर्पणखा, ताड़का आदि की गणना की जा सकती है। इनमें मन्दोदरी का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल और उच्च कोटि का है। आलोच्य रचनाओं मे मन्दोदरी को रावण की आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है। सीताहरण के पश्चात् वह राम की प्रशंसा और रावण की भर्त्सना केवल इसलिए करती है कि रावण को सद् मार्ग पर ला सके। सूरसागर मे राम के सागर पार आने के पूर्व से अन्तिम युद्ध तक मन्दोदरी रावण का प्रबोधन करती हुई दिखायी देती है। वह दूरदर्शिता नारी है, इसलिए कई प्रकार से राम के वैभव और अलौकिक रूप का आभास देती है। वह रावण को समझाती हुयी कहती है कि सीता को लौटा देने में ही सबका कल्याण है, शंकर जी का दल भी उसकी रक्षा न कर सकेगा।[3] मन्दोदरी उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत है। वह परस्त्री का अपहरण घोर अपराध मानती है और रावण की करनी के लिए उसको अत्यधिक फटकारती है।[4] मन्दोदरी नीतिनिपुणा भी है। वह अपने चिर नवयौवन रूप का उल्लेख करते हुए सीता की तुलना मे अपनी विशिष्टता का बोध रावण को कराती है—

---

१ सूरसागर, ९. ११६ २. वही, ९, ११८

३. सूर रामचरितावली, पद सं० १२०, १२४ ४. वही, पद सं० १२४

तोहि कवन मति रावन ! आई ।
जाकी नारि सदा नवजोबन, सो क्यों हरै पराई ॥[1]

इस प्रकार मन्दोदरी कामशास्त्र एवं मानव भावों की अत्यन्त पारखी है और वह साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार से रावण को सीता से विरत करना चाहती है। वह वामनावतार, नृसिंह अवतार का उल्लेख कर राम के परब्रह्मत्व का बोध कराती है।[2] दाम्पत्य प्रेम जनकल्याण की भावना से अभिभूत होकर मन्दोदरी पग-पग पर रावण को सचेत करती है। अन्त मे रावण वध पर उसका विलाप भी दाम्पत्य प्रेम की उत्कृष्टता का द्योतक है।[3] मन्दोदरी एक आदर्श नारी है। वह जहाँ एक ओर सीता हरण के लिए अपने पति की अनेक प्रकार से निंदा करती है, उसकी मृत्यु पर अत्यन्त विलाप भी करती है। तुलसीदास ने मन्दोदरी के आदर्श पत्नी रूप का चित्रण कवितावली और गीतावली मे किया है। लंका दहन के अवसर पर मन्दोदरी अपने पुत्र मेघनाद के लिए दाढ़ीजार जैसे अपशब्द का प्रयोग करती है—

खीझति मदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
वयो लुनियत सब याही दाढीजार को ॥[4]

मन्दोदरी अनेक प्रकार से रावण का प्रबोधन करती है किन्तु जब वह सुनी-अनसुनी कर देता है तो वह खीझकर रावण के लिए भी नीच, मन्दमति आदि अपशब्दो का प्रयोग कर बैठती है, यद्यपि पतिव्रता और शिष्ट नारी के मुख से इनका प्रयोग कुछ खटकता सा है। मन्दोदरी राम, हनुमान, अगद आदि की वीरता के उदाहरणो का उल्लेख केवल इसलिए करती है कि रावण को किसी तरह सद्बुद्धि का ज्ञान हो सके—

पवन को पूत देखो दूत बीर बाँकुरो जो,
वक गढ लक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालि को, सो कालि्ह, दापदलि, कोपि,
रोप्यो पाउँ, चपरि चमूँ को चाउ चाहिगो ॥[5]

मन्दोदरी स्वार्थपरायणा स्त्री नही है। वह केवल रावण की रक्षा की ही

---

१ सूर रामचरितावली, पद स० १२६ २ वही, पद स० १२७
३ वही, पद सं० १८४ ४ कवितावली, सुन्दर काण्ड, छद स० १२, १८, २१
५ वही, छद स०, २३

कामना नही करती वरन् वह सारे देश की रक्षा की कामना करती है, इसलिए रामचन्द्र से मेल करने के लिए रावण को प्रेरित करती है—

राम सो साम किए नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय ! बूझिये, जूझिये जो न ठाहरु नाठे॥[1]

तुलसीदास ने गीतावली मे पतिपरायणा मन्दोदरी द्वारा रावण का प्रबोधन कराया है। वह राम के असीम बल, कृपा, दया और शरणागति-वत्सलता का वर्णन करते हुए रावण को आवश्यक शिक्षा देती है।[2] मन्दोदरी इस प्रकार अपनी सीख द्वारा केवल अपने पातिव्रत धर्म का ही निर्वाह नही करती वरन् अपनी राजनीतिक कुशलता, दूरदर्शिता और लोककल्याण की भावना का भी परिचय देती है।

त्रिजटा—राम-काव्य मे त्रिजटा ही एक ऐसी निशचरी है जो अशोक-वाटिका मे बंदिनी सीता को धैर्य बँधाती है। सूरदास ने कई पदो मे त्रिजटा के निश्छल और उज्ज्वल चरित्र का वर्णन किया है। वह सीता-हरण के लिए रावण की अनेक प्रकार से भर्त्सना करती है और सीता के गुणो का बखान करती है—

बार-बार त्रिजटी कहै, सुनि रावन मतिमन्द।
जनकसुता तन जारिहै तोरन को दसकन्ध॥[3]

त्रिजटा कूटनीतिज्ञ भी है। यद्यपि सीता के पातिव्रत धर्म की दृढता से वह पूर्णतया अवगत है किन्तु वह केवल रावण को विश्वास दिलाने के लिए सीता को डिगाने के लिए कहती है कि यौवन तो अस्थिर है, राम तापसी हैं, उनसे प्रेम करने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा, तुम भी रावण को स्वीकार कर अनन्त सुखो का उपभोग करो। फिर वह तुरन्त सीता के निकट जाकर उसके सतीत्व की पूर्ण रक्षा का आश्वासन देती हुई उसकी प्रशंसा करती है और अपने सुखद स्वप्न की चर्चा करती है।[4]

त्रिजटा एक सुहृद नारी है, इसीलिए वह सीता के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। वह सोते-जागते सीता का हित-चिन्ता मे निमग्न रहती है। वह स्वप्न मे राम-लक्ष्मण और सीता को विमान मे विराजमान देखती है।[5]

---

१ कवितावली, लंकाकाण्ड, छद २८   २. गीतावली, लकाकाण्ड, पद स० १
३. सूररामचरितावली, पद स० ७१   ४. वही, पद स० ७५
५. वही, पद स० ७७

कवितावली में त्रिजटा सीता के कल्याण की शुभचिन्ता करती और बार-म्बार धैर्य बँधाती हुई दिखायी गयी है। राम की वीरता में उसका दृढ़ विश्वास है। वह भविष्यवक्ता भी है और वह अच्छी तरह जानती है कि रावण, मेघनाद, कुम्भकरण आदि सभी राक्षस युद्ध में मारे जायेंगे और विभीषण को लंका का राज्य मिलेगा।

राज दै नेवाजि हैं बजाइ कै विभीषनै, बजेंगे व्योम बाजने विबुध प्रेम पाखिहैं।
कौन दसकन्ध कौन मेघनाद बापुरो, को कुम्भकर्न कीट जब राम रन रोखिहैं।[1]

गीतावली में त्रिजटा-सीता संवाद से स्पष्ट है कि त्रिजटा के मृदुल स्वभाव लावण्यमयी भावना और सहृदयता से सीता इतनी अधिक अभिभूत है कि वे अपने हृदय की सारी करुण भावनाएँ उसके सामने व्यक्त कर देती हैं। वह सीता से भविष्यवाणी करती है कि राम राक्षस-कुल का नाश करेंगे और विभीषण को लंका का राजतिलक होगा।[2]

अग्रदास, नाभादास, सेनापति आदि कवियों ने मन्दोदरी और त्रिजटा का कोई भी उल्लेख नहीं किया है।

३ रामपक्ष के स्त्री-पात्र—राम पक्ष के जिन स्त्री पात्रों के आलोच्य काव्यों में विशेष रूप से चित्रण हुआ है, वे चार हैं—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सीता।

क कौशल्या—राम की सीता के व्यक्तित्व के एक ही पक्ष का चित्रण आलोच्य कवियों ने किया है और वह है—उनका वात्सल्य। पुत्र राम या पुत्रवधू सीता के प्रति कौशल्या का जो स्नेह भाव है, उसे तो उनके जननी-हृदय का सहज वात्सल्य कहना चाहिए, परन्तु सपत्नी पुत्र के लिए भी उनके जिस स्नेह भाव का चित्रण मिलता है, उसे उनका 'उदार वात्सल्य' कहना चाहिए। अस्तु, कौशल्या के संयोग वात्सल्य का वर्णन न सूर की राम कथा में दिया गया है और न 'कवितावली' या 'कवित्तरत्नाकर' में, हाँ 'गीतावली' में तत्सम्बन्धी कई पद हैं।[3] एक अन्य पद में पुत्र राम को 'अनखे' देखकर माता *की चिन्ता का भी चित्रण 'गीतावली' में किया गया है।*[4] कौशल्या के वियोग पक्ष का चित्रण आलोच्य कवियों ने बहुत विस्तार से किया है। विश्वामित्र जब अपने साथ राम और लक्ष्मण को ले जाते हैं और बहुत समय तक दोनों पुत्रों का

---

१ कवितावली, लंकाकाण्ड, ७८ सं० २ २ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० ५१
३ गीतावली, बाल०, पद ७-१८ ४ वही, पद १२

सुनिवे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे।
सो मेरे नयननि आगे तें रघुपति बनहिं सिधारे ॥[1]

चित्रकूट से अयोध्यावासियों के लौट आने पर भी माता कौशल्या की राम के विरह की दयनीय स्थिति का चित्रण करके तुलसी ने आगे भी अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। इस प्रसंग में 'गीतावली' में सात पद हैं[2] जिनमें सबसे मार्मिक निम्नलिखित है—

हाथ मीजिको हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहुतें, ह्याँ कहा जात बह्यो।[3]

लंका के युद्ध में लक्ष्मण के आहत होने पर हनुमान संजीवनी बूटी लेने जाते हैं और लौटते समय अयोध्या में भरत का तीर लगने से गिरते हैं। उनके सचेत होने पर सबको लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार ज्ञात होता है। उस अवस्था पर सूर ही कौशल्या लक्ष्मण के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव में आकर हनुमान से कहती हैं—

क. सुनो कपि, कौसिल्ला की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम वत्सल, बिनु लछिमन लघु भ्रात।[4]

ख. बिनती कहियो जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगे।
या पुर जनि आवहिं मम वत्सल, जननी लाजनि लागे ॥[5]

उक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि कौशल्या की दृष्टि में त्यागी लक्ष्मण राम से अधिक वात्सल्य के पात्र हैं और इसी लिए वे राम को आदेश देती हैं कि अयोध्या लौटना तो भाई के साथ ही लौटना, अन्यथा लक्ष्मण के लिये अपने को भी बलिदान कर देना।

'कवितावली' और 'कवित्तरत्नाकर' में तो यह प्रसंग है नहीं, 'गीतावली' में कौशल्या हनुमान से राम के लिए इतना ही कहलाती है—

भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन-मानस माय।
लाल ! लोने लषन-सहित सुललित लागत नायँ ॥[6]

वनवास की अवधि समाप्त होने पर सूर की कौशल्या वात्सल्य से प्रेरित हो करके 'सगुनौती' करती हुई सामने आती हैं—

१. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ६३
२. वही, पद ८३ से ८९
३. वही, पद ८४
४. सूरसागर, ९, १५३
५. वही, ९, १५४
६. गीतावली, लंकाकाण्ड, पद १४

बैठी जननि करति सगुनौती ।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती ।
इतनी कहत, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उडि बैठ्यो ।
— अचन गाठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ ॥[1]

और विधाता की अनुकूलता से राम, पत्नी और अनुज सहित चौदह वर्ष वनवास के उपरात अयोध्या लौटते हैं तब कौशल्या, सुमित्रा के साथ उनसे भेंट करने उसी प्रकार आकुल होकर दौड पडती हैं, जैसे दिन भर की बिछुडी गाय वत्स का स्मरण करके दौडती है—

अति सुख कौसल्या उठि धाई ।
मुदित बदन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई ॥
जनु सुरभी बन बसनि बच्छ बिनु, परबस पसुपति की बहराई ।
चली साँझ समुहाई स्रवत थन, उमगि मिलन जननी दोउ आई ॥[2]

'कवितावली' और 'कवित्तरत्नाकर' मे यह सहज प्रसग भी नही उठाया गया है, परन्तु 'गीतावली' मे इस सम्बन्ध मे चार पद दिये गये है ।[3] इनमे से तीसरे मे तुलसी की कौशल्या भी 'सगुन मनाती' बतायी गयी है—

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहै मेरे बाल कुशल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ॥[4]

पद की प्रथम चार पक्तियो मे तो सूर के कथन की ही आवृत्ति जान पडती है, हाँ अतिम दो पक्तियो मे आकुलहृदया माता द्वारा ज्योतिषी को बुलाकर, उसके चरणो पर गिर कर पुत्रो के आगमन की घडी जानने की नयी बात कही गयी है जो राजमाता के स्वभाव के अनुकूल और सुन्दर है ।

भारतीय मान्यता मे क्षेमकरी के दर्शन को भी शुभ शकुन का सूचक माना जाता है । अतएव अगले पद मे 'गीतावली' की कौशल्या अन्य रानियो के साथ, क्षेमकरी की प्रशसा करके उसके दर्शनजनित शुभ फल की याचना करती बतायी गयी हैं—

छेमकरी ! बलि, बोलि सुबानी ।
कुशल छेम सिय-राम-लखन कब ऐहैं, अब ! अवध रजधानी ।

---

१ सूरसागर, ९, १६४ २ सूरसागर, ९, १६९
३ गीतावली, लकाकाण्ड, पद १७ से २० ४. वही, पद १९

ससि मुख, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि; मोचनि सोचति बेद बखानी।
देवि ! दया करि देहि दरस फल, जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥[1]

ख. सुमित्रा—माता सुमित्रा के वात्सल्य भाव का चित्रण आलोच्य कवियों में से सूर और तुलसी ने स्वतन्त्र रूप से नहीं किया है, कौशल्या के साथ ही उनका नाम जोड़ दिया है। अतएव उसके पुनर्लेखन की तो आवश्यकता नहीं है। हाँ, अलोच्य काव्यों में दो प्रसंग ऐसे हैं, जब सुमित्रा के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र चित्रण किया गया है। पहला प्रसंग है—वनवास का। कौशल्या इस अवसर पर कैकेयी के प्रति अपने उदार व्यवहार की चर्चा करके कहती हैं कि उसने छल की छूरी को क्रोध के वज्र पर पैना करके मेरे सरल सुख पर प्रहार किया है।[2] सुमिता यह सब सुनती है, परन्तु जलती आग मे घी न डालकर कौशल्या के आहत वात्सल्य पर शीतल लेप-जैसा लगाती हुई उत्तर देती है—

'कीजै कहा, जीजी जू !' सुमित्रा परि पाय कहै
तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है ।[3]

यह प्रसंग न सूर की राम-कथा मे है और न 'गीतावली' या 'कवित्तरत्नाकर' में ही, परन्तु इससे सुमित्रा के व्यक्तित्व का सुन्दर परिचय मिलता है।

दूसरा अवसर है—लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार अयोध्या में आने का। इस अवसर पर सूर की कौशल्या, सर्वस्व त्यागी सुमित्रा-पुत्र के वात्सल्य से विभोर होकर हनुमान से राम के लिए कहलाती हैं कि अयोध्या लौटना तो भाई के साथ ही, अन्यथा उन पर अपने को भी न्योछावर कर देना।[4] सूर की सुमित्रा इस अवसर पर पुत्र के लिए बिलखती अवश्य है—

त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ।[5]

परन्तु ज्यो ही कौशल्या के उक्त शब्द सुनती है, त्यो ही कुल के साथ-साथ अयोध्या की प्रजा के भविष्य का ध्यान करके अपने को संयत कर, कौशल्या को समझाती हैं कि लक्ष्मण का यह बलिदान धन्य है जिसने उसके सेवक-जन्म को सार्थक कर दिया है—

क. सेवक धन्य अन्त अवसर जो आवै प्रभु के काज।
पुनि धरि धीर कह्यो, धनि लछिमन, रामकाज जो आवै।
सूर जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै ॥[6]

---

१. गीतावली, लंकाकाण्ड, पद २०
२. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छंद ३
३. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छन्द ४
४. सूरसागर, ९, १५३
५. वही, ९, १५१
६. वही

ख धनि जननी जो सुभटहि जावैं ।
भीर परैं रिपु को दल दलि मलि, कौतुक करि दिखरावैं ॥[1]

कौशल्या को इस प्रकार समझाने के उपरात सूर की सुमित्रा हनुमान द्वारा भी राम के लिए सदेश कहलाती है कि सेवक तो रण में जूझते ही रहते हैं, परतु उससे कही 'ठाकुर' घर आना छोडता है ? यहाँ तुम्हारे विरह मे भरत की दशा अत्यन्त दयनीय है । अतएव शीघ्र से शीघ्र लौटकर उनके प्राणो की रक्षा करो ।[2]

'कवितावली' और 'कवित्तरत्नाकर' मे यह प्रसग नही उठाया गया है । 'गीतावली' मे सुमित्रा को लक्ष्मण के बलिदान से शोक तो होता ही है, सतोष भी होता है कि उन्होने राम की भक्ति का इस प्रकार निर्वाह कर दिया और राम को तो एक ओर यह सदेश कहलाती हैं कि इस अवसर पर भाई का खोना है तो बुरा, परन्तु जब तक धनुष तुम्हारे हाथ मे है तब तक चिंता किस बात की है और दूसरी ओर शत्रुघ्न से कहती हैं कि तुम हनुमान के साथ ही लका चले जाओ—

सुनि रन घायल लषन परे हैं ।
स्वामिकाज सग्राम सुभट सों लोटे ललकारि लरे हैं ।[3]

ग कैकेयी—सम्पूर्ण रामकाव्य मे केवल कैकेयी ही एक ऐसी स्त्री पात्र है जो घृणा और सहानुभूति दोनो का मिश्रित रूप है । वह अनियन्त्रित परिस्थितियो के वशीभूत होकर राज्याभिषेक के अवसर पर अमगल नक्षत्र के रूप म प्रकट होती है और रामवनगमन के पश्चात् ही उसे अपनी भूल का आभास हो जाता है । सूरदास ने अनेक पदो मे कैकेयी की क्रूरता का वर्णन किया है । राम के राज्याभिषेक के पूर्व वह राजा दशरथ से प्रत्यक्ष वरदान मॉगती हुई दिखायी गयी है जिसमे उसकी चतुरता, बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता स्पष्ट हाती है—

यह सुनि बोली नारि कैकेई, अपनौ वचन सँभारौ ।
चौदह वर्ष रहै वन राघव, छत्र भरत सिर धारौ ॥[4]

राजा दशरथ कैकेयी को बहुत कुछ ऊँच-नीच समझाते हैं किन्तु वह किसी प्रकार की अपना दुराग्रह नही छोडती । त्रियाचरित्र का मूर्तिमान रूप उसे भले

---

१ सूरसागर, ९, १५२ २. वही, ९, १५४
३ गीतावली, लकाकाण्ड, पद १३
४. सूररामचरितावली, पद स १७

ही कहा जाय किन्तु उसके हृदय मे अपने पुत्र के सुख और वात्सल्य की भावना बलवती है जिसके कारण वह अपना हठ नही छोडती।[1]

राम जब कैकेयी के सामने आते हैं तब वह बडी निष्ठुरता से राजा की आज्ञा को उन्हे सुनाती हुई कहती है—

सकुचनि कहत नहीं महाराज।
चौदह वर्ष तुम्हें वन दीन्हौं, मम सुत कौ निज राज॥[2]

कैकेयी के इसी क्रूरतम व्यवहार के फलस्वरूप भरत अयोध्या मे जल न ग्रहण करने और माता कैकेयी के मुख को न देखने की प्रतिज्ञा करते हैं—

आए भरत, दीन ह्वै बोले, कहा कियौ कैकइ माइ।
आजु अयोध्या जल नहिं अँचवौं, मुख नहिं देखौं माइ॥[3]

भरत कुमन्त्रणा के लिए माता कैकेयी की घोर भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि तूने अपने हाथ से कालरूपी हाथी को बुलवाकर दुराग्रह से महाराज की मृत्यु अपने सिर लिया, रामवनगमन के समय तेरा पत्थर के समान हृदय फटा क्यो नही—

तै कैकई कुमन्त्र कियौ।
अपने कर करि काल हँकारचौ, हथु करि नृप अपराध लियौ।
श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसे, तेरौ पाहन कठिन हियौ॥[4]

भरत कैकेयी के जन्म को धिक्कारते हैं और उसके कपट व्यवहार की भर्त्सना करते है—

धृग तव जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट मुख बाता।[5]

सारे अवधवासी कैकेयी को ही राजा दशरथ की मृत्यु का दोष देते हैं—

सब करतूति कैकई के सिर, जिन यह दुख उपजायो।[6]

किन्तु राम के हृदय मे कैकेयी के प्रति वैसी ही आदर—भावना है जैसी अन्य माताओ के लिए। वे भरत को नीति की बात समझाते हुए कहते हैं कि तुम कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा तीनो माताओ के दर्शन प्रतिदिन सुबह-शाम करते रहना—

---

१. सूररामचरितावली, पद स० १८ २. वही, पद स० १९
३. वही, पद स० ३६ ४. वही, पद स० ३७
५. वही, पद सं० ३८ ६. वही, पद सं० ३९

बधू करियो राज सँभारे ।
कौसल्या कैकई सुमित्रा दरसन सांझ सवारे ।[1]

राम कैकेयी तथा अन्य माताओ को विदा करते समय मस्तक झुकाकर उनकी वन्दना करते हैं—

कौसिला, कैकइ, सुमित्रहि पुनि पुनि सीस नवायो ।[2]

सूरदास ने कैकेयी की ग्लानि का कही कोई वर्णन नही किया है, यद्यपि राम और भरत के व्यवहार से उसकी दयनीय दशा और पश्चाताप का आभास मिल जाता है ।

तुलसीदास ने कवितावली मे कैकेयी की चारित्रिक विशेषताओ को सुमित्रा और कौशल्या के मुख से कहलाया है । कौशिल्या सुमित्रा से कहती हैं कि उन्होने कैकेयी को सदैव बहन की तरह माना और राम से सदैव यही कहती थी कि कैकेयी ही तुम्हारी माता है और उन्होने मन, वचन, कर्म से कभी उसे विमाता नही समझा, इस पर भी कैकयी ने छलपूर्ण व्यवहार किया है ।[3] सुमित्रा भी कैकेयी के कुकृत्य की भर्त्सना करती है—

भरत की मानु को कि ऐसो चहियतु है ।[4]

तुलसीदास ने गीतावली मे कैकेयी के चरित्र का प्रकाशन कई स्थलो पर किया है । राज्याभिषेक के अवसर पर सारे नगर को आनदित देखकर कैकेयी व्याकुल हो जाती है और देव माया के वशीभूत हो कठिन कुटिलता धारण कर लेती है—

सुनत नगर आनद बधावन, कैकेयी बिलखानी ।
तुलसीदास देवमायावस कठिन कुटिलता ठानी ॥[5]

अयोध्या लौटने पर भरत कैकेयी की अनेक प्रकार से अवमानना करते हुए उसे कुलकलकिनी तक कह डालते हैं और उसके पापमय जीवन को धिक्कारते हैं—

ऐसे तैं क्यो कटु बचन कह्यो री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री ।[6]

---

१ सूररामचरितावली, पद स० ४३ — २ वही, पद स० ४४
३ कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० ३ — ४ वही, छद स० ४
५ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद स० १ — ६ वही, पद स० ६०

शुक-सारिका संवाद मे रामवनवास का वर्णन करते हुए सारिका कैकेयी की मूर्खता का उल्लेख करती है—

पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित-अनहित न विचारो ।[1]

भरत के प्रति वात्सल्य भावना से प्रेरित होकर जिस कैकेयी ने राम को वनवास दिलाया वही भरत अपने को कैकेयी का पुत्र कहने में भी सकोच का अनुभव करते हैं—जनमि कैकयी कोखि कृपानिधि ! क्यो कछु चपरि कहोगो ।[2]

कैकेयी अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण सभी की घृणापात्र बन जाती है। कौशल्या कैकेयी के कुकृत्य के दुष्परिणाम का वर्णन करती हैं।[3] कैकेयी के लिए इससे बढकर और क्या परिताप हो सकता है कि जब तक वह जीवित रही भरत ने भूलकर भी उससे बात नही की। एक माता के लिए अपने कुकृत्यो का इसमे अधिक और कठोर दण्ड क्या हो सकता है—

कैकेयी जौ लौं जियत रही। तौ लौं बातं मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥[4]

इस प्रकार आलोच्य कवियों की दृष्टि कैकेयी के कुटिल आचरण की ओर ही विशेष रूप से गई है, उसकी दीन दशा का केवल साकेतिक वर्णन ही हुआ है। वह जीवनपर्यन्त पुत्र भरत के आक्रोश और सुहृद् जनों के कोप की भाजन बनी रही, किन्तु राम का मृदुल और समव्यवहार ही उसके जीवन का संबल था। उसका शेष जीवन अनुपात, आत्मग्लानि और घोर आतरिक व्यथा में ही व्यतीत हुआ, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। आलोच्य काव्यरचनाओ में उसकी मूकता ही उसके गहरे पश्चाताप की द्योतक है।

घ सीता—आलोच्य कवियो ने सीता के व्यक्तित्व के जिस पक्ष के चित्रण मे सर्वाधिक रुचि दिखायी है, वह है उनका आदर्श पत्नी रूप। शिव के प्रसिद्ध धनुष का भजन करने वाले जिस पुरुष का वरण करने का सौभाग्य सीता को मिला है, वह परम वीर तो है ही असाधारण रूपवान भी है, जिसके प्रति उनकी परम मुग्धता का सकेत पूर्व राग के रूप मे प्रकट हो रहा है। तुलसीदास और सूरदास ने राम के प्रति सीता के पूर्वराग के चित्रण द्वारा उनके एकनिष्ठ प्रेम का परिचय दिया है। धनुष-भंग के पूर्व सीता रामचन्द्र जी को देखते ही प्रेमविभोर हो जाती हैं। वे राम के मुख को देखकर विधाता से प्रार्थना करती है कि वे उस प्रेम की

१. गीता०, अयोध्या०, पद, सं० ६६/२　　२. वही, पद सं० ७७/१
३. वही, पद स० ८३/१-२　　४. वही, उत्तर०, पद सं० ३७/१

रक्षा करें। एक ओर शकर जी के धनुष और पिता के कठिन प्रण और दूसरी ओर रामचन्द्र जी की अत्यन्त सुकुमारता को देखकर वे अत्यन्त चिन्तित होती है—

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपति सो अब नेम हमारो, विधि सो करनि निहोर।[1]

तुलसीदास ने गीतावली मे पुष्पवाटिका मे राम और सीता का मिलन दिखाया है। सीता रामचन्द्रजी को देखकर तुरन्त मोहित हो जाती है और पार्वती जी का पूजन करते समय उनका शरीर शिथिल और नेत्र सजल हो जाते हैं—मुख से वचन नही निकलते, इनकी प्रणय याचना के फलस्वरूप पार्वती जी ने उन्हे मनचाहा वरदान दिया —

पूजि पारवती भलै भाय पायँ परि कै।
सजल सुलोचन, शिथिल तनु पुलकित,
आवै न वचन, मन रह्यो प्रेम भरि कै।
अतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,
कही चाहौं, बात, मातु, अत तौ हौं लरिकै।[2]

मूरति कृपालु मजु माल दै बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो वह वरि कै॥

उक्त पदों में सीता जी के पातिव्रत प्रेम की एकनिष्ठता और दृढ़ता का बोध होता है।

विवाहोपरान्त कवितावली में सीता के प्रेम का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही।
तातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेक रही, पल टारति नाही॥[3]

तुलसीदास के सदृश सेनापति ने भी प्रिय के प्रति सीता के प्रेम की अतिशयता और मुग्धता का वर्णन किया है। विवाहोवसर पर जुआ खेलते समय हाथ की पहुँची मे रामचन्द्र की परछाही को देखकर सीता का मन उसी को देखने मे अटक जाता है और वे खेलना भूल जाती हैं।[4] सुख में पति का साथ देने वाली तो सभी पत्नियाँ होती हैं, सीता का महत्व इस बात मे है कि वह सुख-साधनों

१ सूर रामचरितावली, पद स० १० २ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ७२
३ कवितावली, बालकाण्ड, छद स० १७
४ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० २०

को ठुकराकर पति के साथ वनवास के कष्ट भोगने को प्रस्तुत हो जाती हैं। राम जब उनकी सुकुमारता देखकर उनसे अयोध्या या मिथिला के राजभवन में रहने को कहते हैं, तब इनका उत्तर प्रेमभाव से ओत-प्रोत है।[1] पतिपरायणा सीता कभी भी अपने पति से विलग नहीं होना चाहती। वह बराबर उनके सुख-दुख में साथ रहना चाहती हैं। रामचन्द्रजी वनमार्ग की कठिनाइयों और वर्षा, शीत, ग्रीष्म आदि को असहनीय बताते हुए सीता को राजमहल में ही रहने का आग्रह करते हैं। उस पर सीता का प्रत्युत्तर है कि प्राणनाथ के साथ रहने पर उसे घर से भी करोड़ो गुना सुख प्राप्त होगा, जब वे थकेंगे तो वह उनके पैर दबायेंगी, श्रमित होने पर पखा करेंगी। यहा तक कि वन न जाने पर वह अपना जीवन समाप्त करने के लिये उद्यत हो जाती हैं। वह वन मे सहर्ष वल्कल वस्त्र पहनने और कन्दमूल-फल को खाने के लिए तत्पर है। किन्तु अपने नेत्रो से उनको वह अलग नही कर सकती। वह तो राजभवन में भोग की लालसा से रहे और पति मुनि की तरह से रहे—यह उन्हे कैसे सहन हो सकता है?[2] अन्त मे सीता जी अपने प्रेमाधिक्य के कारण रामचन्द्र जी को उन्हे वन मे साथ ले चलने के लिए विवश कर देती है।

वन-मार्ग मे जाते समय सीता अपनी थकान के मिष रामचन्द्रजी की थकान दूर करने के लिए क्षणिक विश्राम और सेवा का प्रस्ताव करती है ताकि वे उनका पसीना पोंछ कर पखा कर सकें और गर्म धूल से जले हुए पैरो को शीतल जल से धो दें और तब तक लक्ष्मण जल लेकर आ भी जायेंगे। उनके इस प्रस्ताव मे प्रिय-प्रेम की अतिशयता और लक्ष्मण के प्रति स्नेह-भावना स्पष्ट है।[3]

गीतावली मे भी वे वनमार्ग में चलते हुए अपनी और प्रिय के थकान को कम करने, हवा करने और पैरो से धूल झाडने के लिए क्षण भर विश्राम करने की बात करती हैं। यहा उनकी सेवा-भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है—

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि।
करौं बयारि, बिलबिय बिटप तर झारौ हौं चरन-सरोरुह धूरि॥[4]

वन में जाते समय जब ग्रामबालाएँ सीता से उनका परिचय और वन आने का कारण पूछती हैं तब वे उनको उत्तर देकर अपने स्वभाव की सरलता का

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० २२ २. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद सं० ७
३. कवितावली, वही छंद, सं० १२ ४. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद स० १३

परिचय देती हैं।[1] ग्रामवधुएँ जब सीता की सरलता से प्रसन्न होकर उन्हे अपने घर चलने का आग्रह करती हैं तब सीता ऐसे ढग से मना करती हैं जिससे दिल नहीं टूटता और वे सतुष्ट हो जाती है—

वरष चतुरदस भवन न वसिहैं, आज्ञा दीन्ही राइ।
उनके बचन सत्य करि सजनी, बहुरि मिलैंगे आइ॥[2]

सीता के साथ दो युवको को देखकर ग्रामवधुओ को उनका परिचय जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। इस बार भी सीता अत्यन्त शालीनतापूर्वक उत्तर देकर उनका मन रख लेती है।[3] अन्यत्र भी वे इसी प्रकार सरल उत्तर देकर सब पुरजनो और ग्रामवधुओ के मन को मोह लेती हैं—

इनमैं को पति आहि तिहार, पुरजनि पूछै धाइ।
राजीवनैन मैन की मूरति, सैननि दियो बनाइ॥[4]

तुलसीदास ने भी सीता के इस सरल और शालीन स्वभाव का वर्णन किया है। ग्रामवधुएँ जब सीता से राम का परिचय पूछती हैं तो वे बडी चतुरता से राम को तिरछे नेत्रो से देखकर उन्हें सकेत से समझाकर अपनी सरल मुद्रा से मुस्करा देती हैं।[5] सीता के इसी सारल्य स्वभाव से अभिभूत होकर ग्रामवधुएँ उनके साथ अपना सारा घरबार छोड़कर चलने के लिए तत्पर रहती हैं।

वास्तविक प्रेम की परख विरहावस्था मे ही होती है। रावण छल से जब सीता का हरण करके लका की अशोक वाटिका मे रखता है तो सीता राम के विरह मे भूख-प्यास, नीद एव कुछ त्याग देती हैं और उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है—

वन असोक मे जनकसुता कौं रावन राख्यौ जाइ।
भूख डर प्यास, नीद नहि आवै, गई बहुत मुरझाइ॥[6]

रावण सीता को अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है। अपनी चौदह सहस्र रानियो मे उन्हे पट्टमहिषी का पद देने और लका का आधा राज्य तक देने के लिए तैयार हो जाता है किन्तु सीता रचमात्र अपने प्रेम से विचलित नही होती वरन् अनेक कटूक्तियो से उसकी भर्त्सना करती हैं।[7] अशोक वाटिका मे

१ सूररामचरितावली, पद स० ३२ २ वही, पद स० ३२
३ वही पद स० ३३ ४ वही, पद स० ३३
५ कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० २२
६ सूररामचरितावली, पद स० ५० ७ वही, पद स० ७०

निशचरियाँ सीता का मन राम की ओर से फेरने का प्रयत्न करती हैं और जब वे रावण के साथ विलास की बात करती है तब सीता उनको फटकारते हुए अपने पातिव्रत की दृढता व्यक्त करती हैं।[1] सीता का राम के प्रति अटल प्रेम देखकर निशचरी कितनी प्रभावित होती है, यह उसी के द्वारा रावण से कहे हुए निम्नलिखित वचनो से स्पष्ट है। अचला चाहे चलने लगे, चंचल गह नक्षत्र चाहे थक कर खडे हो जायें पर रघुनाथ के प्रताप से सीता का सत्य और पातिव्रत नही टल सकता—

सुनो किन कनकपुरी के राइ।
हौं बुद्धि बल छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ।
डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई।
नसै धर्म मत बचन काम करि, सिंधु अचभौ करई।
अचला चलै, चलत पुनि थाके, चिरजीव सो मरई।
श्री रघुनाथ प्रताप पातिव्रत, सीता सत नहि टरई॥[2]

रावण स्वय राक्षसी का उत्तर देते हुए कहता है कि सीता यदि सत्य से विचलित हो जाय तो नारायण किस वस्तु की रक्षा करेगा! सीता मेरी माता है। रघुनन्दन मेरे स्वामी हैं और मैं उनके द्वार का प्रहरी हूँ। सीता और राम के मिलन के बिना मुझे कौन पार उतार सकता है? सूर की सीता मे बली रावण के सम्मुख भी वही सत्य का तेज है। उस तेज के सम्मुख त्रिलोक विजयी रावण नगण्य और अवस्तु होकर धूल मे मिला हुआ सा प्रतीत होता है।[3]

सीता को अपनी इस विपन्नावस्था मे इस बात का बराबर दुख और पश्चाताप है कि उन्होने लक्ष्मण रेखा का क्योकर उल्लघन किया? राम के वियोग मे उनका विरह-ताप उन्हे अत्यधिक जलाता है और अब स्थिति प्राणो पर बन आई है। सीता की यह विरह भावनाएँ उनकी अतिशय प्रेमनिष्ठा और परिस्थिति-जन्य दीनता की परिचायक है।[4] सीता की इस दुःखावस्था को देखकर हनुमान जब उनको अपने साथ चलने का आग्रह करते है तो उनका पातिव्रत धर्म उन्हें वैसा करने से रोकता है। आदर्श पतिव्रता के अनुरूप सीता परपुरुष

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० ६८   २. वही, पद सं० ६९
३. डॉ० रामनिरजन पाण्डेय : रामभक्ति शाखा, पृ० ४०६
४. सूररामचरितावली, पद सं० ९०

का अंग-स्पर्श तक चाहे वह अपनी रक्षा और कल्याण के लिए ही हो और उसमे कोई अपवित्र भाव न हों, अनुचित मानती हैं। वे हनुमान से कहती है—

श्री रघुनाथ पतिव्रत मेरे, सुनो वच्छ सतिभाऊँ।
हम अबला पर-पुरुष पीठ पर कैसे धरिहै पाऊँ।।[1]

सूरदास ने अनेक पदों मे सीता की विपन्नावस्था के चित्रण द्वारा उनके प्रेम की एकनिष्ठता, सत्य और शील का परिचय दिया है। रावण-वध के अनन्तर जब लक्ष्मण सीता जी को अशोक वाटिका से लाने जाते है तो वे अत्यन्त दुर्बल, दीन तथा क्षीण शरीर हो रही थी और राम के वियोग मे नेत्रो से अश्रुधारा बह रही थी। उन्होने राम के वियोग मे आभूषण आदि सबको को त्याग दिया था किन्तु राम उन्हें देखते ही जब मुंह फेर लते है तो सीता तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं।[2] स्वस्थ होने पर सीता अपने सतीत्व के प्रमाणस्वरूप अग्नि-परीक्षा हेतु चिता तैयार कराती हैं और तब स्वय अग्निदेव, आकाश से देवतागण और महाराज दशरथ सीता को निष्कलक होने की साक्षी देते है। तदन्तर राम ने उनको ग्रहण कर लिया। इस प्रकार सीता की तपस्चर्या सफल हुई और उनका चरित्र अग्नि के सदृश प्रकाशमान और उज्ज्वल दिखायी पडता है।[3] तुलसीदास ने राम के वियोग मे पतिपरायणा सीता की शोकावस्था का वर्णन किया है। हनुमान जब लका मे पहुचते हैं तो उन्हे रावण के वन उपवन अत्यन्त रमणीक और आकर्षक मालूम पडते हैं किन्तु जैसे ही अशोक वृक्ष के नीचे उन्होंने सीता की दुखमय दशा देखी उन्हे सारा वन तीनो लोको के शोक का घर सा प्रतीत होने लगा—

सीय की दसा विलोकि विटप असोक तर,
तुलसी विलोक्यो सो तिलोक सोक सारसो।।[4]

लकादहन के पश्चात् जब हनुमान सीता से विदा लेकर वापिस लौटने लगते हैं तो वे अत्यन्त कातर और दीन होकर नेत्रो मे आँसू भर लाती है और शिथिल वाणी मे कहती हैं—

कहा कहौं तात! देखे जात ज्यो बिहात दिन,
बडी अवलब ही सो चले तुम तोरि कै।।[5]

---

१ वही, पद स० १०२   २ वही, पद स० १८५
३ वही, पद स० १८६   ४ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छद स० १
५ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छद स० २६

तुलसीदास ने अन्यत्र श्रीराम के विरह मे सीता की दीन दशा का वर्णन कर उनकी आदर्श पतिपरायणता का परिचय दिया है। उन्हे ग्लानि है तो यही कि उनके प्राण राम के वियोग में अभी तक जीवित क्यो हैं? वे पपीहा और मीन के आदर्श प्रेम का उल्लेख करती हुई मूर्छित हो जाती हैं।[1] हनुमान के विदा होते समय सीता का मन भर आया और शरीर शिथिल हो गया, नेत्रों में आँसू भर गए और वे कुछ भी न कह सकी, अपार दु:ख को हृदय में ही छिपाये रखा। सीता का यह प्रेमादर्श अतुलनीय है, वे अपने दुखद सदेश से राम को दुःखी नही करना चाहती—

कपि के चलत सिय को मनु गहवरि आयो।
पुलकसिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो।
कहन चह्यो संदेस नहि कह्यो. पिय के जिय की जानि—
हृदय दुसह दुख दुरायो ॥[2]

सीता अपनी एकमात्र सहचरी त्रिजटा से असीम विरह वेदना का वर्णन करती हैं—

सुन त्रिजटा! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री।[3]

उक्त वर्णनो मे सीता की पतिपरायणता का उत्कृष्ट परिचय मिलता है।

अग्रदास ने सीता के पूर्वराग और उनकी आदर्श प्रेम-निष्ठा का वर्णन किया है। प्रथम दर्शन में ही राम को हृदय से अपना पति मान लेती हैं। इसी लिए धनुष तोड़ने का प्रण उनके लिए कष्टदायक हो गया है। उनकी व्यग्रता निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

तात प्रन काहे को कियो।
कठिन पिनाक रामकर कोमल धीर न धरत हियो।
मधुर मूर्ति आनन्द कन्द मम नाहिन और बियो।
वक्र चितवनी सांवरे सखि चित वित चोर लियो।
रघुपति तजि जे करैं आन रति धिग-धिग जीव जियो।
अग्रस्वामि रमवश भइ आली मो मन मोल लियो ॥[4]

अग्रदास ने सीता के शृंगारमय रूप का ही विशेष रूप से वर्णन किया है। राम और सीता की प्रेम क्रीड़ाएँ अत्यन्त मनोहारी और सीता के अतिशय प्रेम

---

१. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० ७/१-४   २. वही, पद स० १५/१-२
३. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० १९/१
४. अष्टयामपदावली, अग्रदास, पद स० ८३, पृ० ५९-६०

की परिचायक हैं। सीता के हृदय मे पति के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा की भावना है। वे दैनिक नियमानुसार उनकी पूजा-अर्चना करती हैं। शृगारादि कर सखियो के साथ चन्दन, इत्र, धूप, दीपादि और फूल की माला लकर वे राम की आरती उतारती हैं।[1] सीता के हृदय में सास-ससुर के लिए भी असीम आदर की भावना है। वे शृगार आदि कर सखियो के साथ सास की पूजा करने के लिए जाती हैं।[2] इस प्रकार कवि के वर्णना मे सीता की पतिपरायणता और पारिवारिक आदर्श का यथेष्ट परिचय मिलता है।

नाभादास ने सीता का सयोग प्रेम क्रीडा-वर्णन द्वारा उनकी प्रेमनिष्ठा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है—

प्रीत परस्पर अधारित दोऊ। सखि सुख निरखि लखत मुख काऊ॥
नैन सैन कर आपुस मोही। एक-एक ते लख मुसकाँही॥[3]

भोजन के समय राम और सीता के हास-परिहास मे सीता की विनोदिनी प्रवृत्ति और सरल स्वभाव का परिचय मिलता है—

जेहि व्यजन पर सिय कर देही। मो प्रीतम पहलेहि धर लेही।
लै कर ग्रास सिया मुख माही। देन लेत सुधि छुधा की नाही॥[4]

नाभादास ने सीता के पारिवारिक सुख-सयोग का वर्णन करते हुए सासुओ के प्रति उनकी आदर भावना और शिष्टाचार का उल्लेख किया है—

सासु निकट आवत सिय जबही। महल-महल उपजत छवि तबही॥
चरण लागि कर आशिष पावहि। सुख लहि हिय आनद बढावहि॥[5]

सेनापति ने भी सीता की अग्नि परीक्षा द्वारा राम के प्रति उनके विशद प्रेम और पातिव्रत धर्म का अतुलनीय परिचय दिया है—[6]

पाउक प्रचड राम-पतिनी प्रवेश कीनौ,
पतिव्रत पूरी पै न त्रासै परसति है।
सत्त सिय रानी जू के अगि सियरानी जानि,
हियरा हिरानी देव-सभा दरसति है।

---

१ अष्टयामपदावली, पृ० १४ २ वही, पद स० २४, पृ० १५
३. अष्टयाम, नाभादास, छद स० २३८, २३९
४. अष्टयाम, नाभादास, छद स० २३६, २३७
५ वही, छद स० २४७, २४९, २५०
६. कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ६७

इस प्रकार आलोच्य राम-काव्य के समस्त नारी पात्रों में सीता का चरित्र त्याग, श्रम और प्रेम का अप्रतिम उदाहरण है। सुख और दुःखावस्था में उनका कार्य-व्यवहार, छोटो और समवयस्कों के साथ अतिशय स्नेह, बडो के प्रति आदर की भावना, सात्त्विक प्रवृत्ति, पातिव्रत प्रेम की दृढता उनके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं। प्रत्येक दृष्टि से सीता का चरित्र एक आदर्श चरित्र है और समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए अनुकरणीय है।

आलोच्य कवियो का काव्य-विवेचन ही प्रस्तुत प्रबन्ध का मुख्य विषय है जिसमें खंड या महाकाव्य की भाँति पात्र-पात्रियो के चरित्रो का सर्वांगीण विवेचन का प्रधान स्थान नही रहता। यही कारण है कि आलोच्य रामकाव्य के पात्रों के चरित्र का संकेत मात्र विवेचन किया गया है। फिर भी इन संकेतों का महत्व यह है कि राम-कथा से सम्बन्धित पात्र अपनी जिस विशेषता के लिए भारतीय समाज द्वारा स्मरण किए जाते हैं, उसका चित्रण आलोच्य कवियों ने बहुत स्पष्टता से चटक रगो मे किया है। आलोच्य कवियो की यह उपलब्धि भी कम महत्वपूर्ण नही है।

●

चतुर्थ अध्याय

मुक्तक रामकाव्यों में भाव एवं रस-व्यंजना

मुक्तक : स्वरूप और भेद

'मुक्तक' शब्द 'मुच्' धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से बना है जिसका तात्पर्य है—स्वयं में पूर्ण, अन्य की अपेक्षा न रखने वाला स्वतन्त्र अर्थ। काव्य में मुक्तक शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत और हिन्दी के अनेक आचार्यों ने 'मुक्तक काव्य' की परिभाषाएँ दी हैं।[1] आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में मुक्तक का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। 'ध्वन्यालोक' में आचार्य आनन्दवर्धन ने स्पष्ट किया है कि मुक्तकों में रस निबन्धन में रविरमाश्रित औचित्य नियामक तत्व है और मुक्तकों में भी इसका सन्निवेश मिलता है।[2]

आचार्य अभिनव गुप्त ने ध्वन्यालोक के आधार पर अन्य पदों से सम्बन्ध न होने पर भी सरसता की प्रतीति कराने वाले काव्य को मुक्तक माना है। मुक्तक अन्य से अनालिंगित होता है। स्वतन्त्र रूप से स्थित और पूर्वापर से असम्बद्ध काव्य मुक्तक नहीं कहा जा सकता और पूर्वापर निरपेक्ष जिस काव्य में रस का बोध हो सके, वही मुक्तक है।[3] इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध के मध्य में स्वतन्त्ररूपेण स्थित पूर्वापर से निराकांक्ष अर्थवाला काव्य मुक्तक नहीं कहा जा सकता किन्तु मुक्तक विकल्पेन मान सकते हैं, क्योंकि पूर्वापर निरपेक्ष काव्य से भी रसानुभूति होती है। दसवीं शताब्दी में अग्निपुराण के अनुसार एक ही चमत्कारक्षम श्लोक को मुक्तक कहा गया है।[4]

---

१ मुक्तकं कुलकं कोष संघात इति तादृश।
श्री प्रेमचन्द्र तर्कवागीश,—काव्यादर्श, टीका० १/१३, पृ० १७

२ ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य लोचन टीका—आचार्य अभिनवगुप्त,
व्याख्या—डा० रामसागर त्रिपाठी, पृ० ७६१

३ मुक्तमन्यनानालिंगितम्—। तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकांक्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्तिन मुक्तकमित्युच्यते—यदि वा प्रबन्धेपि मुक्तकस्यास्तु सद्भाव पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते सदैव मुक्तकम्—
—ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत लोचन टीका, व्याख्या—डा० रामसागर त्रिपाठी, पृ० ७६४

४ मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षम सताम्॥
—अग्निपुराण, अध्याय ३३७/३६

प्राकृत और अपभ्रंश के प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार मुक्तक अनिबद्ध होते हैं।[1] वाग्भट्ट एक ही छन्द को मुक्तक कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार मुक्तक के चार रूप सामने आते हैं—अन्यनिरपेक्ष, अनिबद्ध, रस-चर्वण कराने मे सहायक, चमत्कारक्षम। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया है। उनका कथन है कि मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नही रहती जिसमें कथा-प्रसग की परिस्थिति मे अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं जिससे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध-काव्य विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से वह सभ्य-समाजो के लिए अधिक उपयुक्त होता है। उसमे उत्तरोत्तर अनेक दृश्यो द्वारा सघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अग का प्रदर्शन नही होता, बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणो के लिए मन्त्रमुग्ध सा होता जाता है।[2] इसमे विशेष तत्व निम्नलिखित हैं[3]—

१. एक रमणीय मार्मिक खण्ड दृश्य का सहसा आनयन
२. चयन, सयम और मडन की प्रवृत्ति
३. कुछ क्षणों के लिए चमत्कृत कर देने वाला प्रभाव

इन सम्पूर्ण मतो के विमर्श आधार पर मुक्तक की निम्नलिखित परिभाषा दी गयी है—"मुक्तक पूर्व और पर से निरपेक्ष, मार्मिक खण्ड दृश्य अथवा सवेदना को उपस्थित करने वाली वह रचना है जिसमे नैरन्तर्यपूर्ण कथा-प्रवाह नही होता, जिसका प्रभाव सूक्ष्म अधिक, व्यापक कम होता है तथा जो स्वय पूर्ण अर्थभूमि-सम्पन्न अपेक्षाकृत लघु होता है।"[4]

डॉ० भगीरथ मिश्र ने मुक्तक को निर्बद्ध या अनिबद्ध काव्य कहा है, क्योंकि इसमे कथा का विकास महत्व नही रखता और जिसमे कथा या विचार की

१. आचार्य हेमचन्द्र : अनिबद्ध मुक्तकादि—काव्यानुशासन, ८/१०
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४७
३. श्री जितेन्द्र नाथ पाठक : हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृ० १७
४. श्री जितेन्द्रनाथ पाठक : हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृ० १७

शृंखला का होना अनिवार्य नहीं है। छन्द स्वतः पूर्ण और निरपेक्ष होते हैं।[1] इस प्रकार मुक्तक प्रबन्ध काव्य के नियमों से स्वतन्त्र है। इसमें किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता, इसीलिए इसे मुक्तक, निर्बंध अथवा अनिबद्ध काव्य कहा गया है।

प्राचीन काव्याचार्यों में दण्डी, आनंदवर्द्धन, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, विश्वनाथ आदि तथा अग्नि पुराणकार ने मुक्तकों का वर्गीकरण छन्दों की संख्या के आधार पर किया है। दसवीं शताब्दी के आरम्भ में राजशेखर ने मुक्तकों का वर्गीकरण नाम, विषय वस्तु और वर्णन-शैली के आधार पर किया है।

संख्यामूलक वर्गीकरण—एक ही छन्द में अपना पूर्ण अर्थ स्पष्ट करने वाला और चमत्कार उत्पन्न करने वाले छन्द का नाम मुक्तक है। इनमें दो छन्दों में अर्थ प्रकट करने वाला 'युग्मक' और तीन में पूर्ण अर्थ व्यक्त करने 'सन्दानितक,' चार में 'कलापक' पाँच में 'कुलक' और छः में पूर्ण अर्थ व्यक्त करने वाला 'करहाटक' नाम से अभिहित किया जाता है।[2]

राजशेखर ने विषय के आधार पर मुक्तक के निम्नलिखित भेद किये हैं[3]—

१ शुद्ध मुक्तक—जिसमें इतिवृत्त या इतिहास-रहित अर्थ का प्रतिपादन हो।

२ चित्र मुक्तक—जिसमें इतिवृत्त-रहित अर्थ का विस्तृत वर्णन होता है।

३ कथोत्थ मुक्तक—जिसमें अतीत इतिवृत्त का वर्णन होता है।

४ संविधानकभू-मुक्तक—ये सम्भावित इतिवृत्त पर आधारित होते हैं।

५ आख्यानकवान्-मुक्तक—इस मुक्तक में वर्णित इतिवृत्त कवि-कल्पित होता है।

मुक्तकों के निम्नलिखित भेद भी दिए गए हैं—

विशुद्ध मुक्तक—इसमें एक बात एक ही छन्द में वर्णित होती है। भारतीय साहित्यशास्त्र में इन छन्दमूलक मुक्तकों का विशेष प्रयोग किया गया है। संस्कृत का 'श्लोक', प्राकृत का 'गाथा', अपभ्रंश का 'दूहा', हिन्दी का 'दोहा', 'कवित्त' और 'सवैया'—इन भाषाओं के मुक्तक-साहित्य के प्रतिनिधि छन्द बन गए हैं। विशुद्ध मुक्तक के दो दो भेद हैं[4]—(१) कोष मुक्तक, (२) स्वतन्त्र मुक्तक।

---

१ डॉ० भगीरथ मिश्र काव्यशास्त्र, पृ० ६७

२ वही, पृ० ६७-६८

३ श्री जितेन्द्रनाथ पाठक मुक्तक काव्य का विकास, पृ० १८

४ वही, पृ० २०

है। इनके दो भेद हैं—एकार्थ प्रबन्ध-मुक्तक, (२) मुक्तक प्रबन्ध। प्रथम कीकथा अत्यन्त क्षीण होती है किन्तु भावना प्रधान एव व्यक्तिनिष्ठ होने के कारण इसे एकार्थ प्रबन्ध मुक्तक नाम से कहा जाता है। इस शैली के सर्वोत्तम काव्य हैं—'मेघदूत' और 'आसू'।

मुक्तक प्रबन्ध—प्रबन्ध मुक्तक से किंचित् भिन्न होता है। प्रबन्ध-मुक्तक मे उपस्थापन शैली प्रबन्धात्मक और विषय प्रगीतात्मक होता है किन्तु मुक्तक प्रबन्ध मे उपस्थापन शैली मुक्तकपरक और विषय कथाश्रयी होता है। 'सूर सागर' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। वस्तुत भक्तियुगीन व्रजभाषा मुक्तक काव्य की प्रमुख रचनाए इसी कोटि के अन्तर्गत आती हैं। मुख्यतः सूरदास और तुलसीदास की राम-विषयक मुक्तक रचनाओ मे प्रत्येक छद या पद एक दूसरे से निरपेक्ष होते हुए भी कथा की क्रमबद्धता को भी स्पष्ट करता है।

काव्य का प्रतिपाद्य और मुक्तक

वस्तुत काव्य की अनेक विशेषताएँ होती हैं जो काव्य के विविध रूपो मे सन्निविष्ट मिलती हैं। काव्य की इन विशिष्टताओ मे ही उसके तत्व निहित होते हैं और उनके अभाव मे काव्य को काव्य की सज्ञा से अभिहित नही किया जाता। प्रभावात्मकता काव्य का विशेष गुण है। किन्तु कोई काव्य प्रभावशाली बन सके और हृदय को स्पर्श कर ले, इसके लिए आवश्यक है कि काव्य मे अनुभूति और अभिव्यक्ति का उचित सामजस्य हो। मानव हृदय का सस्पर्श काव्य की इसी प्रभविष्णुता के कारण सम्भव होता है। जिस काव्य मे जितनी प्रखर अनुभूति और अभिव्यक्ति होगी, काव्य मे उतनी ही प्रभावात्मकता या मार्मिकता पायी जायेगी। अनुभूति और अभिव्यक्ति के मणिकाचन सयोग से ही काव्य निखरता है। काव्य के इन दो पक्षो का सम्बन्ध भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली से होता है। विद्वानो ने प्राय उसी काव्य को उत्कृष्ट माना है जिसमे भावो की प्रधानता हो। काव्य के प्रतिपाद्य का बोध उसके भावो से होता है। अपनी भावुकता के आधार पर ही कवि मार्मिक और गहन स्थलो को सरलता से समझ लेता है। यहाँ केवल बुद्धि और कल्पना से वह इनको ग्रहण कर प्रभावशाली ढग से व्यक्त नही कर सकता। अत काव्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए भावुकता उतनी ही आवश्यक है जितनी शरीर के लिए आत्मा। कवि की भावुकता का सम्बन्ध उसके हृदय के रागात्मक तत्व से सम्बन्धित है और इसी से वह श्रोता या पाठक के हृदय मे रस का सचार करता है। मानव-हृदय मे प्रसुप्त अवस्था मे पडे रहने

वाले भाव ही रस की सृष्टि करने हैं जिन्हें 'स्थायी भाव' कहते हैं। इन स्थायी भावों, विभावों, अनुभावों, संचारी आदि भावों से ही रस की अभिव्यक्ति होती है।

काव्य में अनुभूति-पक्ष जितना महत्त्वपूर्ण है, अभिव्यक्ति-पक्ष उससे कम महत्त्व का नहीं है। सशक्त भाषा-शैली में ही भावों की सफल अभिव्यक्ति सम्भव है। कभी मशक्त भाषाशैली में भावों का प्रकाशन भली-भांति नहीं हो पाता। इसलिए काव्य में शैली-तत्व का भी विशेष महत्व है। शब्द चयन, वाक्यांशों के प्रयोग, ध्वनि-संयोजन आदि के द्वारा ही कोई काव्य प्रभावशाली बनता है। कवि का काव्यत्व बहुत कुछ उसकी भाषाशैली पर निर्भर करता है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि काव्य का मूल तत्व वस्तुत भाव-तत्व ही है किन्तु उसके साथ-साथ कल्पना-तत्व, बुद्धि-तत्व और शैली-तत्व काव्य की सफल अभिव्यक्ति में अपना महत्वपूर्ण योग देते हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने समान रूप से उत्कृष्ट काव्य की सफल सृष्टि के लिए इन विशिष्टताओं को आवश्यक माना है। इन तत्वों से मुक्तक काव्य ही मानव हृदय को स्पन्दित करने में सफल होता है। डॉ० जानसन के मतानुसार-'कविता सत्य और प्रसन्नता के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है'।[१]

भक्तियुगीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्यकारों का लक्ष्य रामकथा का सांगोपांग वर्णन करना नहीं था। समय-समय पर भक्त हृदय में उठने वाले उद्गार ही रामचरितमय होकर मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। उन्होंने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर रामचरित के मार्मिक स्थलों का ही विशेष रूप से गायन किया है। किन्तु बाद में जब इन स्फुट रचनाओं का संकलन हुआ तो कथा के सूत्रों में क्रमबद्धता का निर्वाह कर दिया गया। कथा के इन अनेक स्थलों के वर्णन के साथ विविध भावों का सहजोद्रेक इनके काव्य में मिलता है। राम, भक्तों के उपास्य और परब्रह्म हैं। सीता, जगत्-जननी और ईश्वर की प्रधान शक्ति है। इसलिए युगल स्वरूप के अपूर्व सौंदर्य एवं मधुर प्रेम की अभिव्यक्ति 'भगवत् विषयक' रति के रूप में हुई है। लौकिक प्रेम या शृंगार-चित्रण उनका उद्देश्य

१. Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason

Dr. S. Johnson, Life of Milton, P. 57

समय-कवि ने आलंकारिक बिम्ब-योजना की चित्रावली सी सजा दी है।"[1] इसके उदाहरण गीतावली में बहुलता से मिलते हैं।

राम का रूप-सौन्दर्य वर्णनातीत है। वह करोड़ों कामदेवों की शोभा का अपहरण करने वाला है। उनके चरणों की लालिमा हेतु सूर्य ने मानो अपनी लालिमा का परित्याग कर दिया है। उनके नेत्रों की कोमलता और अरुणिमा ने कमल को, भुजाओं ने सर्पों को तथा मुख ने चन्द्रमा को पराजित कर दिया है—

रघुवर बाल छवि कहौ वरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज सोभा हरनि।
बसी मनहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रूनझुन करनि।[2]

गीतावली में अन्य स्थलों पर भी राम और उनके भाइयों के बाल-रूप के सौन्दर्य का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है।

राजा जनक राम के रूप को देखकर ठगे से रह जाते हैं। वे जिज्ञासा करते हैं कि ये दोनों पुत्र राजा दशरथ के हैं या कोई मुनि-कुमार या ब्रह्म के अवतार हैं। यहाँ पर दार्शनिक सिद्धान्त की ओर संकेत है कि इस सौन्दर्यपरक संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्म में ही ऐसी रूप-समष्टि सम्भव है। न्याय-दर्शन का सिद्धांत है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। इस सौन्दर्यमय संसार का कर्ता अवश्य ही सौन्दर्य की निधि होगा—

ए कौन कहा ते आए ?
नील पीत पाथोज बरन, मन हरण, सुभास सुहाए।
मुनि-सुत किधौ भूप बालक, किधौं ब्रह्म जीव जग जाए।
रूप जलधि के रतन, सुछबि तिय लोचन ललित ललाए।
किधौं रवि सुवन, मदन ऋतुपति, किधौं हरिहर वेष बनाए॥[3]

यहाँ पर संदेहालंकार के माध्यम से रूप-चेतना के नानात्व की अच्छी झाँकी प्रस्तुत की गयी है। दूसरा स्थल भी जनकपुर के राम के सौन्दर्य को उद्घाटित कर रहा है—

---

१. डा० उदयभानु सिंह : तुलसी काव्य-मीमांसा, पृ० ४४०
२. गीतावली : बालकाण्ड, पद सं० २७
३. वही, पद सं० ६५

सुखमा सील सनेह सानि मानो रूप विरंचि सवारे ।
रोम-रोम पर सोम काम सत कोटि वारि फेरि डारे ॥[1]

राम-सौन्दर्य, शील और स्नेह की निधि हैं जिनको ब्रह्मा ने स्वयं रचा है, उनके रोम-रोम के सौन्दर्य पर कोटि चन्द्रमा और कामदेव न्यौछावर हैं।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है। नगर के लोग राम की अप्रतिम सुन्दरता देख कर अपने नेत्रों के पलकों पर नियन्त्रण लगा देते हैं, ताकि वे उनके रूप का अनवरत रूप से पान कर सकें–

जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि, नयन पल रोके।
वय किशोर घन तड़ित, बरन तनु नखशिख अंग लोभारे ॥[2]

लक्ष्मण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन भी द्रष्टव्य है। वे सारी सुषमा और शृंगार के सार हैं। स्वर्ण से उनके शरीर की रचना हुई है और उनके सौन्दर्य-वर्णन मे मति मौन है—

जैसे ललित लखन लाल लोने।
सुखमा सार सिंगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूप प्रेम परिमिति न परत कहि, बिथकि रही है मति मौने ॥[3]

वन-मार्ग पर स्त्रियाँ उनके नख-शिख के सौन्दर्य पर अपने को न्यौछावर कर रही हैं। वे उनके सौन्दर्य की पूर्ण पारखी प्रतीत होती हैं। सखियाँ परस्पर वार्ता करती है कि राम, लक्ष्मण और सीता के चरण-कमल के समान कोमल एवं स्निग्ध हैं। नेत्र कमल के तुल्य हैं, राम का वर्ण स्वच्छ मरकत मणि के सदृश श्याम है, वे तीनो ही रूप की निधि हैं।[4] एक अन्य स्थल पर, वनवास की अवधि मे राम, लक्ष्मण और सीता वन मार्ग से जा रहे हैं। मार्ग मे स्त्रियाँ उनके सौन्दर्य के प्रति लालायित एवं श्रद्धावनत होती हैं और उनको देखकर परस्पर एक दूसरे से कहती हैं कि मानो रति ने बसंत सहित मुनिवेश धारण किया है। रति के सौन्दर्य मे अपना सौन्दर्य मूल स्रोत तो है ही, साथ ही बसंत का सौन्दर्य भी उन तीनो मे समाविष्ट हो गया है—

---

१. गीतावली. बालकाण्ड, पद स० ६८/१०० २. वही, पद स० ९१/१-२
३. वही, पद स० १०७
४. वही, अयोध्याकाण्ड, पद स० १८/१-३

मनोहरता के मानो ऐन।
मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनिवेष बनाए है मैन।
किधौं सिंगार सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग चित वित लैन।
अद्भुत त्रयी किधौं पठईहै विधि मग लोगन्हि सुख दैन॥[1]

कवितावली में भी राम के रूप-सौन्दर्य का स्फुट चित्रण मिलता है, किन्तु यह उतना विस्तृत, समृद्ध तथा आलंकारिक रूप में नहीं है जितना गीतावली में मिलता है। प्रायः बालकाण्ड में नौ स्थलों पर और अयोध्या काण्ड में छ स्थलों पर मुख्यतया रूप-सौन्दर्य का चित्रांकन मिलता है। राम के शरीर की कान्ति नील कमल की तरह है। नेत्रों की सुन्दरता के सामने कमल की सुन्दरता फीकी पड जाती है। धूल भरे शरीर की शोभा कामदेव की सुन्दरता को भी मात करती है—

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूलि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥[2]

राम और लक्ष्मण के तापस-वेश का रूप-सौन्दर्य भी अवलोकनीय है। उनके मुख और नेत्र कमल सदृश है। कामदेव की धनुष की भाँति टेढ़ी भौंहे सुशोभित हैं, उनकी देह सुन्दर और कोमल है—

मुख पंकज, कंज विलोचन मंजु, मनोज सरासन सी बनी भौहें।
कमनीय कलेवर कोमल, श्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी करि तून, धरे धनुबान, अचानक दीठि परी तिरछोहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी तेहि सो मृदु मूरति द्वै निकसी मन मोहै॥[3]

तीसरा पद राम के विवाह के समय का है। राम और सीता दूल्हा एवं दुलहिन के रूप में मन्दिर में बैठे हैं। वैवाहिक सौन्दर्य अपने ढंग का अनोखा है। ब्राह्मण वेद पढ रहे हैं। सीता राम के अद्वितीय रूप को कंगन के नग के मध्य में दर्शन कर मुग्ध होकर अपने आप को भूल गयी हैं। वे इस कारण अपना हाथ नहीं हटाती हैं ताकि राम के सौन्दर्य-दर्शन से वंचित न रहें।[4]

१. गीतावली अयोध्याकाण्ड, पद स २४/२-३
२. कवितावली : बालकाण्ड, छंद, म० ३
३. वही, अयोध्याकाण्ड, छंद सं० २५
४. वही, बालकाण्ड, छंद स० १७

गीतावली की भाँति ही कवितावली मे भी राम, लक्ष्मण और सीता का रूप-सौन्दर्य एक साथ चित्रित है पर इसका स्वरूप वर्णन सक्षिप्त एव प्राय आलकारिक है। उनके मुख और नेत्र कमल के समान है, सिर पर जटाएँ है, सवे अगो से अतिशय यौवन की उमग प्रकट होती है। साँवरे और गोरे की बीच सीता बिजली की तरह सुशोभित हैं।[1] तुलसी की विनयपत्रिका मे राम के सौन्दर्य का यथेष्ट चित्रण हुआ है। दूसरा सौन्दर्य इतना चित्ताकर्षक है कि भक्त का मन उसी ओर लगा रहता है। भारतीय साहित्य मे कामदेव सौन्दर्य का प्रतीक है। अत अनेक स्थलो पर गोस्वामी जी न केवल राम के सौन्दर्य की तुलना कामदेव से करते है, वरन् उनके सौन्दर्य को कामदेव के सौन्दर्य से अधिक बताते है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

'सहज सुन्दर तनु सोभा अगनित काम'।[2]

एक साथ सौन्दर्य के कई उपमान लगाये गये हैं। राम का मुख चन्द्र के समान है। मुख, शील एव सौन्दर्य का स्थान है। इसमे शील, सौन्दर्य एव शरद चन्द्र की सुन्दरता, कमनीयता, कान्ति एव लावण्य का अनुपम सम्मिश्रण है—

'सरद विधु-बदन, सुख शील, श्री सदन,
सहज सुन्दर तनु सोभा अगनित काम'।[3]

ससार का समस्त सौन्दर्य एक स्थान पर सकलित हो गया है और उसका आधार राम का शरीर है—

सर्वाभिराम, सौन्दर्य-सीमातिरम्य।[4] देवमखिल लावण्यगृहम्।[5]
सकल सौन्दर्य निधि।[6]

कोमलता, स्निग्धता एव कान्ति के लिए गोस्वामी जी ने कमल को राम के अगो का उपमान बनाया है—

अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव,
नव कज लोचन-कज मुख कर कज पद कजारुन।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने नेत्र एव चरणो की तुलना कमल से अधिक दी है। राम का स्वरूप करुणामय है। अत नेत्र हृदय के सदेशवाहक

१ कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० १४ २ विनयपत्रिका, पद स० ७७
३ वही, पद स० ७७ ४ वही, पद स० ५४
५ वही, पद स० ५३ ६ वही, पद स० ५०

है। उनकी कोमलता, स्निग्धता एवं करुणा कमल सम नेत्रों से, अधिक साकार हो उठती है। तुलसीदास ने शारीरिक अगो की उपमा परम्परायुक्त रूप मे कमल से दी है—कज विलोचन,[1] वारिज-लोचन,[2] अरुण अंभोज, लोचन बिसाल,[3] अरुन शत पत्र लोचन,[4] वनज लोचन,[5] अरुन राजीव दल नयन सुषमा अयन,[6] राज राजेन्द्र राजीव लोचन राम,[7] राम राजीव लोचन कृपाला,[8] तरुन रमनीय राजीव लोचन ललित,[9] जगदीश रघुनाथ राजीव लोचन राम,[10] महाराज राजीव विलोचन[11] आदि।

राम के चरणो की कोमलता नेत्रों के सदृश अभिव्यक्त हुई है। चरणो की कोमलता के ही कारण भक्त बार-बार उनका नमन करता है, उन्हे शिरोधार्य करता है, मानो कमलो की माला हो। उनके चरणो की कोमलता देखकर वन-पथ पर स्त्री और पुरुष दुःखी होते है। सीता उन्ही चरणो का आश्रय लेकर राम के साथ वन मे जाती हैं।

राम का शरीर श्याम एव कान्तिपूर्ण है। इसको स्पष्ट करने के लिए तुलसीदास जी राम के श्याम वर्ण नील कमलो के सौन्दर्य से सुशोभित मानते है। ये कमल शृगार रस के सरोवर मे उत्पन्न हुए हैं—

जयति सिंगार सर तामरस दाम दुति देह।[12]

राम के सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए गोस्वामी जी ने अनेक परम्परा-युक्त उपमानो से विभिन्न अंगो की तुलना की है। प्रत्येक अग का वर्णन चित्ता-कर्षक है, नखशिख आदि का वर्णन अपने ढंग का अनोखा है।

राम का ऐसा अनुपम अद्वितीय सौन्दर्य अपने भक्तो, उपासको के मन को सतोष एव शीतलता प्रदान करता है। सौन्दर्य प्राय. उदार भावनाओ के परिणाम-स्वरूप मिलता है। राम मे तीनो–शिव, ब्रह्मा और स्वय (राम) का सौन्दर्य एकत्रित है।

हरिहि हरिता, विधिहि विधता, सिवहि सिवता जो दई।[13]

---

१. विनय पत्रिका, पद स० १३०
२. वही, पद स० ११३
३. वही, पद स० ५१
४. वही, पद स० ६१
५. वही, पद सं० ५४
६. वही, पद सं० ५०
७. वही, पद स० ४४
८. वही, पद स० ४९
९. वही, पद सं० ६०
१०. वही, पद स० ७७
११. वही, पद सं० २२२
१२. वही, पद स० ४४
१३. वही, पद सं० ४४

सूरदास ने भी राम-लक्ष्मण आदि भाइयो के बाल-सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत की है। उनके हाथो मे धनुष-बाण सुशोभित है। वे चारो इस प्रकार शोभायमान हैं मानो चार सुन्दर हंस सदेह सरोवर पर बैठे हो।[1] राम की किशोरावस्था के रूप-सौन्दर्य की ओर भी सूरदास की दृष्टि गयी है। सीता के आग्रह पर जब राम धनुष और बाण साधकर स्वर्णमृग के पीछे जाते हैं तो उनका नवघन और नील कमल के समान सुन्दर शरीर और भुजाएँ, सिंह के सदृश चौड़े कंधे, कमल-मुख और नेत्र अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकार्षक लगते हैं।[2] राम और लक्ष्मण के रूप-सौन्दर्य का अन्य स्थल पर एक साथ चित्रण हुआ है। राजा जनक की सभा के मध्य जब वे खड़े होते हैं तो हाथ में धनुष, सिर पर मोरपख और कमर में तरकस कसे हुए वे अत्यन्त सुन्दर लगते है।[3] श्री अग्रदास रचित अष्टयाम पदावली की रचना-काल के काफी समय बाद यद्यपि रीतिकाल का अभ्युदय हुआ, किंतु राम के रसिक-रूप की झलक उक्त पदावली मे भी मिलती है। यह अवश्य है कि उसमे मर्यादा और संयम की सीमा का उल्लघंन नहीं किया गया है। निम्न पदो मे राम के सौन्दर्य का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है। राम का रूप तो स्वतः सुन्दर है। आभूषणो के मध्य सोने मे सुहागा वाली उक्ति चरितार्थ होती है। उनके एक एक अंग और उनके आभूषण का वर्णन अत्यन्त मनोहर है और उन सबके मध्य रमणीय राम का स्वरूप हृदय से हटाये नही हटता। मनुष्य का सामान्य बुद्धिजन्य प्रेम और श्रद्धा के लिए प्रत्यक्ष वस्तु का सुन्दर एवं सुन्दरतम् रूप होना आवश्यक सा प्रतीत होता है। अग्रदास के राम इसी विशिष्ट सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं—

रघुवर लागत हैं मोहि प्यारो।
शीश मुकुट मकराकृत कुंडल पीताम्बर पर वारो।
नयन विशाल, भाल मोतिन की सखि तुम नेक निहारो।
अंग-अंग रूप अनुप बन्यो है, चित से टरत न टारो॥[4]

आखेट के समय राम का सौन्दर्य और भी हृदयस्पर्शी बन गया है। उनके आखेट के समय की भाव-मुद्रा का रुचिर वर्णन द्रष्टव्य है—

चतुरंगिनि सेना संग लीन्हें दुंदभी दर्शनि पहरात।
नख शिख सुन्दर गति मनोहर लखि द्युति कामलजात॥[5]

---

१. सूर-रामचरितावली, पद सं० ५ २. वही, पद सं० ४७ ३. वही, पद सं० ७३
४. अष्टयाम पदावली, पद सं० ४६ ५. वही, पद सं० ४५

कवित्त-रत्नाकर में राम का सौन्दर्य आठ-दस स्थलों पर विशेष रूप से द्रष्टव्य है। राम की शोभा और रूप-सौन्दर्य अतुलनीय है–

जाति न बखानी प्रभा, जनक नरिंद सभा।
सोभा तें सुधरमा, तें सौगुनी विसेखिये।[1]

तुलसीदास की भांति सेनापति ने भी राम के मुख की उपमा चन्द्र और चरण की कमल से दी है–

देखि चरनारविन्द वंदन करयौ बनाई,
उर कौं विलोकि, विधि कीनी आलिगन को।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैन नैकु,
निरखि निकाई इदु सुन्दर बदन को।[2]

जनकपुर में स्त्रियां राम के सौंदर्य की प्रशंसा करती हैं–

चरन चित चाहति हैं, मूरति सराहति हैं,
बाला चन्द्रमुखी चन्द्रसालन मैं चढ़ि कैं।[3]

विनयपत्रिका की भांति 'कवित्तरत्नाकर' में भी राम का सौंदर्य कामदेव से अधिक है। कामदेव सौंदर्य-सीमा का प्रतीक है–

लोचन विशाल राज दीपति-दपिति भाल,
मूरति उदार को लजानौ रतिपति है।[4]

राम के तेजस्वी स्वरूप का सौंदर्य भी द्रष्टव्य है। चन्द्र और सूर्य से भी अधिक राम का रूप देदीप्यमान और कान्तिमान है–

तेज पुंज करो, चन्द्र सूरौ न समान जाके।[5]

यदि बारह सूर्यों का एक सूर्य बनाया जाय तो तेजस्वी स्वरूप का किंचित् अंश राम के रूप में मिल सकता है। राम का रूप अधिक चित्ताकर्षक व प्रभावशाली है :—

बारह दिनेस कौ दिनेश ठहराइयै।
सेनापति महाराजा राम को अनूप तव,
राम तेज रूप नैक बरनि बताइयै।[6]

१. कवितरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ११ २. वही, छंद सं० १२
३. वही, चौथी तरंग, छंद सं० १३ ४. वही, छंद सं० १४
५. वही, छंद सं० ४९ ६. वही, छंद सं० ७

राम का सौन्दर्य तीनों लोकों के सौन्दर्य से बढ़कर है। राम के रूप की कतिपय ऐसी भाव-भंगिमाएं हैं जिनकी कोई उपमा ही नहीं मिलती। उनका सौन्दर्य अनुपमेय है। युद्धस्थल में राम स्वर्ण-बाण को कर्ण तक खींचे हुए हैं। उस समय के सौन्दर्य को किस उपमा के द्वारा प्रकट किया जाय ? शीघ्रतापूर्वक बाण चलाते हुए राम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकाश का भंडार सूर्य अपने मण्डल में उदित होकर किरणों की वर्षा कर रहा है —

सारंग धनुष कुंडलाकृत विराजे बीच,
तामस तें लाल मुख लाल यों लसत है।
कान-मूल कर, हेमबान कौं करत-झर,
तेज पुंज किरण समूह बरसत है।[1]

अन्य आलोच्य मुक्तककारों—सूर, तुलसी, सेनापति आदि की भाँति अग्रदास के राम का सौन्दर्य भी कामदेव को लज्जित करने वाला है। राम का नैसर्गिक सौन्दर्य अत्यन्त प्रभावशाली है। उनके हँसते हुए आँखों को नचाने की गति, भाव-भंगिमा कुछ अपने ढंग की अनोखी ही है। ऐसी अकथनीय शोभा देखकर मनुष्यों का मन उसी ओर खिंचा चला जाता है। वे आखेट खेलते समय मनुष्यों के हृदय को भी आखेट कर लेते हैं और उसमें भी राम विजयी होते हैं। निम्न पंक्तियों में राम के आभूषण, सुसज्जित शृंगार-रूप का अद्वितीय मनोहारी, हृदयस्पर्शी तथा प्रभावकारी चित्रांकन हुआ है, जिसमें उनके मध्य शृंगारपूर्ण रूप से कोटि चन्द्र तथा सूर्य पराभूत हैं—

जय जय रघुचन्द रसिक राज प्यारे।
अंग अंग छवि अनंग कोटि वारि डारे॥[2]

राम की मुख-छवि अत्यन्त आकर्षक है। उनके शारीरिक अंगों पर विविध प्रकार के आभूषण, उनके कपोलों पर अलकावली शोभायमान है। उनकी भावभंगिमा पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर हैं। निम्नलिखित पद में कवि ने राम के रूप-सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन किया है—

प्यारे मुखचन्द विलोकहु सजनी।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल नयन कमल दल अति छवि छवनी।

---

१ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ९

२ अग्रदास-पदावली, पद सं० ६९

नासामणि सु-अधर पर राजत मनहुं कमल दल शुक्र उदयनी।
कलकपोल पर अलकैं छूटैं चन्द उपर मनु बसि बहु अहिनी।[1]

इस प्रकार अग्रदास की रचनाओं से ऐसे अनेक स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है जिनमें राम के अपूर्व रूप सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

नाभादास के 'अष्टयाम' मे भी राम के सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया गया है। राम के चरणों का सौन्दर्य नूपुर के साथ मन को और अधिक आकर्षित कर रहा है—

कोउक स्याम पद प्रष्टि सुहाये।
कोउ नूपुर खग भूपन लजाये।
कोउ कटि किंकिनि ललित निहारैं।
उदर रेख कोउ दृष्टि न टारैं।।[2]

कोई सखी राम के चरणों के पृष्ठ भाग को देख रही है, कोई उसमें संलग्न नूपुर की रसीली मधुर ध्वनि पर कानों को लगाये हुए है। कोई उनकी कमर मे सुशोभित करधनी का अवलोकन कर और उनकी उदर-रेखा पर से दृष्टि ही नहीं हटाती है। कोई सखी राम की अजानु बाहु, जो कि कामदेव रूपी हाथी के बच्चे की सूड को लज्जित करती है, उनकी अलौकिक शोभा-छवि देखकर मोहित हो रही है—

करन मनोहर देखि गुमानी।
रही चकित छवि देखि सयानी।।[3]

राम के रूप-सौन्दर्य का वर्णन भक्तोपासना के रूप मे रूपासक्ति के अन्तर्गत आता है। वस्तुतः राम परब्रह्म के अवतार हैं और उनके अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन भागवत विषयक रति के रूप मे कवियो द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सखियाँ रामचन्द्र के सुन्दर चिबुक, लाल अधर, शुभ्र दन्तपक्ति और चमकीले कपोलो को देखकर अत्यन्त मग्न हो रही हैं—

---

१. अष्टयाम पदावली, अग्रदास, पद स० ७२
२. अष्टयाम, नाभादास, पद स० १३४
३. अष्टयाम, नाभादास, पद स० १३८

कोउक चिबुक कोउ हास मनोहर।
कोउ प्रभु अधर अरुण अति सोहर।
कोउ रद पंक्ति सुन्ड चित लाय।
कोउ कपोल मुनकनि मुसकाय ॥[1]

राम का रूप-सौन्दर्य नील कमल के समान कान्तिपूर्ण है और शरीर सजल घन और समुद्र के नील वर्ण के समान है—

राम नील इन्दीवर शोभा।
अखिल रूप अंबोधि सजलघन तन की शोभा ॥[2]

सिर पर मुकुट सुशोभित है तो दिव्य और मंजुल मणि मोतियों से जड़ित है। उसकी कांति के सम्मुख सूर्य की ज्योति भी मंद पड़ जाती है। कुण्डलों के मध्य दोनों कपोलों का सौन्दर्य अनोखा है और उसकी ज्योति के समक्ष चन्द्र की ज्योति भी फीकी है। उनके घुंघराले केश मुख कमल पर बाल भ्रमर के समान सुशोभित हैं। उनकी भृकुटी भ्रमरी और भ्रमर के समान है और उनकी नासिका अनन्त सुन्दर है, उनका मुख देख कर कमल भी लज्जित हो जाते हैं।[3]

शिर पर दिव्य किरीट जटित मंजुल मणि मोती।
निरख रविरता लजित दिनकर की ज्योती।
कुण्डल ललित कपोल युगल अति परम सुदेशा।
तिन को निरखि प्रकाश लजित राकेश दिनेशा।[4]

व्रजभाषा मुक्तक राम-काव्य में अधिकतर रामचन्द्र, भरत और लक्ष्मण के रूप-सौन्दर्य का ही वर्णन मिलता है। अन्य किसी पुरुषपात्र का रूप-वर्णन नहीं हुआ है। इसका दूसरा कारण सम्भवतः यही है कि सम्पूर्ण राम-काव्य के केन्द्र बिन्दु रामचन्द्र ही हैं। अन्य पात्र उनके समक्ष नगण्य हैं, वे स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के आश्रित हैं।

नारी-पात्रों में सीता के रूप सौन्दर्य का ही चित्रण कतिपय स्थलों पर व्रजभाषा मुक्तक रचनाओं में मिलता है। उर्मिला तथा नगर की वधुओं का भी कुछ वर्णन हुआ है किन्तु वह भी नगण्य है। यहाँ पर सीता के रूप-

१ अष्टयाम, नाभादास, पद सं० १३९-४०
२ ध्यान मंजरी, अग्रदास, छंद सं० ३१
३ वही, छंद सं० ५
४ वही, छंद सं० ३२-३३

सौन्दर्य का विवेचन अभीष्ट है। सीता की रूप माधुरी की झलक मिथिला मे और वनवास के अवसरो पर मिलती है। 'गीतावली' मे सीता की रूप-छटा अवलोकनीय है। सीता ने अपने कर-कमलो मे जयमाल ले रखी है जिसे मानो मगलमय पुष्प और सुन्दर डोरी से गूंथ कर कामदेव रूपी माली ने स्वय ही तैयार किया है। सीता रामचन्द्र के गले में जयमाल पहनाती हुई ऐसी प्रतीत हो रही है मानो हसो की पक्ति मानसरोवर से निकलकर किसी सुन्दर तमालवृक्ष पर बैठकर मज रही हो—

जयमाल जानकी जलजकर लई है।
सुमन सुमगल सगुन की बनाई मंजु,
मानहु मदन माली आपु निरमई है ॥[1]

एक स्थल पर सीता और राम का सौन्दर्य एक साथ चित्रित है। सीता बिजली के समान गोरे शरीर की हैं। वे विवाह के मध्य मण्डप के नीचे इस प्रकार शोभायमान है मानो कामदेव के मण्डप में छवि और शृंगार रस की शोभा ही एकत्र हो गयी हो—

राजति राम जानकी जोरी।
स्याम सरोज जलद सुन्दरतर दुलहिनि तडित वरन तनु गोरी।
ब्याह समय सोहति वितान तर, उपमाहु न लहित मति भोरी।
मनहु मदन मजुल मडप महं छवि सिंगार सीमा इकठौरी ॥[2]

सीता के रूप-सौन्दर्य की इससे अधिक उत्कृष्ट कल्पना और क्या हो सकती है कि उनके शरीर की कोमलता, सरसता उक्त उपमानों द्वारा सजीव हो गयी है।

गीतावली मे भी विवाह के अवसर पर उर्मिला और लक्ष्मण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन एक साथ हुआ है। सुषमा और शृंगार के सार का सुवर्ण बनाकर फिर उस सुवर्ण से ही मानों उनके शरीर की रचना की गयी है, इनके रूप की सीमा का वर्णन बुद्धि द्वारा सम्भव नही है।[4]

वन-मार्ग मे जाते समय ग्राम-वधुएँ सीता के अपूर्व रूप-सौन्दर्य को देख कर चकित रह जाती हैं। वे कहती हैं कि इस वधू का मुख शरदकालीन निर्मल चन्द्र के सदृश है। ऐसी सुन्दर स्त्री न पहले हुई और न होगी। सीता की

१. गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ९६
२. गीतावली, बालकाण्ड, पद स० १०५ ३. वही, पद सं० १०६
४. गीतावली, बालकाण्ड, पद सं० १०७

रचना के समय विधाता ने उसकी रूप-रचना में सौन्दर्य का इतना उपयोग कर डाला कि उसकी सुन्दरता के छोलन (अवशिष्ट अश) से रति की रचना की।[1] एक अन्य स्थल पर सीता के रूप को विद्युत के सदृश और उनके प्रत्येक अग को उमा और रमा से भी उत्कृष्ट बताया गया है—

रूप की सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,
उमहु रमातें आछे अग अग ती के हैं।[2]

कवि ने बिजली से सीता के शरीर की उपमा देकर उनके अप्रतिम रूप की निखार और चमक को प्रकट किया है।

'कवितावली' मे सीता के रूप-सौन्दर्य का चित्रण अत्यल्प है। जयमाल लिये हुए सीता जी के कर-कमल सुशोभित हो रहे है और सखियाँ उन्हे सिखा रही हैं कि रामचन्द्र जी को जयमाल पहनाओ। इस अवसर पर सुन्दर रानियाँ झरोखे से लगकर झाँकती हुई, ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो सुन्दर चकोरियाँ अपने-अपने घोसलो मे बैठी हुई बिना पलक लगाए चन्द्रमा की किरणों का रसपान कर रही हो।[3] वन जाते समय रामचन्द्र के साथ पतिव्रता सीता जी ऐसी शोभायमान हो रही हैं, मानो धर्म और क्रिया ही सुन्दर शरीर धारण करके शोभा पा रहे हो—

संग-सुबधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।[4]

सूरदास रचित 'रामकाव्य' मे सीता का रूप-वर्णन केवल उस स्थान पर मिलता है जब राम द्वारा तिरस्कृत होने पर वे अग्नि-परीक्षा के लिए तत्पर होती हैं। अग्निशिखा पर बैठी हुई सीता की आभा लाल कुदन के समान थी। अग्नि परीक्षा देने के उपरान्त रामचन्द्र ने उन्हे विमान पर चढा लिया। उस समय उनकी छवि करोडो कामदेव के सदृश प्रतीत हुई—

आसन एक हुतासन बैठी, ज्यो कुदन अरुनाई।
जैसे रवि इक पत्र घन भीतर, बिनु मारत दुरि जाई।
लै उछग उपसग हुतासन, 'निहकलक रघुराई'।
लइ विमान चढाइ जानकी, कोटि मदन छविछाई॥[5]

१. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद सं० २१
२. वही, अयोध्याकाण्ड, पद स० ३०
३ कवितावली, बालकाण्ड, पद स० १३
४ वही, अयोध्याकाण्ड, पद सं० १
५ सूररामचरितावली, पद स० १८६

सेनापति ने जयमाल के अवसर पर सीता की रूप-माधुरी का सुन्दर वर्णन किया है। रामचन्द्र को देखते ही उनके हृदय में प्रेम का उदय होता है और गयद की मद-मद चाल से स्वर्णाभूषणो से विभूषित वे राम के समीप जाती है—

परी पेमफद, उर बाढ्यौ है अनद अति,
आछी मंद मद चाल चलति गयद की।
बरन कनक बनी, बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की ॥[1]

एक अन्य स्थल पर कवि ने सीता के मुख-सौन्दर्य को कमल और चन्द्रमा से भी नहीं अधिक श्रेष्ठ बताया है। विधाता प्रयत्न करके सौन्दर्य-प्रतिमा के रूप मे चन्द्रमा को बनाते हैं किन्तु जब वह सीता की बराबरी नहीं कर पाता तो उसे मिटा देते है।[2]

लका-विजय के अनन्तर अग्नि-परीक्षा के समय सीता की रूप-छटा अवलोकनीय है। सेनापति का यह वर्णन सूरदास के उपर्युक्त वर्णन के सदृश ही है। सीता जी जब अग्नि मे प्रवेश करती है तो आग भी ठण्डी हो जाती है और उनकी देह-दीप्ति स्वर्ण से भी अधिक निखरी लगती है।[3] अग्नि के बीच वे जाज्वल्यमान ज्योति के समान सुन्दर प्रतीत होती हैं—

अग्रदास रामोपासक भक्त-कवि थे जिनको कालान्तर मे प्रचलित रामोपासना सम्बन्धी रसिक-सम्प्रदाय का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उनकी आरम्भिक रचनाओ मे युगलोपासना के शृंगारिक रूप का वर्णन अपेक्षाकृत कम हुआ है किन्तु उनकी परवर्ती रचनाओ मे दाम्पत्य रति का विशुद्ध शृगारिक रूप मिलता है। ध्यान-मजरी मे अग्रदास ने सीता और राम के रूप-सौंदर्य का वर्णन भगवत्-विषयक रति के अन्तर्गत ही किया गया है, जिनमे शृगारिकता का कोई पुट नही है। भक्त के लिए सीता जगज्जननी के रूप मे पूज्य हैं और उनका अपूर्व रूप-सौंदर्य चित्रण भी कवि ने इसी भाव से प्रेरित होकर किया है। सीता अनेक आभूषणो से विभूषित है। उनकी श्वेत पीठ पर वेणी इस प्रकार शोभायमान है मानो सुन्दरता की सीमा पर भ्रमरो की श्रेणी विराजमान

---

१. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छंद स० १७
२. वही, छद स० २४
३. वही छंद सं० २४

है। उनकी माग पर मोतियों के लर की सुन्दरता गगा की धारा और घने अधकार के बीच तारो की ज्योति के समान प्रतीत होती है—

नगन जरे छवि भरे विविध भूषण अस सोहै।
सुन्दर अग उदार विदित चामीकर को हैं॥
अलक झलकता श्याम पीठ शोभित कलवेणी।
सुन्दरता की सीव किधौं राजति अलिवेणी[1]॥

भक्तकवि ने सीता के अगो पर सुशोभित आभूषण—विन्दा, कर्णफूल, वेसरि, कठपोत, मुक्तामाल, मुदरी, कगन, जेहरि, घुघुरू, बिछिया आदि का सुन्दर वर्णन किया है। स्वर्ण-तन्तुओ से खचित सारी, रगविरगी कचुकी, लहगा, चित्रविचित्र आदि शारीरिक वस्त्रो का भी चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है। सौदर्य के जो भी विविध उपमान हैं, कवि न अन्त मे उसी के सौंदर्य स अभिमण्डित और प्रोत्साहित बताया है। ऐसी स्थिति मे वे उनकी समता ही कैसे कर सकते हैं[2]—अष्टयाम-पदावली मे अग्रदास ने सीता के रूप-सौंदर्य का अनेक स्थलों पर मनोहारी वर्णन किया है और उनका यह वर्णन ध्यान-मजरी की तुलना म अधिक शृगारपरक है। सीता के सौदर्य के समक्ष उनके अगो से दिए गए सभी प्राकृतिक उपमानो की शोभा फीकी पड जाती है। उनके विविध अग जैसे—जघा-कदली, कमर-सिह, दाँत-अनार, कुच-नारगी, मुख चन्द्र, कमल, ग्रीवा-कपोत, अधर-विद्रुम, नाक-मोर, नेत्र मीन, वेणी नागिन की सुदरता स कही अधिक बढकर है, वे सब श्रीहत होकर वन, आकाश, अग्नि, जल और पाताल की शरण लेते हैं—

सबकी शोभा समिट लई।
वैदेही को वदन विलोकनि अन्तरभूत भई।
गजगति हस जघ कदली कटि केहरि दसन अनार।
कुच नारगि कान्ति कलधौतहि मुख विधु अम्बुज चार[3]॥

एक अन्य स्थल पर सीता जी के अनुपम नेत्रो का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है—सीता के नेत्रो की कामबाणी से तुलना की गई है। चन्द्र-मुख मे उनके रतनारे-कजरारे नेत्र अत्यन्त सुदर लगते हैं। उनकी टेढी-बाँकी चितवन हृदय को घायल करने वाली है। मीन, कमल और खजन की शोभा उनके समक्ष

१ ध्यान-मजरी, छद स० ४९-५२ २ वही, छद स० ५८-५९, ६२, ६३, ६५
३ अष्टयाम-पदावली, अग्रदास, पद स० ४१

फीकी है। उनकी हँसने, नटने और अंग-मरोरने की भाव-भंगिमा पर कौन अपने को न्योछावर नहीं कर देगा[1]। संयोग श्रृंगार से सम्बद्ध अनेक स्थलों पर सीता का रूप-वर्णन कामोत्तेजक रूप में किया गया है। उक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि कवि द्वारा सीता का प्रस्तुत रूप-चित्रण रीतियुगीन कवियों के सदृश ही है जिसमें उद्दाम प्रेम भावना की स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है। भक्तप्रवर सूरदास ने सीता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किन्तु उन्होंने भी कृष्ण-चरित्र में राधा के रूप-श्रृंगार का जैसा नग्न वर्णन किया है, अग्रदास ने सीता के रूप-वर्णन में कुछ वैसी पद्धति अपनायी है।

श्रृंगार-वर्णन—श्रृंगार को 'रसराज' कहा गया है, क्योंकि इसका स्थायी भाव रति एक व्यापक भाव है। प्रेम ही मानव जीवन के स्वरूप-जगत के मंगल की आधार शिला है। इसे 'रसराज' कहने का प्रमुख कारण यह है कि इसके भीतर न केवल सभी संचारी भाव, वरन् अन्य सभी रसों के संचारी-रूप भी भली-भाँति समाविष्ट हो जाते हैं। केशव, देव, पद्माकर आदि आचार्यों ने श्रृंगार रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। उसके इसी महत्त्व, प्रभाव एवं व्यापकता के कारण आचार्यों ने उसे 'रसराज' की संज्ञा दी है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' अथवा प्रेम है जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक हमारे साथ रहता है। यह तो निर्विवाद है कि जीवमात्र का मुख्य भाव प्रेम है। वह चिरन्तन और शाश्वत है। यह सर्वव्यापी एवं सर्वोपयोगी है। तन्मयता की चरम सीमा एवं आत्म-त्याग की पूर्ण प्रतिष्ठा है।[2] भोजराज तो श्रृंगार को ही रस मानते हैं। उनके विचार से यही एक पूर्ण रस है, अन्य रस तो इस सम्पूर्णता की मध्यवर्ती स्थितियाँ है।[3] श्रृंगार सद्यः प्रभावशाली है। श्रृंगार का वर्ण श्याम और देवता विष्णु माने गये हैं। श्रृंगार के संयोग और विप्रलम्भ दो मुख्य भेद होते हैं। इस

---

१. अष्टयाम-पदावली, पद सं० ७१

२ डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगार रस का विवेचन : पृ० ३२

३ श्रृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्रवीभत्सवत्सलभयानकशान्त नाम्न. ।
आम्नसि दर्श रसान सुधियो वयतु श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः॥
—भोजराज : श्रृंगार प्रकाश, प्रथम प्रकाश, पृ० १, सं० जी० आर० जोसयेर, मैसूर, १९५५ ई०

रस का स्थायी भाव रति है, आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। उद्दीपन-ऋतु सौन्दर्य आदि, सचारी और अनुभाव अनेक हैं।[1]

१ **सयोग शृगार**—सयोग शृगार को आचार्यों ने सम्भोग शृगार भी कहा है जिसके अन्तर्गत नायक और नायिका के निकटतम मिलन और प्रणय-व्यापार का वर्णन होता है। भक्तियुगीन मुक्तक-काव्य मे सयोग शृगार का प्राय मर्यादित रूप मिलता है। सीता उद्यान मे गौरी के पूजन के लिए जाती हैं। वही राम और लक्ष्मण उद्यान से पुष्पो को गुरु-पूजा के लिए चयन करने हेतु आये हुए हैं। सीता और राम के नेत्र परस्पर एक दूसरे से मिले और दोनो ही पर प्रेम की मादकता छा गयी। राम और सीता का यह मिलन चित्ताकर्षक है—

सखिन सहित नहि औसर बिधि के सयोग,
गिरिजा जू पूजिबे को जानकी जू आई हैं।
निरखे लखन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहिनी मूड नाई हैं।[2]

राम और सीता के हृदय म परस्पर दर्शन से प्रेम का सहसा उदय होना स्वाभाविक है। दोनो परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो गए। यहाँ राम और सीता आलबन, फुलवारी-उद्दीपन, शारीरिक भावभगिमा अनुभाव और हर्ष, प्रसन्नता आदि सचारी भाव हैं।

सीता राम की ओर आकर्षित होती हुई पार्वती के मदिर मे जाती हैं और वे पूजा हेतु उनके सम्मुख अवश्य हैं किन्तु उनके अग-प्रत्यग मे राम का प्रेम समाया हुआ है। वे इतनी अधिक भावविह्वल हो रही हैं और उनके अग इतने शिथिल हो गए हैं कि मुख से शब्द नही निकलते।[3] कवितावली मे सयोग शृगार का एक उत्कृष्ट स्थल उस समय का है जब विवाह के बाद द्यूत क्रीडा के अवसर पर सीता जी कगन के नग मे राम की छवि का दर्शन करती हैं। उसको देखकर उनकी सम्पूर्ण स्मृति खो जाती है और क्षण भर के लिए भी वे अपना हाथ इसलिए नही हटातीं कि कही रामचन्द्र जी का प्रतिबिम्ब आखो से ओझल न हो जाय।[4] एक दूसरा स्थल वन-गमन के अवसर का है। वन मे राम,

---

१ डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्य शास्त्र पृ० २५४-२५५
२ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ७१
३ वही, पद स० ७२ ४ कवितावली, बालकाण्ड, पद स० १७

सीता और लक्ष्मण जा रहे हैं। गर्मी अत्यधिक है, पृथ्वी तप रही है। सीता चलते-चलते थक गई हैं। थोडी देर रुककर विश्राम किए बिना वह शायद और आगे नही चल सकती। इसलिए वह राम से बड़ा स्वाभाविक बहाना कर कहती हैं कि बेचारे लक्ष्मण लड़के हैं जो जल लाने गये हुए हैं, इसलिए हम दोनो को किसी वृक्ष की छाया मे खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब आप छाया में खडे हो जायेंगे तो चलने से जो पसीना बहा है, उसे पोछ दूंगी और जलती बालू से जले पैर को पखारकर शीतल कर दूगी। राम सीता को थका हुआ जानकर देर तक बैठकर पैर से कांटे निकालते रहे।[1]

सूरदास ने भी राम और सीता के सयोग शृंगार की मधुर झांकी विवाह के अवसर पर प्रस्तुत की है। द्यूत-क्रीड़ा मे राम के हाथो का कगन खोलते समय प्रेमाधिक्य के कारण सीता के हाथ कांपने लगते हैं और उधर राम सीता के हाथो के स्पर्श से अत्यन्त पुलकित होते है, अन्य सखियाँ इस कौतुक को देखकर अत्यन्त सुख का अनुभव करती है। अन्त मे सीता की ही विजय होती है और राम हार जाते हैं—

कर कपै, कंगन नहिं छूटै
राम सिया कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।
खेलत जूय सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की ॥[2]

अग्रदास रचित ध्यान-मजरी में राम और सीता के संयोग शृंगार का वर्णन प्राय नही हुआ है, क्योकि इसमे भक्त कवि अवधपुरी के माहात्म्य, राम और सीता के रूप-सौन्दर्य और गुणो का ही स्मरण करता है। केवल एक स्थल पर निम्नलिखित सकेतमात्र प्राप्त है—

अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द वामदिशि जनक कुमारी ॥[3]

अष्टयाम-पदावली मे कवि ने संयोग शृंगार और उसके अन्तर्गत रतिकेलि के अनेक चित्र प्रस्तुत किए है। रीतिकाल के आरम्भ मे राम और सीता सम्बन्धी शृंगारिक भावना का विकास मधुरोपासना के रूप मे हुआ और अग्रदास जी को उसका प्रवर्तक माना जाता है। इसी शृंगारिक प्रवृत्ति की झलक उनकी पदावली मे यत्र-तत्र मिलती है।

---

१. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, पद सं० १२
२. सूरराम चरितावली, पद सं० १२ ३ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० १७

राम और सीता परस्पर एक दूसरे को अधरामृत का पान कर रहे हैं। दन्त और नखक्षत दोनो के अगो पर झलक रहा है। प्रेम मे उन्मत्त होकर वे विपरीत कथन करते हैं। राम सीता को 'प्यारे' और सीता राम को 'प्यारी' कह कर सम्बोधित करती हैं। सयोग-क्रीडा की यह पराकाष्ठा है। कवि कहता है कि जिसने अपने नेत्रो से इस सुख को नही देखा, उसका जप, तप, योग सब व्यर्थ है—

भरि अनुराग परस्पर दोउ अधरामृत रस पियत खिलारी।
दन्त नखोछत दाउ अक झलकत मनु युग द्विरद बैठि लडि भारी ॥
कबहू प्रेम भरि लपटि झपटि दोउ करि विपरीत क्रिया रसकारी।
प्रीतम प्यारी को कह प्यारे प्यारी प्रीतम को कहि प्यारी ॥[1]

एक अन्य स्थल पर और राम और सीता की प्रेम क्रीडा का मधुर चित्रण द्रष्टव्य है—

भोर भये नवरग महल मे राजत जनक लडैती लाल।
श्याम गौर अगन भुज दीन्हे कछु आलसयुत नयन विशाल ॥
प्रेम मगन दोउ उरझि रहे हैं कनकलता जनु डार तमाल।
अग सहचरी तन मन वारत उझकि झरोखे झाकति बाल ॥[2]

कृष्ण राधा और गोपियो का मधुर चित्रण जैसा सूरदास आदि कवियो ने किया है, वैसा ही राम और सीता की राम क्रीडा का विशद वर्णन अग्रस्वामी ने भी किया है। उनका यह राम वर्णन सयोग श्रृगार का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। शरद पूर्णिमा के अवसर पर जब श्वेत चाँदनी पृथ्वी पर छिटक रही है। रामचन्द्र ने सरयू के विमल तट पर रास की रचना की जिसको देखने के लिए नगर की स्त्रियाँ एकत्र होती हैं। विविध राग-रागनियो और मृदग, सारगी, चग, तमूर वीणा, वेणु आदि वाद्य-स्वरो के बीच रामचन्द्र और सीता रास-क्रीडा करते हैं—

देखो सखि अति आनन्द।
रास रच्यो रामचन्द्र रजनी छवि छिटकि रही शरद चादनी।
वह सखि मडलाकार नृत्य गानस्वर सम्हार नृत्यत रघुनदन मिथिनशनदिनी।
कचन मीन लसत भूमि नृत्यन पग अचल घुमि नूपुर छम छनन-छम छ-छ दनी।
कमला विमलादि तान राग अनुगादि गान करहि राग रागिणी कला कनन्दनी।
चन्द्र कला वीणा मुचग मृदग मधुर ऊपर सखि सितार तारतार तरगिनी ॥[3]

---

१ अष्टयाम-पदावली, अग्रदास, पद स० २
२ ३ वही

चाँदनी रात में रामचन्द्र और सीता सब सखियों सहित राम-लीला रचते हैं। नाना राग-रागनियो के साथ विविध प्रकार के नृत्य-गान आदि से सारा वातावरण रसमय हो गया है। राम और सीता परस्पर एक दूसरे के विपरीत रूप का शृंगार कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उनकी यह रस-क्रीड़ा अत्यन्त प्रभावशाली और मनमोहक है।[1]

विप्रलम्भ शृंगार—आलोच्य मुक्तक रचनाओ में विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन सयोग-शृंगार की अपेक्षा अधिक मिलते हैं। नायक और नायिका दोनो की वियोगजन्य स्थितियो का विशद चित्रण हुआ है। इससे सम्बन्धित दस विरह दशाए–अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृत्यु आदि मुक्तक काव्य में वर्णित मिलता है। वियोगजन्य दुख नायक-नायिका के प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक होता है। इसमे दोनो की प्रेम-दृष्टि एकाग्र होकर उनका समस्त ध्यान प्रेम-क्रीडा की मधुर आनन्दप्रदायिनी स्मृतियों पर केन्द्रित रहता है और उसके अनन्तर जो मिलन होता है वह और भी अधिक तन्मयतापूर्ण और स्थायी होता है।[2]

गीतावली मे सयोग शृंगार के अन्तर्गत पूर्वराग का केवल एक ही चित्र मिलता है किन्तु विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन संयोग की अपेक्षा अधिक हुआ है। जब रावण सीता को हरण करके ले जाता है तो सीता को राम से बिछोह होने, लक्ष्मण को कटु वचन कहने एव लक्ष्मण-रेखा पार करने का अत्यन्त दुःख है। अपनी विवशता और वियोग की उनके हृदय मे मर्मान्तक पीड़ा है—

आरत वचन कहति बैदेही।
बिलखत भूरि बिसूरि, दूरि गए मृग सग परम सनेही।[3]

यहाँ स्थायी भाव रति, राम आलम्बन, सीता आश्रम और सीता के विषादपूर्ण वचन अनुभाव है। स्मृति, चिन्ता, शोक, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

राम स्वर्ण-निर्मित मृगवेषधारी मारीच का वध करके जब लौटते हैं तो उन्हे कई अपशकुन होते हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष और सरिताए मलीन दिखायी पडती हैं, सम्पूर्ण दृश्यो मे एक उदासी छायी हुई हैं। वन के मार्ग उदास हैं, सरिताओ

---

१. अष्टयाम, नाभादास, पद सं० ४९७, ४९८, ४९९, ५०२
२. डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० १८९
३ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद सं० ७

का जल मलीन हैं, कमल सूख गए हैं, भौंरो ने उनका परित्याग कर दिया है, कोकिल और हस शब्द नही करते—

सरनि जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुजत, कल कूजै न मराल।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखत,
बन न बिलोकि जात खग मृग माल॥[1]

सीता ने उठकर राम का स्वागत मधुर वचनो से नही किया। इसी से राम को सीता के अदृश्य होने का सकेत मिल जाता है। उनके इस विरह उद्वेग को देखकर लक्ष्मण ने राम को सहारा दिया—

उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिय।
प्रिया, न पुलकि प्रिय वचन कहे॥[2]

इस पद मे राम आलम्बन हैं, प्रकृति उद्दीपन है, राम की वियोगजन्य शिथिल दशा अनुभाव और शोक, स्मृति, विषाद सचारी भाव हैं।

सुग्रीव ने जब राम को सीता के वस्त्राभूषण दिखाए तो उनको देखकर राम का शरीर पुलकित हो गया और नेत्रो मे अश्रु आ गए।[3]

विरह के अनेक स्वाभाविक वर्णन अनुभतिपरक एव चितापर्ण हैं। हनुमान सीता की वियोगजन्य दशा को देखकर रो पडते हैं—

सुवन समीर को धीर धुरीन नीर नहोई।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यो दियो रोई॥[4]

सीता अपने विरह दु ख को हनुमान से व्यक्त करती हुई कहती हैं कि वैसे तो राम सब पर दयालु हैं किन्तु वे सीता पर अपनी दया क्या नहीं दिखाते? ऐसा जान पडता है कि वे अपने स्वभाव को भूल से गये हैं। पपीहा का नियम और मछली का प्रेम ही सही है। इतना कहकर वे अवाक् हो जाती हैं।[5]

हनुमान द्वारा सान्त्वना दिए जाने पर वे पुन अपने मन की मार्मिक व्यथा को प्रकट करती हुई कहती हैं कि विरहानल से सतप्त शरीर उनके प्राणवायु से बिलकुल जल जाता है किन्तु उनके दोनो नेत्र रात दिन लगातार अत्यत वेग से जल बरसाते हैं, उससे अग्नि की ज्वाला शात होती रहती है और शरीर

---

१ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद स० ९/२
२ वही, पद स० १०/२
३ वही, किष्किधा०, पद स० १
४ वही, सुन्दर० पद स० ५
५ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद स० ७

अभी तक बचा हुआ है। वे ज्ञान का आश्रय लेकर ही अपने शरीर को अब तक धारण किये हुए हैं।[१]

हनुमान सीता से राम की दीन-हीन दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान राम आपके वियोग मे अत्यन्त दुखी हैं। आपके वियोग के कारण उनमें महिमा, महानता और ब्रह्मत्व का अंश समाप्त सा हो गया है—

सत्य वचन सुनु मातु जानकी।
जन के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति-करुणानिधान की।
तुम वियोग सम्भव दारुन दुख, बिसरि गई महिमा सुत्रान की।।[२]

हनुमान लंका से चलते समय जब सीता के समीप जाते हैं तो सीता का शरीर शिथिल हो जाता है और उनके नेत्रों में आंसू भर आते हैं। वे अपने दुःख का संदेश राम तक भेजना चाहती हैं किन्तु उसे सुन कर राम और अधिक दुःखी होंगे, इसलिए अपने दुःख हृदय में ही छिपा लेती हैं। हनुमान उनकी यह दीन दशा देखकर अत्यन्त व्याकुल होते हैं।[३] वे सीता की शोकपूर्ण अवस्था का वर्णन करते हुए राम से कहते हैं कि वे विरह की साक्षात मूर्ति हैं, बिना आपके उनके नेत्र चित्र की भांति जडवत हो गए हैं। हाथ, पाँव, चेष्टारहित हो गए हैं। कान पुकारने पर भी नहीं सुन सकते, वे जड़ता की स्थिति में पहुँच गयी हैं। उनकी जिह्वा केवल राम का नाम रटती है। वे अपने प्राणों को केवल आपके दर्शन की आशा मे सुरक्षित रखे हुए हैं।[४] हनुमान के द्वारा सीता का संदेश सुनकर राम का शरीर और वाणी शिथिल हो जाती है और वे हनुमान से सीता की कुशल क्षेत्र भी नहीं पूछ सके। वाणी अवरुद्ध हो जाने के उन्होंने कारण लक्ष्मण और सुग्रीव को सेना सुसज्जित करने का आदेश केवल संकेतमात्र से दिया।[५]

कवितावली मे राम और सीता का वियोग-वर्णन केवल दो-एक स्थलों पर ही बिल्कुल सांकेतिक रूप मे हुआ है। इसमे कवि की दृष्टि विप्रलम्भ शृंगार की ओर प्रायः नहीं गयी है। सुन्दर काण्ड मे हनुमान जब लंका में प्रवेश करते हैं तो उस अशोक वन में जहाँ सीता वृक्ष के नीचे शोकातुर बैठी थी, हनुमान को वह स्थान तीनों लोकों के शोक का घर सा दिखायी पड़ा—

सीय की दसा त्रिलोकि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक सारसी।।[६]

---

१. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० ९/२-३ २. वही, पद सं० ११
३. वही, पद सं० १५ ४. वही, पद सं० १८
५ गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० २१ ६ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, पद सं० १

सीता की मार्मिक व्यथा और अधीरता का परिचय उस समय भी मिलता है जब हनुमान लका जलाकर लौटते हैं। वे कहती हैं कि उन्हे लका में हनुमान का एक आलबन मिला था, वह भी अब समाप्त हो गया है।[1]

सूरदास ने विप्रलम्भ शृगार का वर्णन केवल चार पदो मे ही किया है पर उनमे प्रेम की इतनी गहनता है कि अनेक पदो मे भी भावो की वैसी पूर्णता और घनत्व मिलना कठिन है। वे सीता के वियोग म प्रकृति के विविध उपकरणो को देखकर *अपना मानसिक सतुलन* खो देते है। उनमे *उद्वेग की स्थिति उत्पन्न हो* जाती है और वन के विविध प्राकृतिक उपकरणो मे सीता के रूप सौन्दर्य की झलक पाकर कहते हैं कि इन सब ने मिल कर सीता का अपहरण किया है।[2] वस्तुत सीता के सुन्दर शारीरिक अगो एव गुणो–वेणी, मुख, नख, दात, कटि, *हाथ, पैर, चाल आदि का सौन्दर्य प्रकृति के उक्त विविध उपकरणो के सदृश हैं* और उन्हे यही आभास होता क है कि सीता उस सौंदर्य को लेकर य सब उपकरण मूर्तिमान हो गए हैं। राम के इतने शक्तिशाली होते हुए भी सीता की वियोगजन्य स्थिति के कारण राम की सारी शक्ति, महानता, ईश्वरत्व सब कुछ समाप्त हो जाता है *और वे सीता की वियोगजन्य पीडा से इतने* मर्माहत हो उठते है कि प्रकृति के विभिन्न उपादानो पर सीता के विभिन्न अगों का सौन्दर्यहरण का आरोप स्पष्ट शब्दो मे कर देते हैं।

उनका शोक क्रमश बढता ही जाता है। वे पशु-पक्षी, सर्पराज एव सिंह तक से सीता का पता पूछते हुए अपना दारुण दुख व्यक्त करते हैं। जब उन्हे यह पता चलता है कि निशाचर उनकी प्रिया को हरण कर ले गया और रास्ते मे कण्ठहार, कर-कगन, नूपुर और वस्त्रो को देखते हैं ता सारे वन मे सीता को ढूढते हुए उनका दुख पराकाष्ठा को पहुच जाता है–

फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम–बेली।
अहो बधु काहू अवलोकी, इहि मग बधू अकेली ?[3]

सीता के वियोग मे राम जडता की स्थिति मे पहुच जाते हैं। वे दुख की *अतिशयता के कारण* अपने ब्रह्मत्व को भूल कर साधारण पुरुष की भाति पृथ्वी पर गिर पडते हैं और अश्रुपात करते हैं–

---

१ गीतावली, सुदरकाण्ड, पद स० २६ २ सूररामचरितावली, पद स० ५३
३ सूररामचरितावली, पद स० ५४

निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, छिन लोटत धर, बपु न संभारत।
हा सीता, सीता, रहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि भरि डारत।[1]

सीता की विरह-वियोगावस्था का सूरदास ने भी मार्मिक वर्णन किया है। विरहविदग्धा मलिन वस्त्रधारिणी सीता सदैव नेत्रों में अश्रु भरे चारों ओर चकित सी देखती रहती हैं। दुर्बल होने के कारण पृथ्वी पर बार-बार गिर पड़ती हैं। राम नाम ही केवल उनके शरीर का रक्षक —

बिछुरी मनो सग तैं हिरनी।
चितवत रहत चारों दिसि, उपजी विरह तन जरनी।[2]

अग्रदास ने ध्यान-मंजरी, नाभादास ने अष्टयाम और सेनापति ने कवित्त-रत्नाकर मे कही पर भी विप्रलम्भ शृंगार का कोई वर्णन नही किया है। सम्भवत. इसलिए कि राम और सीता का संयोग-रूप ही उन्हे अभीष्ट है। सीता-हरण एक ऐसा मार्मिक और हृदयद्रावक स्थल है जहा सूर और तुलसी ने उत्कृष्ट भाव-व्यंजना प्रस्तुत की है। इसका कारण अग्रदास, नाभादास आदि कवियों की मधुरोपासना है जिसमे राम और सीता की दाम्पत्य रति की झलक संयोग रूप के अन्तर्गत ही सम्भव है।

अग्रदास जी ने अष्टयाम-पदावली मे सीता के क्षणिक विरह का एक पद में वर्णन किया है। सीता को राम का क्षणमात्र का वियोग भी सह्य नही है। स्वर्ण-महल मे खिड़की पर बैठी हुई प्रीतम का मार्ग जोहती हैं। वे राम के गुणों को स्मरण कर अपने विरह का शमन करती हैं। उनकी विरह की व्याकुलता मीन के सदृश है। जब कोई सखी प्रिय के आगमन की बात करती है तो वे आतुरता से उस ओर देखती हैं। अन्त में प्रीतम ने आकर अपनी प्रियतमा सीता को अक मे भर लिया—

कोई सखि कहि पिय आवत हैं यह आतुर ह्वै जिहि ओर निहारी।
तेहि छिन पीतम आय अग्र अति भरि अंकुवार मिली सिय प्यारी॥[3]

इन पक्तियो मे सीता की विरहजन्य उत्कण्ठा, आतुरता और व्याकुलता का सुन्दर वर्णन हुआ है।

वात्सल्य-वर्णन—अनुकम्पेय के प्रति जो अनुकम्पा करने वाले की स्नेहपूर्ण भावना होती है, उसे वात्सल्य कहते हैं। काव्य में जब उसकी अभिव्यक्ति होती है

१. सूररामचरितावली, पद सं० ५१   २. वही, पद सं० ६४
३. अष्टायम-पदावली, अग्रदास, पद स० ५६

और उससे आनदनानुभूति होती है तो उसे वात्सल्य रस कहते हैं।[1] वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल है।[2] वात्सल्य रस का सचार आलबन से अधिक आयु वाले व्यक्तियो माता, पिता, गुरुजनो, परिवार तथा समाज के अन्य वयस्क में होना है। आलवन मे पुत्र-पुत्री, शिष्य, शिशु आदि की गणना की जाती है। इसके अन्तर्गत उद्दीपन के दो भेद हैं—आलवनगत और आलवन वाह्य। पहले मे गुण, चेष्टा और प्रसाधन द्वारा भाव उद्दीप्त होना है। शिशु का शारीरिक सौन्दर्य, बुद्धि-चातुर्य, विद्या, शूरता आदि गुण इस भाव के उद्दीपन हैं। वाल-क्रीडा, हसना, किलकारना, तुतलाना, लडखडाना आदि चेष्टाएँ वात्सल्य-भाव को उद्दीप्त करती हैं। प्रसाधन मे वस्त्र, साजसज्जा और मडन से भी इस भाव की उद्दीप्ति होती है। आलबन-वाह्य मे आलवन से अलग की वस्तुएँ आती हैं जो वात्सल्य भाव को उद्दीप्त करती हैं। जैसे खाना खाने के समय का वातावरण, मेले या बाजार जाने समय बच्चो को आनन्दित करने के लिए उसकी आवश्यकता अनुभाव कराने वाला वातावरण, बच्चे के योग्य भोजन, वस्त्रालकार, उसके खेलने के खिलौने और साथी आदि ये सभी आलबन-वाह्य उद्दीपन के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। आलिगन करना, शरीर को स्पर्श करना, सस्नेह देखना, पुलक, आनन्दाश्रु, स्मित, गोद मे लेना, चूमना आदि वात्सल्य रस के अनुभाव हैं। अन्य रसो मे आठ सात्विक भाव होते हैं किन्तु शुद्ध वात्सल्य रस मे स्तनसुख—नवा सात्विक भाव होना है। आशका, हर्ष, गर्व, आवेग, पुलक, स्मृति, विस्मय आदि वात्सल्य रस के सचार-भाव हैं।[3]

वात्सल्य की भावना मानव-समाज मे अत्यन्त व्यापक है, परोपकार की भावना भी इसी से प्रेरित है। यह एक ऐसा भाव है जिसमे निष्काम रूप से आनन्द आता है। वात्सल्य मे वदले की भावना नही होती। वात्सल्य की भावना केवल अपने सन्तान तक ही सीमित नही होती वरन् सृष्टिमात्र के बच्चों और निस्सहाय व्यक्तियो तक इसका विस्तार मिलता है। मानव-सभ्यता के विकास के साथ इस भावना का विकास भी होना है। देश और राष्ट्र की सकुचित सीमाओ से परे अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर हम इसी भावना से प्रेरित होकर अग्रसर होते हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के मूल में यही भावना है। निष्कर्ष रूप मे हम

---

१ आधुनिक हिन्दी काव्य मे वात्सल्य रस : डा० श्रीनिवास शर्मा, पृ० १६
२. साहित्य दर्पण, पृ० २६२
३. डॉ० श्रीनिवास शर्मा : आधुनिक हिन्दी काव्य मे वात्सल्य रस, पृ० १६

और बाल रूप-सौन्दर्य अत्यन्त मनोहारी है। राम आँगन में खेल रहे हैं, शत्रुघ्न सहित भरत और लक्ष्मण सग मे सुशोभित हैं। वे सभी बालोचित आभूषणो से विभूषित है। उनके शरीर की कान्ति और प्रत्येक अंग की सुन्दरता मयूर-पंख के सदृश छलक रही है। कमर मे करधनी और चरणों में नूपुर की ध्वनि हो रही है। कर-कमल में पहुंची शोभायमान है।[1] गीतावली मे तुलसीदास ने बालक्रीड़ा तथा बाल-रूप का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। उनके इस वर्णन के साथ वात्सल्य-भाव का सफल निर्वाह हो गया है। कवितावली मे तुलसीदास ने आरम्भिक ७ छन्दों मे बाल-रूप सौन्दर्य-छटा न केवल राजा दशरथ और कौशल्या आदि माताओ के हृदय में ही प्रेम का संचार करती है वरन् नगर-वासियो के हृदय को भी आह्लादित करने वाली है।

राम कभी खेलने के चन्द्रमा मागने का हठ करते हैं और कभी जल मे अपनी परछांही देखकर डरते हैं। कभी ताली बजा कर नाचते हैं। यह देखकर मातायें प्रसन्न होती है। कभी जिस वस्तु के हठ करते हैं, उसे ही लेकर संतुष्ट होते हैं—

कबहू ससि मागत आरि करैं, कबहू प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहू करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूं रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर मे बिहरैं।।[2]

राम का बाल-सौंदर्य निम्नलिखित छंद में द्रष्टव्य है। उनके दांत कुंद-कली के समान सुन्दर हैं। नवीन कोमल पल्लव के सदृश उनके अधर हैं। अमूल्य मोतियो की माला की सुन्दरता बादलो मे चमकती हुई बिजली के समान हैं। मुख पर लटकती हुई घुघराली लटे, कपोलो पर लटकते हुए सुन्दर कुडल और उनकी तोतली बोली पर कौन न्योछावर नही हो जाएगा।[3]

सूरदास ने राम, लक्ष्मण आदि के बाल-सौन्दर्य और उनकी बाल-क्रीडाओं का कुछ ही पदो मे वर्णन किया है। बालक राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के हाथों मे बाण और धनुष शोभायमान हैं। वे स्वयं आँगन में लाल जूते पहने हुए खेलते फिरते हैं और माता-पिता को प्रफुल्लित करते है। ऐसा जान पड़ता है कि राजा दशरथ और कौशल्या के सामने चार हस देह सहित सरोवर में आकर बैठे हुए

१. गीतावली, बालकाण्ड, पद सं० ३१
२. कवितावली, बालकाण्ड, छंद स० ४ ३. वही, छंद सं० ५

हैं। वे रघुकुल के ऐश्वर्य हैं और सब को आनन्द प्रदान करने के हेतु उत्पन्न हुए हैं। यह सुख तीन लोको मे भी दुर्लभ है—

करतल सोभित बान धनुहियाँ।

खेलत फिरत कनकमय आगन, पहिरे लाल पनहियाँ।[1]

सूरदास राम आदि के बाल-वर्णन मे यह सकेत करते चलते हैं कि राम ईश्वर के अवतार हैं और पृथ्वी का भार उतारने के लिए उनका जन्म हुआ है[2] और वे हाथ पकडकर भक्तो का निर्वाह करते हैं।[3] राम भक्ति, धर्म, धन के प्रदाता हैं और उनकी क्रीडा को देखने के लिए सूर, मुनि सब लालायित रहते हैं—

धनुही बान लिए कर डोलत।

चारो वीर सग इक सोभित, वचन मनोहर बोलत।[4]

अग्रदास ने 'अष्टयाम पदावली' मे एक स्थल पर वात्सल्य भाव का सुन्दर चित्रण किया है। रामचन्द्र भाइयो और सखा समेत जब आखेट से लौटते हैं तो पिता के पास जाकर प्रणाम करते हैं। पुत्रो को देखकर दशरथ अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। वे अपने कर-कमलो से उन्हे उठाकर गोद मे लेते हैं और उनका मुख चूमते हैं। बडे दुलार से वे उनसे बार-बार आखेट की कुशलता पूछते हैं और जब वे सब शिकार की बातें सुनाते हैं तो दशरथ अत्यधिक प्रसन्न होते हैं—

करि सिकार आये रघुनन्दन सग सखन सब भ्रात।

पितु-समीप मे जाय जुहारे सुत लखि अति हुलसात।[5]

सूर के दशरथ और तुलसी के दशरथ म स्पष्ट अन्तर दिखायी देता है। यद्यपि सूर और तुलसी दोनो के ही दशरथ अकूत और अमित दान देते हैं तथापि तुलसी के दशरथ जहा विचारशील और दान म पात्रता पर अधिक बल देते दिखायी पडते हैं, वहा सूर के दशरथ मे यह बात नही पायी जाती। इसका कारण शायद यह है कि रामचरित्र को जितनी गम्भीरता से तुलसी ने ग्रहण किया है, सूर ने उतनी गभीरता एव गहरायी से नही।

अमित धेनु गज तुरग वसन मनि, जातरूप अधिकाई।

देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई।।[6]

---

१ सूररामचरितावली, पद स० ५ २ वही, पद स० ४

३ वही, पद स० ५ ४ वही, पद सं० ६

५ अष्टयाम-पदावली, अग्रदास, पद स० ५३

६ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० १–९

राजा दशरथ को राम अपने सब पुत्रों में अधिक प्रिय हैं। जब विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा हेतु राम और लक्ष्मण की याचना के लिए उनके समीप जाते हैं तो वे मुनि द्वारा याचना करने से पूर्व ही उनसे कह देते हैं कि राम के अतिरिक्त उनके लिए कुछ भी अदेय नहीं है। सारा राज्य वे देने को तत्पर हैं, किन्तु राम को नहीं—

मेरे कुछु न अदेय, राम बिनु देह गेह सब राज।[1]

सूर के राजा दशरथ राम को देने में संकोच एवं झिझक का कहीं भी अनुभव नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कि वे राम के ब्रह्म स्वरूप एवं अवतार से पूर्णतया अभिज्ञ हैं। तुलसी के राजा दशरथ को जब मुनि वशिष्ठ राम जन्म का हेतु समझाते हैं तब वे राम को विश्वामित्र के साथ जाने की अनुमति दे देते हैं।

वनवास जाने के पूर्व सूर और तुलसी दोनों के द्वारा राजा दशरथ अत्यधिक दुखी दिखाये गये हैं। दोनों में ही राम को कुछ क्षण रुकने एवं दर्शन करने की लालसा दिखायी देती है। सूर के दशरथ स्पष्ट शब्दों में राम से कहते हैं—

अब सूरज दिन दरसन, दुरलभ,
ललित कमल-कर कंठ (गहौ) हौं।[2]

तुलसी के दशरथ का दुख अन्दर ही मानो पुटपाक हो गया है। वे राम के नेत्रों से ओझल होते ही मूर्छित हो जाते हैं—

पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम को नृप पथिक भारि मानो राम रतन लै भाग्यो॥[3]

वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति संयोग और वियोग दो रूपों में होती है। जब हम शिशु को हँसते, बोलते, खेलते, कूदते, किलकारी मारते देखते हैं तो वहाँ संयोग वात्सल्य होता है और जहाँ इस संयोग सुख की अनुभूति नहीं होती, वहाँ वियोग वात्सल्य की अभिव्यंजना भी अधिक मार्मिक और हृदयस्पर्शी होती है। यह अवसर विशेष रूप से, उस समय उपस्थित होता है जबकि राम और लक्ष्मण राजा दशरथ की आज्ञा से वन के लिए प्रस्थान करते हैं।

राम के वनवास का समाचार सुनकर कौशल्या को मर्मान्तिक पीड़ा होती है और वे राम को अनेक प्रकार से वन न जाने के लिए कहती हैं। अन्त में राम

१ गीतावली, पद सं० ४९ २ सूररामचरितावली, पद सं० २०
३. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद सं० १२

के वन-गमन का समय निकट आ जाने पर अत्यधिक दु खी होती है और उनके हृदय मे पुरानी बालस्मृतियाँ जग जाती है ।[1]

राम के वन जाते समय राजा दशरथ राम और लक्ष्मण से अपनी हृदयगत वेदना को प्रकट करते हुए कहते है—

मोको बिधु बदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यहै भेंट, बलि जाउ मोहि मिल लीजै ।[2]

जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जनकपुर चले जाते है तो कौशल्या और सुमित्रा पुत्रो की चिन्ता से व्याकुल है । मेरे पुत्र कठिन मार्ग का निर्वाह कैसे करेंगे ? भूख, प्यास, ठण्ड, श्रम को वे कैसे सहेंगे ? उन्हे प्रात उठते ही कौन कलेवा देगा ? उन्हे गहने पहना कर उन पर कौन न्यौछावर होगा ?

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहेंगे ?
भूख प्यास सीत स्रम सकुचनि क्यो कौसिकहि कहेंगे ।[3]

वियोग वात्सल्य—कौशल्या जब राम के धनुष-बाण और जूते देखती है तो वे अपनी सुध-बुध भूल जाती है । वे पुरानी स्मृतियो मे इतनी लीन हो जाती है कि उन्हे वर्तमान स्थिति का ध्यान नही रहता और वे पूर्व स्वाभाविक कार्यो को यन्त्रवत् करने लगती हैं ।[4] राम की प्रत्येक स्मृति कौशल्या के हृदय को व्यथित करती है । राम की अनुपस्थिति मे वहा की प्रत्येक वस्तु कौशल्या के अधिकाधिक पीडित करती है । कौशल्या की दशा दु सह है, बहुत अधिक कठोर है—

जब जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो ।[5]

उपर्युक्त पक्तियो मे राम की स्मृति और उनके साहचर्य की वस्तुएँ उद्दीपन का कार्य करते हैं । विप्रलम्भन राम है जो कौशल्या की स्मृतियो को अधिक तीव्र कर रहे हैं । कौशल्या आश्रय हैं, पुत्रविषयक रति स्थायी भाव है और मोह, जडता और स्मृति सचारी भाव है ।

जब राम को वन मे छोड कर सुमन्त लौट कर घर आते हैं तो उस समय दशरथ के हृदय मे राम के सदेश तथा दशा को जानने के लिए विकलता की सरिता उमड पडती है और तभी वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडते हैं ।[6]

---

१ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद स० ४
२ वही, पद स० १२
३ वही, पद स० ५१
४. वही, पद स० ५२
५ वही, पद स० ५४
६. वही, पद स० ५६

प्रिय व्यक्ति या वस्तु का अनिष्ट होना, उद्दीपन-दुःखपूर्ण, अस्त-व्यस्त दशा का दर्शन या श्रवण है, अनुभाव-रुदन, वाणी द्वारा भाग्य को कोसना, आदि देव को दोष देना, बिलाप, शरीर का शिथिल होना आदि, सचारी भाव-चिन्ता, ग्लानि, विषाद, स्मृति, व्याधि, निर्वेद, मरण आदि माने गए हैं।

गीतावली मे करुण रस के उद्भावक चार प्रमुख स्थल है। यथा—दशरथ मरण, जटायु-मिलाप, लक्ष्मण-मूर्छा, सीता-त्याग।[1] राम के वन-गमन के समय राजा दशरथ के हृदय मे राम को अन्तिम बार देखने की उत्कण्ठा है। वे राम-लक्ष्मण से कहते है कि मेरी यही अन्तिम भेंट है, इसलिए अच्छी तरह मिल लो। वे उनको हृदय से लगा लेते है। वनवास का स्मरण हो आते ही पृथ्वी दरार के मिस विदीर्ण हो जाती है। राम के प्रस्थान करने पर राजा दशरथ मूर्छित हो गये और फिर अचेत हो गये।[2] राजा दशरथ की करुण दशा अत्यन्त दयनीय है, जबकि वे स्पष्ट शब्दो मे कह देते हैं कि मेरी तुम से यही अन्तिम भेंट है। उनके हृदय मे इतना अधिक शोक है कि राम के वन-गमन पर वे मूर्छित होकर प्राण छोड देते हैं। सस्कृत के महान् कवियो की भाँति तुलसी ने भी ध्वनि को अपने काव्य मे स्थान दिया है। दशरथ की मृत्यु अवश्यम्भावी है जो कि 'यहै भेंट' शब्दो द्वारा ध्वनित की गयी है। राजा दशरथ ने जब यह सुना कि सुमन्त अयोध्या लौट आये तो वे राम की दशा जानने की उत्कण्ठा से व्याकुल होकर उठे किन्तु वे प्यारे पुत्र की कुशल नही पूछ सके, क्योकि उनके हृदय मे यही पछतावा था कि मुझे धिक्कार है कि पुत्र-वियोग सहने के लिए जीवित हूँ ? अन्त मे प्रिय पुत्र का स्मरण कर वे मूर्छित हो गए जैसे कोई मछली जल से पृथक हो गयी हो।[3] राजा का शोक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वे यह सोचकर और दुःखी होते है कि उन्होंने स्त्री के वशीभूत होकर राम को राजतिलक के स्थान पर वनवास दे दिया। यदि राम, लक्ष्मण, सीता के बिछुडने पर भी उनका हृदय नही फटा तो फिर इससे बढकर कौन घाव होगा? व्यथित हृदय दुःख के हेतु पर अनेक प्रकार से विचार करता है। दशरथ को भी अपनी स्त्रैणता, राम-वन-गमन का अत्यधिक दुःख है। प्रिय वस्तु के अभाव मे व्यक्ति मरण को अधिक उचित समझता है। दशरथ भी राम के वियोग मे मरण रूपी अमृत का पान करना चाहते है। अमृत

१. डॉ० उदयभानु सिंह तुलसी काव्य-मीमासा, पृ० ४४३
२ गीतावली, अयोध्याकाड, पद स० १२
३. वही, पद स० ५६

अमरता की सृष्टि करता है। दशरथ मृत्यु को प्राप्त होकर राम वियोग जन्य दुख को सदैव के लिए भूल जाना चाहते है। उन्होंने अपने प्राणो का परित्याग कर सत्य और प्रेम दोनो की ही मर्यादा रखी। दशरथ की दृष्टि सामान्य नहीं असामान्य है। वे वनवासी राम की सौम्यता के कारण ग्लानि से भर जाते है। उनकी प्रेम वत्सलता अत्यन्त उच्च कोटि की और आदर्श है। उक्त पद वियोग वात्सल्य की अतिम दशा 'मरण' का ज्वलत उदाहरण है। तुलसीदास ने कवितावली मे दशरथ के वात्सल्य वियोग एव मरण का कोई उल्लेख नही किया है। वे राम, लक्ष्मण सीता का स्मरण कर नेत्रो से अश्रु बहाते है और त्रियाचरित्र को बुद्धिमान लोग भी नही समझ पाते, यह सोच कर अत्यन्त दुखी होते है—

महाराज दशरथ यौं सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदही! सुमिरि नीर दृग मोचत।
त्रिया चरित्र मतिमत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत॥[1]

तुलसी ने भी दशरथ पर स्त्रैणता की लाछना की है एव सूर ने त्रियाचरित्र को विद्वानो की बुद्धि से परे बताया है। दोनो महाकवियो मे उक्त भाव की समानता है। सूर के दशरथ भी राम से एक दिवस रहने एव वियोग दुख की अनिशयता के कारण प्राण त्याग की स्पष्ट घोषणा कर देते है—

रघुनाथ पियारे आजु रहौ (हो)।
चारि जाम बिस्राम हमारैं, छिन छिन मीठे बचन कहौ (हो)।
वृथा होहु वर बचन हमारौ, कैकइ जीव कलेस सहौ (हो)।
आतुर ह्वै अब छाडि अवधपुर, प्रान, जिवन! कित चलन कहौ (हो)।
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु पुनि पथ गहौ (हो)।
अब सूरजदिन दरसन दुरलभ, कलित कमल कर कठ गहौ (हो)॥[2]

सम्भव है कि उपर्युक्त भाव तुलसी ने सूर से ग्रहण किए हो और उन्ही भावो का थोडा परिष्कार कर दिया हो? 'रामचन्द्र के वन गमन पर सारे नगर वासी पिता पुत्र के प्रेम को देखकर अत्यन्त दुखी होते हैं। राजा दशरथ ऊचे स्थान पर चढ कर पुत्र मुख को आँखें भर भर कर देखते हैं। उनके नेत्र आँसुओ से पूर्ण हो जाते हैं और हा तात! हा तात! कह कर वे मूर्छित हो जाते है।'[3] करुण

१ सूररामचरितावली, पद स० १८
२ वही, पद स० २०   ३ वही, पद स० २७

भाव का दूसरा स्थल गृद्धराज जटायु का मृत्युजन्य शोक है। तुलसीदास और सूरदास दोनो ने इसका भावपूर्ण चित्रण किया है। आकाश-मार्ग मे रावण से सीता को छुडाने मे जटायु ने अथक प्रयत्न किया और जब तक रावण ने उसके पख नही काट दिए तब तक वह उस पर प्रहार करता रहा। अन्त मे विवश होकर वह पृथ्वी पर गिर पडता है। उसे दुःख है तो यही कि सीता की रक्षा न कर सका और भगवान को इसकी सूचना दिए बिना उसके प्राण पखेरू प्रयाण करना चाहते है। वह बार-बार सिर धुन कर पश्चात्ताप करता है, तभी राम लक्ष्मण के साथ वहा पहुच जाते हैं। तुलसीदास ने गीतावली में उसका सुन्दर चित्रण किया है।[१]

रामचन्द्र ने गृद्धराज को गोद में ले लिया और अपने नेत्र-कमल द्वारा स्नेह रूपी पवित्र जल से मानो अर्घ्यदान किया। रामचन्द्र ने जटायु से शरीर रखने के बहुत आग्रह किया किन्तु वह अपने निश्चय से विचलित न हुआ। वह अपने झूठे जीवन को समाप्त करना चाहता है, क्योकि ऐसा मरण जो मुनियों को भी दुर्लभ है, उसे फिर कहा मिलेगा?[२] राम उसे सदेश देते है कि स्वर्ग लोक मे पिता दशरथ से सीताहरण की बात न कहना। इससे वे और दु:खी होंगे। नष्ट होने पर रावण स्वयं ही वहा जाकर बता देगा। इस पर जटायु राम की मधुर मूर्ति हृदय मे धारण कर स्वर्ग-लोक को सिधार गया। रामचन्द्र जी ने उसका अपने पिता के समान दाह-सस्कार किया।[३]

तुलसीदास ने कवितावली में सीता हरण या जटायु-वध का कोई वर्णन नही किया है। केवल एक पक्ति में सीता-हरण का प्रासगिक उल्लेख भर कर दिया गया है। सूरदास ने भी सीताहरण और जटायु-वध का अत्यन्त सक्षेप मे वर्णन किया है। जब रावण सीता को चुरा कर ले जाता है, तभी गृद्ध उन्हे देखकर उसके पीछे दौडता है और प्रहार करता है किन्तु पख कट जाने पर वह नीचे गिर जाता है।[४] जब राम और लक्ष्मण सीता को ढूढते-फिरते हैं तभी एक प्राणी द्वारा अपने नाम को रटता हुआ सुनकर वे दौड कर उसके पास पहुचते हैं और पक्षीराज से उसके दुःख का कारण पूछते हैं कि किस मूढ ने तुम्हारे शरीर की हत्या की है। जटायु अपने दुःख को भूल कर तभी रावण द्वारा सीता-हरण की सूचना राम को देता है।[५] गृद्धराज जटायु ने रामचन्द्र को देखकर अपना

१ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद स० १२
२. वही, पद स० १३
३. वही, पद सं० १६
४. सूररामचरितावली, पद सं० ४९
५. वही, पद स० ५५

सिर नवाया और सीताजी की सब बातें बता कर उसने अपने शरीर को त्याग दिया। राम ने उसे अपना भक्त समझ कर अपने हाथ से उसका दाह-संस्कार किया। वह इस प्रकार भगवान का दर्शन और स्पर्श पाकर स्वर्गलोक को सिधार गया।[1]

गीतावली में एक करुणोत्पादक स्थल लक्ष्मण-शक्ति का है जिसमें अपने छोटे भाई के मूर्च्छित होने पर राम की विरह-व्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है। राम लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। उनके नव कमल आंसुओं से भर गए और प्रत्येक अंग दुःख से संतप्त हो गया और वे लक्ष्मण के मुख को देखकर कहते हैं कि हे तात, तुमने अपने यश और कार्य से सारी सृष्टि को जीत लिया और मैंने शरीर रख कर अपयश ही कमाया है। राम के वचन सुनकर भालु, बन्दर और देवता सभी अत्यधिक शोक-मग्न हो गए—

राम लखन उर लाइ लये हैं।
भरे नीर राजीव नयन सब अंग-अंग परिताप तये हैं।[2]

राम लक्ष्मण के गुणों को स्मरण कर अत्यधिक अधीर होते हैं। वे शोक प्रकट करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मण अपने भ्रातृत्व का निर्वाह भली प्रकार से करके चला गया किन्तु मैं अभी तक प्राण धारण किए हुए हूं, मेरा हृदय वज्र के समान कठोर है जो लक्ष्मण की स्नेह-स्मृति से अभी तक विदीर्ण नहीं हुआ। पिता की मृत्यु, सीता-हरण, जटायु-वध और लक्ष्मण-शक्ति जैसे अनेक कार्यों का अपने को कारण एवं दोषी मानते हुए राम का हृदय अतिशय शोक, ग्लानि और क्षोभ से भर जाता है—

मोपै तो न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली विधि भायप चल्यो लखन सो भाई।[1]

राम का साहस और शक्ति लक्ष्मण के साथ ही समाप्त हो गयी। संसार के भाग्य निर्माता स्वयं अपने भाग्य को विपरीत समझने लगे हैं। भाग्य को दोष कायर पुरुष देते हैं—"दवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।" किन्तु राम कायर नहीं हैं। वे स्नेहाश्रित हैं। स्नेहमात्र की करुण दशा उन्हें किसी भी स्थिति में सह्य नहीं है। ऋग्वेद में कहा गया है—"सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० ५६
२ गीतावली, लंकाकाण्ड, पद सं० ५
१ वही, पद सं० ६

कश्चिन् दुःखभाग भवेत्।" फिर राम को जो अनुज, सेवक, भक्त तीनो के सम्मिलित रूप है, उनकी दुःखद दशा कैसे सह्य हो ? राम को इसका भी दुःख है कि उनके सगी-साथी तो बन मे चले जायेंगे और वे स्वयं लक्ष्मण के मार्ग का अनुसरण कर लेगे, किन्तु विभीषण की क्या गति होगी ? शरणागत की रक्षा का राम को सबसे अधिक दुःख है—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको।[1]

गीतावली मे वर्णित दशरथ-मरण के प्रसंग मे भी प्रत्यक्षत: तो करुण रस है पर मूल मे दशरथ की पुत्र-वत्सलता ही मुख्य है। जटायु-वध मे भी शोक से अधिक चिन्ता राम-भक्ति की है और लक्ष्मण के शोक मे मूल में राम की भ्रातृ-वत्सलता एव लक्ष्मण का भक्ति-भाव ही प्रमुख है। राम-विलाप के अवसर पर लक्ष्मण के त्याग पर ही प्रमुख दृष्टि रही है।

सूरदास ने लक्ष्मण-शक्ति के प्रसग को पदों मे वर्णित किया है। शक्ति के लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते है। यह देखते ही राम के नेत्रों मे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है—

छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ लछमन बन्धु परयौ।
करुना करत 'सूर' कोसलपति नैननि नीर झरयौ॥[2]

लक्ष्मण को अचेत देखकर राम का धैर्य-बाध टूट जाता है और वे नेत्रो से अश्रुपात करते है और कहते है—लक्ष्मण बारह वर्षो तक साधनालीन रहे, इसीलिए उनका शरीर व्याकुल हो गया है। लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए वे कहते है कि दुःख बँटाने वाले हे तात ! मौन क्यो साध लिया है ? बोलते क्यो नही ? लक्ष्मण के बिना अब कौन धैर्य को बधा सकता है ?

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुक बिसाल कमल दल लोचन नीर।[3]

लक्ष्मण के अभाव मे राम अपने को अत्यन्त असहाय और निर्बल पाते है। अपार शत्रु-सेना से वे अब क्योंकर मोर्चा ले सकेंगे ? असीम दुःख-समुद्र के बीच नाव कैसे चलेगी ? जब केवट ही थक गया हो और जब शत्रु का

१. गीतावली, लकाकाण्ड, पद सं० ७
२. सूररामचरितावली, पद स० १६४
३. वही, पद स० १६५

माधवपति ही क्या हो गया । [illegible] ? मैं अपना प्राण त्याग दूंगा । किन्तु [illegible] ? [illegible] उनको अधिक दुःख है । वे बार-बार लक्ष्मण के सिर को उठाकर अपने गोद में लेते हैं—

अब हौं कौन को मुख हेरौं ?
रिपु सेना समूह जल उमड्यो, काहि संग लै पैरौं ।
दुख समुद्र जिहिं वार पार नहिं, तामें नाव चलाई ।
केवट थक्यो, रही अध-बीचहिं, कौन आपदा आई ।[1]

सूर द्वारा उक्त पद में राम की अधीरता, निरीहता और ग्लानि का वर्णन अत्यन्त करुणोत्पादक है । सूर ने केवल दो ही पदों में इतने करुण भाव का चित्रण किया है किन्तु ये दो पद ही भाव की गम्भीरता का पूर्ण परिचय दे देते हैं ।

सूरदास ने लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर माता कौशल्या और सुमित्रा की शोकातुर दशा का भी मार्मिक वर्णन किया है । हनुमान संजीवनि बूटी न पहचानने के कारण द्रोण गिरि को उठाकर लौटते हैं तो भरत कोई उपद्रवी जानकर बाण द्वारा उन्हें नीचे गिरा देते हैं । जब वे भरत को सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति की सूचना देते हैं तो कौशल्या उसे सुनते ही सिर पीटने लगती है और सभी लोग पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर पड़ते हैं । सुमित्रा भी पुत्र लक्ष्मण का स्मरण कर विलाप करने लगती है किन्तु लक्ष्मण ने पुत्र मर्यादा रखी और वह राम के काम आ गया, यह सोचकर अपने को धीरज देती है—

कहो कपि ! रघुपति को संदेस ।
बन में बसत निसाचर छल करि हरी सिया मम मात ।[2]

सुमित्रा कौशल्या को धैर्य बँधाती है कि वे अधिक दुःखी न हों । लक्ष्मण को जन्म देकर 'मैं सपूती हो गयी हूँ', क्योंकि वह राम के काम आया । जियेगा तो संसार में सुख भोगेगा और कीर्ति प्राप्त करेगा और यदि मरण को प्राप्त हुआ तो स्वर्ग-लोक जायेगा—

धनि जननी जो सुभटहिं जावै ।
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै ।[3]

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० १६६
२ वही, पद सं० १७१ ३ वही, पद सं० १७२

लक्ष्मण की मूर्छा से कौशल्या के हृदय मे मर्मान्तिक पीडा होती है। लक्ष्मण ने अपने सारे राजसी सुख राम के लिए त्याग दिये और अब उन्ही लक्ष्मण के बिना राम सुखपूर्वक रहे, यह कौशल्या को थोडा भी मह्य नही। इसीलिए वे स्पष्ट कहती हैं कि मेरे पुत्र राम लक्ष्मण के बिना अयोध्या न आएँ, उनके बिना राम का जीवन धिक्कार है। वे लक्ष्मण और सीता के साथ लौटकर ही राज कर सकते हैं अन्यथा लक्ष्मण पर अपना जीवन न्योछावर कर दें-कौशल्या के जैसा उच्चादर्श किसी शोकमग्ना मर्माहत का ही हो सकता है?[1] कौशल्या के उक्त कथन को सुनकर सुमित्रा दुखी हृदय से समझाती हैं कि युद्ध मे यदि सेवक की मृत्यु भी हो जाती है तो स्वामी को घर लौटकर आना ही चाहिए। जब से राम वन गये हैं तब से भरत ने सारे सुख, भोग त्याग दिए हैं और उनके दर्शन के बिना हृदय मे अपार दुख है। सुमित्रा की आत्यतिक करुणा अवलोकनीय है—

मारन सुतहि सदेम सुमित्रा, ऐसैं कहि समुझावै।
सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै।
जब तैं तुम गवने कानन कौं, भरत योग सब छाँडे।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख समूह उर गाड़े ॥[2]

करुण भाव का एक मार्मिक स्थल सीता-परित्याग का है जिसका वर्णन केवल गीतावली मे मिलता है। तुलसी की अन्य मुक्तक रचनाओं मे या अन्य आलोच्य कवियो के द्वारा इसका वर्णन नही हुआ है। राम-लक्ष्मण के साथ सीता को लोकापवाद के भय से वाल्मीकि-आश्रम मे भेज देते हैं। लक्ष्मण सीता को वन मे छोड़कर जब लौटने लगते हैं तो सीता का दुख अत्यधिक बढ जाता है। वे शोकातुरा-दशा मे लक्ष्मण से कहती है कि तुम मुझे बिलकुल भुला न देना और राजधर्म समझकर ही अन्य तपस्वियों की तरह मेरा भी पालन करते रहना। राजमहिषी सीता के ये कातर वचन सुनकर सबके नेत्रों मे आँसू भर गए और महर्षि वाल्मीकि भी अतीव स्नेह के कारण अपने को न सँभाल सके।[3] सीता के कातर वचन सुनकर लक्ष्मण के शोक की सीमा नही रही और इसे वे वाम विधाता द्वारा क्रोध मे दिया गया दण्ड समझते है। वे मन ही मन

१. सूरसामचरितावली, पद स० १७३
२. वही, पद स० १७४
३ गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद सं० २९

सोचते है कि मेरी कठोरता देखकर प्रीति भी लज्जित हो गई है जो ऐसे अवसर पर भी मैं अभी तक जीवित हूँ।[1]

भक्ति-वर्णन

'भक्ति' शब्द का प्रयोग केवल ईश्वर-प्रेम के अर्थ मे किया जाता है। इसलिए इस मनोवृत्ति से श्री प्रभु का दर्शन, भावना से सेवन-मनन, नेत्रों से श्री भगवत्प्रेमी सतों का और प्रभु-प्रतिमा चित्रादिकों का दर्शन, मुख से श्री भगवान की गुण-स्तुति आदि भक्तिकालीन व्यक्ति के कार्य है। इस आधार पर भक्ति की परिभाषा ईश्वर से सम्बद्ध विभिन्न रूपों में की गयी है।[2] ईश्वर मे अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है,[3] धर्म की रसात्मक अनुभूति भक्ति है,[4] भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूप। है[5] आदि भक्ति सम्बन्धी परिभाषाएँ ईश्वर विषयक रति को स्पष्ट करती है।

भक्ति के मुख्यत तीन भेद बताए गए है—श्रद्धा-भक्ति, भावना-भक्ति और शुद्धा-भक्ति। उपास्य के प्रति श्रद्धा-भाव के साथ उसके स्नेह मे तल्लीन होकर उसे नमस्कार करना या प्रशसा करना श्रद्धा-भक्ति है। जब हम एक को अनेक मे और अनेक की सेवा द्वारा एक ही सेवा करने का प्रयत्न करते है जिसमे एक गहरी एकात भावना की अनुभूति होती है तो वह भावना-भक्ति कहलाती है। जब भक्त ईश्वर या अपने आराध्य देव को निर्गुण, सगुण तथा अवतार रूप मे भी स्वीकार करता है और उसके प्रति अविरल प्रेम प्रदर्शित करता है तो वहाँ शुद्धा-भक्ति होती है।[6] रूप गोस्वामी ने भक्ति के दो भेद स्पष्ट किए हैं—साध्यभक्ति और साधन भक्ति। 'साध्यभक्ति' ही भाव भक्ति, पराभक्ति आदि नामों से दी गयी है। साधनभक्ति को गोपी भक्ति कहा गया है जिसके दो भेद है—वैधी और रागानुगा। जहाँ शास्त्रानुमोदित भक्ति होती है, वह वैधी भक्ति है किन्तु जहाँ ईश्वर के प्रेम की भावना रहती है, वह रागानुगा-भक्ति होती है।[7]

---

१. गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद स० ३० २. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, पृ० २५
३. शाडिल्य भक्ति सूत्र, अध्याय १, स० २
४. चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७
५. नारद भक्ति, सूत्र, स० २ ६. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, पृ० २९-३०
७. वही, पृ० ३०

भक्ति के नौ प्रकार और दिए गए हैं जो इस प्रकार हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चनवदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन। इन नव भक्तियों मे श्रवण, कीर्तन और स्मरण भगवान के नाम और लीला से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाएँ हैं। पाद-सेवन, अर्चन और वन्दन इन कृत्यों का उनके स्वरूप से लगाव है तथा दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ये भाव है जिनका अर्पण भगवान को होता है।[१]

भक्ति-शास्त्र सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों—शाण्डिल्यसूत्र, नारद भक्तिसूत्र, हरिभक्तिरसामृत सिंधु आदि मे भक्ति की विस्तृत व्याख्या की गयी है। इनमें भक्ति-रस को ब्रह्मानन्द से भी अधिक सुखकारी कहा गया है। सब प्रकार की लौकिक रतियों को समेट कर तथा उन्हे ईश्वरोन्मुख करके चलने वाला भक्ति विषयक काव्य हिन्दी तथा अन्य भाषाओं मे इतना प्रचुर है कि भक्ति रस से रूढिवाद मे भुलाया नही जा सकता है।[२]

तुलसीदास की गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका आदि मुक्तक रचनाओं मे भक्तिरस के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते है। राम-जन्म के अवसर पर सारे नगरवासी हर्षोल्लसित हैं। देवगण भी आनंदित है। भगवान रामचन्द्र के चरणों की वन्दना कर भक्तजन अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं। कवि ने राम की अविरल, अमृत और अनुपम दृढभक्ति का परिचय निम्न पक्तियों मे दिया है—

जै रघुवीर-चरन-चितक, तिन्हकी गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ तुलसिदास तब पाई॥[३]

भक्ति-रस

पण्डितराज जगन्नाथ ने भक्ति को स्वतन्त्र रस मानने के तर्क तो दिये हैं किन्तु उसे पृथक रस नही माना। आचार्य विश्वनाथ ने भी भक्ति के स्वतन्त्र रसत्व पर अपने विचार प्रकट किये है। भक्ति-रस का स्थायी भाव भगवत्-प्रेम है। ईश्वर या उसका कोई स्वरूप आलंबन है। भागवत-सवणादि, अश्रुपात, रोमाच उद्दीपन-अनुभाव हैं। हर्ष और दैन्य सचारी भाव हैं। रस-तरगिणीकार भानुदत्त ने भी भक्ति को अलौकिक रस के रूप मे स्वीकार किया है। भक्ति को शान्त के भीतर नही रखा जा सकता क्योंकि शान्त, निर्वेद अथवा वैराग्य पर आश्रित है और भक्ति अनुराग पर।[४]

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५४२
२. वही, पृ० ५९१
३. गीतावली, बालकाण्ड, पद स० १/१२
४. डॉ० भगीरथ मिश्र . काव्यशास्त्र, पृ० २६७

जटायु पक्षी-योनि में होते हुए भी राम का अनन्य भक्त है। जानकी की रक्षा न कर पाने के कारण वह अत्यधिक दुखी है। उसे पश्चाताप है कि दशरथ के समान प्रेम प्रण का निर्वाह न कर सका। जब रावण सीता का हरण कर ले गया तो उनकी रक्षा भी नहीं कर सका। वह आहतावस्था में मृत्यु के समीप है और उसे राम के दर्शन भी सुलभ नहीं प्रतीत होते। उसके यह सोचते ही राम वहां आ जाते हैं और गीधराज जटायु को उनके दर्शन हो जाते हैं। इससे राम की भक्त-वत्सलता स्पष्ट है। राम जटायु से शरीर धारण करने के लिए काफी आग्रह करते हैं किंतु वह एक बार राम के दर्शन पाकर जीवन का परम सुख पा लेता है। जो दर्शन मरते समय मुनियों को भी दुर्लभ है वह उसे फिर कहां प्राप्त होगा? इसलिए अब वह अपना जीवन राम की भक्ति में लीन होकर समाप्त करना चाहता है—

> बहु विधि राम कह्यौ तनु राखन, परमधीर नहिं डोल्यो।
> रोकि प्रेम, अवलोकि वदन बिधु, बचन मनोहर बोल्यौ।
> तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहों।
> जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौ॥[1]

राम-भक्त शबरी प्रभु का आगमन जानकर अत्यधिक प्रसन्न है और पत्तों में कन्दमूल फल आदि रख राम का स्वागत करती है। उनके चरण कमल धोकर उनका पूजन करती है। शबरी के आतिथ्य सत्कार से अपनी प्रेम एवं श्रद्धामयी भावनाएँ व्यक्त हैं। सभी तपस्वी, किरातिनी, कोल आदि भी प्रभु की अर्चना वन्दना कर परमधाम को सिधार जाते हैं। शबरी भी भगवान की बारबार प्रदक्षिणा कर उनको हृदय में धारण कर स्वर्गलोक चली जाती है, तब राम ने अपने हाथों जलांजलि दी।[2] भगवान अपने भक्तों के प्रति कितने दयालु, करुणामय और प्रेम-वत्सल हैं, इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति जटायु और शबरी की भक्ति-भावना में मिलती है। देवगण, मुनि आदि भी भक्ति के उस स्तर तक नहीं पहुंच पाते।

शरणागत की रक्षा करना भगवान का विशेष गुण है। लक्ष्मण और हनुमान विभीषण को लेने के लिए जाते हैं। विभीषण राम के दर्शन कर सुध-बुध खो देते हैं। भगवान के प्रेम में संशय और संकीर्णता नहीं है। वे विभीषण

१ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद स० १३
२ वही, पद स० १७/५-८

को शत्रु का बन्धु जानते हुए भी अपने को भुलाकर उनसे भरत के समान ही प्रेम से मिलते हैं—

भयो विदेह विभीषन उत, इत प्रभु अपुनपौ बिसारि कै।
भली-भाँति भाव ते भरत ज्यों भेट्यो भुजा पसारि कै।[1]

राम की भक्त-वत्सलता आदर्श है। राम की शरण मे जाने पर सभी का भला होता है, चाहे वह कोई भी हो। पगु, अंधे, गुणी, निर्गुणी सभी का ईश्वर निर्वाह करता है। राम का नाम-स्मरण करने से सारे पाप धुल जाते हैं। विभीषण की भक्ति तत्काल फलित होने लगती है। भक्त द्वारा ईश्वर-नाम के स्मरण से आकाश, जल, पृथ्वी सब मंगलमय हो जाते हैं—

गये राम सरन सबको भलो।
गनी-गरीब बडो-छोटो बुध-मूढ़ हीनबल अतिबलो।[2]

उपर्युक्त पद मे गोस्वामी तुलसीदास ने राम-भक्ति और नाम स्मरण के माहात्म्य को स्पष्ट किया है। भक्ति का सभी प्रकार के भावो मे सर्वोपरि स्थान है। भक्ति मे सम्पूर्ण नाते-रिश्ते बालू की भीति के सदृश ढह जाते हैं। मन्दोदरी रावण की पत्नी है और राम-रावण के शत्रु हैं पर मन्दोदरी प्रच्छन्न रूप से राम की भक्त है और राम के ब्रह्मत्व से भली-भाति अवगत है। वह रावण को राम की शरण मे जाने एव समस्त बैर-भाव समाप्त करने की बारबार सलाह देती है, क्योकि राम ने मारीच, ताडका, खरदूषण के वध, शिव-धनुष भजन से अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय दे दिया है। कोई भी व्यक्ति उनसे विमुख होकर सुफल को प्राप्त नही कर सकता—

रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,
　　भजि सिव चाप सुख सबहि दीन्ह्यौ।
सहस दस चारि खल सहित खरदूषनहि,
　　पठै जमधाम तै तनु न चीन्ह्यौ॥[3]

वे भक्ति-अवगाहिनी सरिता मे अवगाहन करते समय वास्तविकता एवं धर्म-बुद्धि की उपेक्षा करती है। उपरोक्त पद में वे रावण को जो उनका पति है, 'नीच' कह कर सम्बोधन करती हैं। यद्यपि यह भक्ति प्रच्छन्न-रूपिणी है, वे

१. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद स० ३६　　　२. वही, पद सं० ४२
३. कवितावली, लंकाकाण्ड, पद स० १८

स्पष्ट कही पर भी इसका सकेत नही करती है, पर राम परब्रह्म एव उनकी महानता की ओर सकेत अनेक स्थलो पर करती हैं। वे खुल कर कहती है—

> बालि बलि काल्हि जल जान पाषान किय,
> कत ! भगवत तैं तउ न चीन्हे ।[1]

व रावण से आचल फैला कर राम की अपार शक्ति के समक्ष शत्रुता का त्याग करने की भिक्षा माँगती हैं—

> 'आँचर पसारि पिय पाँइ लै लै हौं परी ।[2]

वे आंचल फैला एव रावण के पैर पड कर राम स वैर-त्याग की भिक्षा माँगती हैं जो भारतीय नारी का उच्चादर्श है। कवितावली म इसके अतिरिक्त भक्ति-भावनाओ का कही कोई विशेष चित्रण नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने भरत की भावनाओ को गीतावली म पूर्णरूपण निखार देन के कारण कवितावली मे उनकी आवश्यकता नही समझी अथवा यो कहा जा सकता है कि इसमे भरत की उपेक्षा होने से गीतावली मे उनके विशद रूप का चित्रण कवि को अभीष्ट था।

गीतावली मे मन्दोदरी राम की महानता और शरणागत प्रेम की ओर सकेत करती हुई उसे राम की शरण मे जाने की सलाह देती है। वह कहती हैं—

> चलु मिलु बेगि कुशल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि ।
> तुलसीदास प्रभु सरन शब्द सुनि अभय करहिंगे तोहि ॥[3]

महात्मा सूरदास ने भी मन्दोदरी द्वारा रावण का प्रबोधन और राम की अलौकिक भक्ति का वर्णन कराया है। सूररामायण मे मन्दोदरी के प्रबोधन मे राम का परब्रह्मत्व, महानता, शरणागत-वत्सलता आदि का वर्णन हुआ है। कुछ पक्तियो मे सूरदास ने अधिक मनोवैज्ञानिक एव वैज्ञानिक चित्रण किया है—

> दनुज-दल जर मरिहै धौं कहि रमा ससानी ।
> राम-मार दनुज 'सूर' 'रैनि' सी बिहानी ॥[4]

---

१ कवितावली, लकाकाण्ड, पद स० १९ २ वही, पद स० २७
३ गीतावली, लकाकाण्ड, पद स० १/९
४ सूररामचरितावली, पद स० १२३

आस्था दृष्टिगत होती है। राम की शरण में आये बिना संसार से उद्धार नहीं हो सकता। अतः राम की शरणागति ही श्रेयस्कर है—

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार को और न कछु उपाव ॥[१]

भक्तों ने राम-नाम की महिमा का यथेष्ट गान किया है। राम-नाम के जप में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। धोखे से भी राम-नाम ले लेने पर जीवन परम गति को प्राप्त करता है। रहीम ने भी इसका समर्थन निम्न दोहों में किया है—

रहिमन धोखे भाव से मुख्रते निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥[२]

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपनो जनम गँवायो वादि ॥[३]

राम के चरण के स्पर्श से मुनि-पत्नी अहिल्या का उद्धार हो गया था। गजराज राह चलते अपने मस्तक पर इसलिए धूल डालता है कि उसी से उसका भी उद्धार हो जायेगा—

धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढत गजराज ॥[४]

एक दोहे में रहीम ने रामभक्त हनुमान की वन्दना की है, क्योंकि वे दुष्ट-दानवों तथा सभी प्रकार के दुःखों को नष्ट करने वाले हैं और राम के प्रिय भक्त हैं—

ध्यावहुँ बिपति बिदारन सुवन समीर।
खल दानव बन जारन प्रिय रघुवीर ॥[५]

जीव राम-नाम को हृदय में धारण नहीं करता, वासनाओं में ही बराबर

---

१. अब्दुर्रहीम खानखाना, रहीम काव्य-संग्रह-दोहावली, स० ५१
२. ३. वही, दोहावली, २१३, २५३
४. वही, स० ११६
५. वही, स० ५

लिप्त रहता है। किन्तु जब तक वह राम-नाम का स्मरण और उनकी भक्ति नही करेगा, यमदूतो से छुटकारा नही हो सकता—

रहिमन राम न उर धरैं, रहत विषय लपटाय।
पशु खरखात सवाद सो, गुर गुलियाए खाय ॥[1]
राम-नाम जान्यो नही, भई पूजा मे हानि।
कहि रहीम क्यो मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥[2]

मुसलमान कवि होते हुए भी खानखाना की रचनाओ मे हिन्दू पौराणिक कथाओ और श्रेष्ठ भक्ति-भावना का यथेष्ट परिचय मिलता है, यह कवि के लिए विशेष गौरव की बात है।

स्वामी अग्रदास ने अपने काव्य मे अनेक स्थलो पर भगवान राम के गुणो और माहात्म्य का वर्णन किया है। उनकी कई उक्तियो मे राम-भक्ति-भावना का स्फुट परिचय मिलता है। एक स्थल पर वे ससार को मृगतृष्णा बताते हुए कहते है कि राम-भक्ति के बिना स्वप्न मे भी सुख नहीं मिलता—

मृगतृष्णा ससार, अमरपुर लौं जो धावै।
सीतापति पद विमुख, सुख सपनेहु नहिं पावै ॥[3]

अन्य स्थल पर इसी भावना को व्यक्त करते हुए वे कहते है कि जिस प्रकार बातो के पकवान से किसी की क्षुधा नही मिटती, उसी प्रकार राम-चरण से प्रेम किये बिना कार्य पूरा नही हो सकता—

बातन की पकवान, क्षुधा गत उदर न भरई।
रामचरण दृढ प्रीति, बिना नहिं कारज सरई ॥[4]

भक्त कवि प्रबोधन करते हुए कहता है कि जीव ने परमार्थ से मुख मोड लिया और स्वार्थ-साधन मे ही बराबर लगा रहा, जीवन के लाभ को नही समझा और राम-भक्ति से विमुख रहा—

परमारथ को पीठ, दीठ स्वारथ सो दीन्ही।
जन्म लाभ नहिं लखो, राम की भक्ति न कीन्ही ॥[5]

अन्य स्थल पर कवि कहता है कि राम-नाम का कवच पहन लेने से

१. अब्दुर्रहीम खानखाना : रहीम काव्य-सग्रह, दोहावली, स० २३९
२. वही, स० २५२   ३. श्री अग्र ग्रथावली, प्रथम खड, कुंडलिया, स० २
४. वही, सं० ८   ५. वही, स० १३

अविद्या माया का प्रहार निष्फल होता है और जन्म-मरण के बन्धन से जीव छूट जाता है एवं काम, क्रोध, मद, लोभ आदि उसकी कुछ भी हानि नहीं कर पाते—

राम-नाम कर कवच, अविद्या बान न लागैं ।
काम-क्रोध मद मोह जन्म मरणादिक भागैं ॥[1]

अग्रस्वामी ने राम में ही एकाग्र भक्ति करने का उपदेश किया है । अन्य की उपासना उसी प्रकार है जैसे भुस के ऊपर का लीपना और बालू की दीवाल, क्योंकि इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता—

आन उपासन राम बिन, अग्र सो ऐसी रीति ।
भुस ऊपर को लीपनो, अरु बालू की भीत ॥[2]

भक्त-कवि ने सांसारिक सम्बन्धों को त्याज्य बताया है क्योंकि माता-पिता, भाई, पुत्र, पति, पत्नी, मित्र सभी से एक दिन बिछोह होना है, तब केवल राम-नाम का ही सहारा होगा इसलिए अन्य सम्बन्धों को त्याग कर अभी से राम-चरण में चित्त लगाना श्रेयस्कर है, जिस प्रकार खाट टूटने पर पृथ्वी और हाथ टूटने पर गर्दन की शरण लेनी पड़ती है—

तात मात सुत सखा प्रिया परिजन परिवारो ।
अब सो परो बिछोह, ते दिन हरि नाम सहारो ।
अग्र आसरो आन तजि राम चरण दृढ सीव ।
खटिया टूटे भू शरण भुजा भग्न भे ग्रीव ॥[3]

स्वामी अग्रदास ने अपनी अन्य रचना अष्टयाम में राम और सीता के सम्बन्ध में अपनी विशद भक्ति-भावना प्रदर्शित की है । कवि को अपनी भक्ति पर सन्तोष भी है क्योंकि राम ने अपने हस्ताक्षर से उसकी पुष्टि कर दी है—

हम चाकर रघुनाथ कुँवर के ।
यम के दूत निकट नहिं आवत द्वादश तिलक देखि रघुवर के ।[4]

कवि ने एक पद में सीता और राम की युगल जोडी की भक्ति-भावना की है—

---

१. श्री अग्र ग्रंथावली, प्रथम खंड, कुँडलिया, सं० १५

२. वही, सं० २३

३. वही, सं० ३८

४. वही, सं० १२३

वसो मेरे नैनन मे सियराम।
कल्पवेलि श्री जनकनन्दनी रघुनन्दन घनश्याम।
राजत रतन जडित सिंहासन जुगल जोडि अभिराम।
अग्रअली निरख यह शोभा वारत कोटिन काम ॥[1]

स्वामी अग्रदास ने सीता जी के प्रति अपनी भक्ति-भावना का वर्णन अनेक पदो मे किया है। सीता जी भगवान राम के सदृश ही उसकी उपास्य है। वह उनके चरणो की वन्दना करते हुए कहता है—

सियजू तिहारो चरन, सुर नर मुनि सब करत वन्दन।
तव पद पहुप सुमल करत, नहि तजि जाय नहि जिया की जरन।[2]

शौर्य वर्णन—'वीर रस' प्रधान रसो मे से एक मुख्य रस है। इसका देवता महेन्द्र है और यह सोने के समान गौर वर्ण का माना गया है। वीर का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है। मानसिक वृत्तियो से इसका सम्बन्ध युयुत्सा न माना जा सकता है। इसका आलम्बन–शत्रु, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यज्ञ आदि और उद्दीपन-चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार आदि, अनुभाव–आँखो का लाल होना, भुजाओ या अगो का सचालन, सैन्य को प्रेरित करना आदि हैं। इसके सचारी भाव गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया आदि हैं। वीर रस के चार भेद माने गये है—युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, और धर्म वीर।[3]

ब्रजभाषा मुक्तक राम-काव्य मे अधिकतर युद्धवीर का ही वर्णन हुआ है। तुलसी की मुक्तक रचनाओ मे मुख्यत कवितावली मे वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। रावण के दरबार मे अगद ने अपनी अतुलनीय वीरता का परिचय दिया। वे अपना पैर जब पृथ्वी पर टेक देते हैं तो अनेक योद्धा मिलकर भी उसे टस से मस नही कर पाते। उसके भार से पृथ्वी तल ने धैर्य छोड दिया, शेष नाग भी उस भार को न सह सके।[4] इस वीरता वर्णन मे कवि ने ऊहात्मक ढग का परिचय दिया है, जो ऐसे वर्णन मे विशेष कलापूर्ण जान पडता है।

हनुमान की वीरता का भी सदृश वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने किया है। समुद्र पार करने मे जब कोई समर्थ न हो सका तो जैसे ही हनुमान पर्वत पर

---

१ श्री अग्रस्वामी, अष्टयाम पदावली, पद स० १२६ २ वही, पद स० १२६
३. डॉ० भगीरथ मिश्र : काव्य-शास्त्र, पृ० २५७
४. कवितावली, लकाकाण्ड, छद स० १६

सहमा चढे तो वह पृथ्वी में धसने लगा और पाताल का जल ऊपर आ गया, शेषनाग और कश्यप भी वलहीन हो गये। वे उछलकर समुद्र पार कर जाते हैं—

जब अंगदादिन की मति गति मन्द भई,
पवन के पूत को न कूदि व को पलु गो।[1]

हनुमान जी की वीरता का एक अन्य उद्धरण भी द्रष्टव्य है—

कतहु विटप भूधर उपारि पर सेन वरक्खत।
कतहु बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन कोट चटकन चकोट अरि उर सिर वज्जत।
विकट कटक विछरत, वीर वारिद जिमि गज्जत।
लगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवननदन अटल युद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥[2]

गीतावली मे वीर रस का चित्रण नगण्य है। किन्तु लंकाकाण्ड मे यत्रतत्र कुछ वर्णन हुआ है। लक्ष्मण-शक्ति के अवसरपर हनुमान जी की वीरता सम्बन्धी एक पद द्रष्टव्य है—

तौ चद्रमहि निचोरि चैल ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं।
के पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौ।[3]

हनुमान जी चन्द्रमा से अमृत निचोड़ने, पाताल से अमृत कुण्ड को लाने, सूर्य को समाप्त करने, यहाँ तक कि मृत्यु को भी अन्त करने में अनुपम उत्साह का परिचय देते हैं जो वीर रस का स्थायी भाव है।

कवितावली मे हनुमान की युद्ध-वीरता की सराहना स्वय रामचन्द्र अपने श्रीमुख से करते हैं—

वार-बार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहे रीति सुजान की।
लांबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखो-देखो लखनि लरनि हनुमान की॥[5]

---

१. कवितावली, किष्किन्धाकाण्ड, छंद सं० १ २. वही, लकाकाण्ड, छंद सं० ४७
३ गीतावली, छद स० ८ ४. वही, पद सं० ५७
५. कवितावली, लकाकाण्ड, छद स० ४०

यहाँ हनुमान आलम्बन, उनका हृदयगत उत्साह स्थायी भाव, हाथी, घोडो और योद्धाओ को मारना, रथादि को तोडना आदि अनुभाव, युद्ध मे सेना आदि की स्थिति और तत्सम्बन्धी वातावरण, राम द्वारा प्रशसा आदि का भाव उद्दीपन एव भय आदि सचारी भाव हैं।

कवितावली मे प्राय हनुमान की वीरता का ही सविस्तार वर्णन हुआ है। राम-रावण युद्ध में योद्धाओ की पारस्परिक वीरता का भी यत्र-तत्र उल्लेख है। निम्नलिखित छन्द मे राम की वीरता द्रष्टव्य है—

> राम सरासन ते चले तीर रहे न सरीर, हडावरि फूटी।
> रावन धीर न पीर गनी लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी ॥[१]

राम के बाण इतन वेग से चलते है कि शरीर को वेध कर बाहर निकल जाते हैं। रावण जैसे महावीर की दशा उस समय अत्यन्त दयनीय हो जाती है। रावण का दल, हाथी-घोडो से सज-धज कर रणभूमि मे आता है और उधर वानर-सेना पर्वत-वृक्ष आदि से उन पर प्रहार करती है। घोर युद्ध होता है। रामचन्द्र जी की भयकर मार से वीरो के रुड-मुड मतवालो की तरह चुनलाए हुए नाचते लगते हैं।[२] हनुमान की वीरता अप्रतिम है। वे रावण के बलिष्ठ, काल-स्वरूप राक्षसो को पूछ मे लपेट कर आकाश को लक्ष्य कर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सीमा के ऊपर फेंक देते हैं जहाँ से वह पृथ्वी पर लौट कर नहीं आ सकते। हनुमान की शारीरिक एव आत्मिक शक्ति 'परेषा रक्षणाय' है। वे राक्षसो से युद्ध विश्व के सज्जनो एव महर्षियो के हितार्थ करते हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष तो सीता हरण का विषय है, पर मूलत राम के सेवक मे भी राम की ही भू-भार के उद्धार की भावना निहित है—

> जो दससीस महीधर ईस को बीस भुजा खुलि खेलन हारो।
> लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमे सुनि साहस भारो।
> बीर बडो बिरुदैत बली अजहू, जग जागत जासु पँवारो।
> सो हनुमान हनो मुठिका, गिरियो, गिरिराज ज्यो गाज को मारो।[३]

यहाँ सुवीरता की विजय और उन्नति दिखायी गयी है एव दुर्वीरता की पराजय। रावण दुष्टता का प्रतीक है। अत उसका वीरत्व पराजय के योग्य

---

१. कवितावली, लकाकाण्ड, छद स० ५१ २. वही, छद स० ३१
३. वही, छद स० ३८

सर बरषत, गुन को न करषत मानौं,
हिय हरषत, युद्ध करत बखान कों।[1]

सेनापति ने हनुमान और अंगद की वीरता का भी वर्णन प्रभावशाली ढंग से किया है। अन्य मुक्तककारों मे स्वामी अग्रदास, नाभादास आदि की रचनाओ मे वीरभाव विषयक स्थलो का अभाव है। राम की भक्ति ही उन्हे अभीष्ट थी, इसलिए अन्य भावो की ओर सम्भवतः उनका ध्यान नहीं गया।

बीभत्स-वर्णन—बीभत्स रस का स्थायीभाव-जुगुप्सा अथवा घृणा है। इसके देवता महाकाल और उनका रग नील वर्ण का माना गया है। इस रस का आलबन फूहड़पन, रुधिर, मास, सड़ीगली तथा दुर्गन्धमय वस्तुएँ हैं। इस प्रकार की वस्तुओ की चर्चा करना, देखना आदि उद्दीपन है। थूकना, मुंह फेरना, नाक सिकोड़ना, कम्प आदि अनुभाव तथा भय, आवेग, व्याधि आदि सचारी भाव हैं।[2] युद्धादि अवसरो पर ही बीभत्स रस की निष्पत्ति विशेषतया हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास की मुक्तक रचनाओ मे से केवल कवितावली मे ही बीभत्स रस के कुछ छन्द मिलते हैं। दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। योगिनियाँ कंधे पर मरे हुए वीरो की ओझरी लटकाये हुए, आँतों के गंडे बाँधे हुए, शिरो के कमण्डल लिये हुए शोभायमान है। खून मे नहायी हुई गुद्दी को खून मे सत्तू की तरह सान कर खा रही है—

ओझरी की झोरी कांधे, आंतनि की सेल्ही बांधे,
मूड के कमडलु, खपर किये कोरि के।
जोगिनी झुड-झुड बनी तापसी सी,
तीर-तीर बैठी सो समर सरि खौरि के।[3]

उक्त छंद में बीभत्स का सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। यहाँ युद्ध की समाप्ति पर रण-स्थल आलबन, मज्जा-मास, रुधिर आदि उद्दीपन और जुगुप्सा (घृणा) स्थायी भाव है। एक दूसरा उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ-तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित-सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूह बालि बिटप परत हैं।[4]

---

१. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छंद स० ५८
२. डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० २६३
३. कवितावली, लंकाकाण्ड, छंद सं० ५०   ४. वही, छंद सं० ४९

इसमें रुधिर का बहना, मृतक शरीर आलंबन हैं, मृतक शरीर के अगादि उदर को फाड़कर खाना, कौवे चीलों का कोलाहल करना आदि उद्दीपन हैं, ग्लानि संचारी भाव और जुगुप्सा स्थायी भाव है।

सूर-रामायण में एक स्थल पर वीभत्स का वर्णन हुआ है। रामचन्द्रजी ने रावण के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसके कहीं हाथ, कहीं धड़ और कहीं सिर खून में सने हुए लोट रहे हैं जिनको देखने से ग्लानि होती है—

> तोरयो कोपि प्रबल गढ़, रावन टूकि-टूकि कर डारयौ।
> कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत, मानौ मद मतवारौ।
> भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन नाहीं परत निहारौ॥[1]

यहाँ रावण की कटी हुई भुजा, धड़, सिर आदि का खून में सना हुआ तड़फना आदि आलंबन है।

सेनापति ने राम-कथा में वीभत्स का वर्णन प्रायः नहीं किया है। एक स्थल पर 'नाचे हैं कबन्ध माचे महा घमसान के'[2] का वर्णन किया है। अन्य मुक्तक-कारों ने वीभत्स का कोई वर्णन नहीं किया है।

अन्य मुक्तककारों में सूरदास के भयानक रस का वर्णन द्रष्टव्य है। हनुमान द्वारा सीता की सूचना पाकर जब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, नल, नील सभी समुद्र-तट की ओर दौड़ पड़ते हैं तो उसके भय से पृथ्वी डगमगाने लगती है, शेषनाग भी काँपने लगते हैं, सूर्य का तेज भी मन्द हो जाता है और लंका में खलबली मच जाती है—

> सीय सुधि सुनत रघुबीर धाए।
> चले तब लखन, सुग्रीव, अंगद, हनू, जामवन्त, नल-नील सबै आए।
> भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहसफन सेस कौ सीस काँप्यो।
> कटक अगिनित जुरयो, लंक खरभर परयो सूर को तेज घर धूरि ढाँप्यो।
> जलधि तट आइ रघुराइ ठाढ़े भए, रिच्छ कपि गरजि कै धुनि सुनायौ।
> सूर रघुराइ चितए हनुमान दिसि, आइ तिन तुरतही सीस नायौ॥[3]

सेनापति ने सेतुबन्ध के अवसर पर राम द्वारा अग्निबाण के व्यापक प्रभाव

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० १८२
२ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ३७
३ सूररामचरितावली, पद सं० ११०

पंचम अध्याय

मुक्तक रामकाव्यों में वाह्य दृश्य-चित्रण एवं कला-सौंदर्य

काव्य के कलापक्ष से तात्पर्य उसके अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। प्रत्येक कवि अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के लिए अनेक उपकरणों का आश्रय लेता है और इन उपकरणो द्वारा कलात्मक ढग से उमको प्रभावशाली बनाने की चेष्टा करता है। इसलिए यह कहना उचित ही है कि भावपक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कलापक्ष उसका शरीर है। कवि में भाव-प्रवणता एवं भावुकता अपेक्षित गुण है। भावप्रवणता तभी सार्थक होती है जब उसकी सफल और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हो। वस्तुतः अभिव्यक्ति पक्ष को ही कलापक्ष की सज्ञा दी गयी है। अभिव्यक्ति पक्ष की विशिष्टताओं का बोध कवि की वर्णन-शैली, काव्य में व्यवहृत भाषा, शब्द-प्रयोग, अलकार, छंद, गुण आदि से होता है।

प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ मे आलोच्य कवियो के वाह्य दृश्य चित्रण की सामर्थ्य का विवेचन किया गया है। ये चित्रण अधिक सशक्त और प्रभावी तभी हो पाते हैं जब इनके अंकन मे रचनाकार कलात्मकता का सफल निर्वाह करता है। कलात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत अलंकार विधान, छंद योजना और भाषा शैली को विशेष रूप से रखा जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे एक ओर तो कवियों की चित्रण-शक्ति का परिचय दिया गया है और दूसरी ओर इसमे सहायक कलात्मक तत्वो-छन्द, अलकार और भाषा का विवेचन भी किया गया है। इस प्रकार वाह्य दृश्य चित्रण और कलात्मक सौन्दर्य के पारस्परिक अविभाज्य सम्बन्ध को प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस अध्याय मे किया गया है।

वाह्य दृश्य-वर्णन—भक्तियुगीन व्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य मे वाह्य दृश्य के अन्तर्गत नगर, नदी आदि तथा प्रकृति के वर्णन ही विशेष रूप से मिलते हैं। रामभक्त कवियो में अयोध्या का विशेष माहात्म्य है, इसलिए इस नगरी की शोभा के कुछ वर्णन यत्र-तत्र मिल जाते है।

गोस्वामी तुलसीदास ने गीतावली मे राम-जन्म के अवसर पर कोशलपुर की शोभा का सुन्दर वर्णन किया है। अयोध्या के घर-घर में 'मंगल मनाया जा रहा है। नगर में जगह-जगह नगाड़े बजाये जा रहे हैं। देवता, किन्नर, मुनिजन

अपने-अपन यान सजाकर आये हैं। आकाश मे अप्सराएं प्रसन्नचित्त होकर नृत्य कर रही हैं और सुमनाजलि की वर्षा हो रही है।[1]

अयोध्या मे घर-घर वधावा हो रहा है, मगल का साज सज रहा है। सुहावने सगुन हो रहे हैं। नगर के नर-नारी अपने कार्यों को सजाते हैं और अगनित रचनाएँ करते हैं। घर, आगन, अटारी, बाजार और गलियो म अनेक सुन्दर चौक पूरे गये हैं। चंवर, पताका, मडप, तोरण, कलश और दीपावली से सजी हुई शोभामयी अयोध्यापुरी को मानो विधाता की सुमति रूपी जननी ने उत्पन्न किया है।[2] सूरदास ने भी राम-जन्म के अवसर पर 'अयोध्या बाजति आजु बधाइ'[3] का गान किया है। अग्रदास जी ने ध्यान-मजरी मे अयोध्या की शोभा और माहात्म्य का सुन्दर वर्णन किया है। अयोध्या की शोभा को देखकर सूर्य का रथ भी रुक जाता है, देवतागण पुष्पो की वर्षा करते हैं। वह वर को देन वाली और पापो को नष्ट करने वाली है—

> अवध पुरिन की अवधि यही श्रुति सस्मृति वरणी।
> ध्यान घरे सुख करनि नाम उचरत अघ हरणी।[4]

अग्रदास ने सरयू के प्राकृतिक और धार्मिक महत्व का भी वर्णन किया है—

> निकटहि सरयू सरित धरे अस उज्ज्वल धारा।
> भवसागर को तरण विदित यह पोत उदारा।
> हरण पाप त्रयताप जनन चिंतित फलदेनी।
> सुकृती जन आरोह सुदृढ बैंकुठ निसैनी॥[5]

सरयू की धारा अत्यन्त उज्ज्वल है और ससार रूपी सागर से तरने के लिए यह जहाज सदृश है। यह दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो ताप और पापो का हरण करने वाली और पुण्य फल देने वाली है। सुकृती पुरुषो को वैकुठ मे जाने के लिए सुदृढ सीढी है। अग्रदास जी की 'अष्टयामपदावली' मे अयोध्या माहात्म्य का वर्णन द्रष्टव्य है। सरयू समस्त नदियो मे और राम की पुरी अयोध्या सब नगरियो मे श्रेष्ठ है। वेदो ने इसकी महिमा का विशद गान किया है। शिव,

---

१ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ३/१-२
२ वही, पद स० ५
३ सूर-रामचरितावली, पद स० ३
४ ध्यानमजरी, अग्रदास, छद स० ८, १२
५ वही, छद स० १८, १९

ब्रह्मा, सनकादिक, नारद, व्यास इसका प्रत्येक घडी जाप करते हैं। यह पापों को नष्ट करने वाली है। अयोध्या मे जो रहते हैं उनकी समता कोई नही कर सकता—

मरजू सरिता राज सदन ते पुरी शिरोमणि रामपुरी।
वेदनहू वहु भेदन गाई महिमा जाकी अधर धरी।
शिव विरंचि सनकादिक नारद जपत व्यास जेहि घरी-घरी।
नाम उचार होत अघ न्यारे जीव न दुरमति दूर टरी।
जो कोउ बसत अयोध्या माही समसर ताहि न जात करी॥[1]

लंका-दहन—तुलसीदास के काव्य मे भाव-निरूपण का विशेष महत्व है किन्तु उन्हे जहाँ अवसर मिला है वहाँ वाह्य दृश्य-चित्रण भी किया है। उन्होने कवितावली मे लकादहन का अत्यन्त यथार्थ, सजीव और चिताकर्षक वर्णन किया है। इस सम्बन्ध मे लाला भगवानदीन का कथन द्रष्टव्य है—सम्पूर्ण ग्रंथ में सुन्दरकाण्ड ही सबसे उत्कृष्ट है। इसमे तुलसीदास जी ने एक से एक अच्छे रूपकों की सहायता से लकादहन का बडा अनोखा वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुलसीदास ने किसी गाँव मे आग लगने का दृश्य देखा होगा और उसी के आधार पर लकादहन का वर्णन किया होगा। कुछ भी हो इससे तुलसीदास की प्रतिभा, प्रकृति निरीक्षण और अनुभव का पता अच्छी तरह से चल जाता है।"[2]

उनकी वर्णन शैली की विशेषता इस वर्णन में पूर्णतया परिलक्षित होती है। हनुमान जी जब अपनी जलती हुई पूँछ फिराकर बार-बार झटकाते हैं तो आग की चिनगारियाँ बूँदियो की तरह झडती हैं मानो सोने की लका को पिघला कर उसे पाग मे डुबाया जा रहा हो। अग्निदाह से सब राक्षसी व्याकुल होकर कहती हैं कि अब तो भूलकर भी कोइ राक्षस चित्र के बन्दर से भी छेड़छाड न करेगा।[3]

लका मे आग लगने पर वहाँ के सभी नर-नारी इधर-उधर भागने लगे। माता न अपनी पुत्री को और पिता न अपने पुत्र को सभाल पाते थे। बाल बिखर गये, वस्त्र खुल गए, धुए के धुधकार से सब अधे हो रहे थे। बालक से बूढ़े तक सब बारबार पानी-पानी चिल्लाते थे। घोडे हिनहिनाते हुए भागने और हाथी

१. अष्टयाम-पदावली, अग्रदास, पद सं० १२५
२. कवितावली, सं० ला० भगवानदीन, भूमिका, पृ० ५
३ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छन्द सं० १४

चिघारने लगे। भारी भीड को बलपूर्वक ठेल कर उन्होने अपने पैरो से सबको कुचल दिया। सब एक दूसरे का नाम लेकर चिल्लाते हैं और अत्यधिक घबडाकर पुकारते हैं कि हे तात, हम प्यासे हैं, हम जले जाते हैं—

हय हिनहिनात भाग जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पलि रौंदि खौंदि डारही।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति,
तात तात ! तौसियत, झौंसियत झारही ॥[1]

उक्त छद में गोस्वामी जी ने अग्निदहन के प्रभावो की सूक्ष्मता का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। विपत्तिजनक स्थिति मे प्रत्येक प्राणी अपने को बचाने के लिए सभी प्रकार के सम्बन्धो का प्राय भुला देता है और किसी प्रकार से केवल अपने को सुरक्षित करना चाहता है।

इस सम्बन्ध म प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन द्रष्टव्य है—"कविनावली मे प्रकीर्ण होने के कारण दृश्य चित्रण के अवसर कम आए है। इस पुस्तक म भाव निरूपण ही विषय है। लग हाथो कही अवसर मिल जाने पर दृश्य-चित्रण भी कर डाला गया है। चित्रण म अश्लिष्ट योजना बहुत कम है। अधिकाश म सश्लिष्ट योजना का ही सहारा लिया गया है। भीषण-अग्नि का वर्णन कवि ने बडे विस्तार से किया है। इसका कारण यह था कि उन्होंने हनुमानधारा (चित्रकूट) मे भयकर दावाग्नि का प्रलयकर रूप देखा था।"[2]

प्रकृति-चित्रण—मुक्तक राम-काव्य म प्रकृति के विविध रूपो के वर्णन मिलत है। मुख्यता प्राकृतिक चित्रण आलबन और उद्दीपन दो रूपो म हुआ है। प्रकृति का आलबन अथवा स्वतत्र रूप का वर्णन उद्दीपन रूप की अपेक्षा कम मिलता है। हिन्दी काव्य मे प्राय उद्दीपन रूप के ही उदाहरण अधिकतर मिलत है और आलोच्य कवियो की रचनाए इसकी अपवाद नही है। प्रकृति के विविध रूपो पर मानव भावनाओ का आरोपण हुआ है। मनुष्य की आनन्दानुभूति म वह प्रसन्न और दुखानुभूति मे पीडित दिखाई पडती है।

आलोच्य कवियो मे तुलसीदास, सूरदास, अग्रदास, नाभादास, सेनापति आदि कवियो न अपनी रचनाओ मे प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही प्राय वर्णन किया है। आलवन-रूप के उदाहरण केवल दो-एक स्थलो पर ही मिलत है।

१ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छद स० १५

२ कवितावली, स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, अतर्दर्शन, पृ० ३५-३६

कोपलें उत्पन्न हो रही हैं। उसका राजसिंहासन पर्वत की सुन्दर शिला है, वन की शोभा रति है, मृगगण कुटुम्बी है, पुष्प श्वेतछत्र हैं, लताएँ वितान हैं, वायु चवर है और झरने नौबत है। ऐसा जान पड़ता है मानो क्षेत्र और वैशाख दोनो धीर वीर सेनापति हैं, सुन्दर वृक्ष दृढप्रतिज्ञ वीर हैं। भौंरे, शुक, कोकिल, पक्षी बदीजन है जो गा-गाकर यश का बखान करते हैं। पृथ्वी पर जो फूलो के रस, पराग, फल आदि गिरते हैं वे मानो अय सामन्तगण उन्हें कर देते हैं।[1]

गोस्वामी तुलसीदास ने वर्षा ऋतु का वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर ढग से किया है। गिरि-शिखरो पर मेघ इस प्रकार से शोभायमान हैं मानो देवता और मुनिवर रूपी भ्रमरो से सेवित आदि कमल विराजमान हो। बगुलो की पक्ति शिखर को छूकर काली घटा से जब मिलती है तो मानो आदि वाराह समुद्र मे क्रीड़ाकर दाँतों पर पृथ्वी धारण कर बाहर निकले हो। जल से भरी हुई स्वच्छ शिलाओ मे आकाश और वन का प्रतिविम्ब ऐसा झलकता है जैसे विराट भगवान के अग-प्रत्यग मे ससार की विचित्र रचना प्रतिफलित हो रही है। स्वच्छ जल से भरे झरने झर-झर कर गगा मे मिलते है, जैसे सारे सुकृत और सुख एकमात्र रामभक्ति के पीछे लगे हुए है।[2]

सीता-हरण के अनतर राम की वियोगावस्था मे प्रकृति भी अत्यन्त दुखी है। नदियो का जल मैला, तालाबो मे कमल सूखे हुए, भँवर गुजार रहित और हंस शब्दहीन दिखायी पड़ते हैं। सीता ने जिन वृक्षों को लगाया था, वे रसीले फल नही देते–जिन सिंह, हाथी, वानरो का पालन-पोषण किया था, वे हुकार नहीं भरते।[3]

सीता के वियोग में और राम की दुखावस्था के कारण आश्रम के वृक्ष फूलते-फलते नही हैं। भौंरे, पक्षी, मृग सभी मौन हैं, पर्णकुटी उजडी सी दिखायी पडती है, राम 'अपने आश्रम' की यह दशा देखकर उसे पहचान नही पाते।[4]

सीताहरण के बाद राम वियोगावस्था के कारण अत्यधिक पीड़ित हैं और जब वे प्रकृति के विविध उपकरणो मे सीता की रूप-माधुरी का अवलोकन करते हैं तो उन्हें ऐसा जान पडता है कि उन सब ने सीता के अग-प्रत्यग के रूप-सौन्दर्य का हरण कर लिया है—

---

१. वही, पद सं० ४९
२. वही, पद स० ५०
३. वही, अरण्यकाण्ड, पद स० ९
४. वही, अरण्यकाण्ड, पद सं० १०/१

सुनौ अनुज इहि बन इतननि मिलि जानकि प्रिय हरी।
कुछ इक अगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जानि न गुप्त करी।
चपक बरन, चरनकर कमलनि, दाडिम दसन लरी।
गनि मराल अरु बिंब अधर छवि अहि अनूप कबरी।[1]

सिंह ने सीता का सौन्दर्य, कोयल ने सुन्दर वाणी, चन्द्रमा न मुख सौंदर्य मृग ने नेत्रो की शोभा, चपक ने वर्ण को, कमलो ने हाथ-पैर का सौंदर्य, दाडिम ने दातो की शोभा, हस ने चाल को और बिबाफल ने अधर की छवि तथा सूर्य ने काली चोटी की शोभा ले ली है। प्राकृतिक उपकरणो पर स्त्री-सौंदर्य के आरोपण द्वारा प्रकृति के उद्दीपन रूप का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रिय-विरह मे व्यक्ति की अपनी चेतना समाप्त हो जाती है। राम की भी यही स्थिति है। वे अपनी महिमा को भूल कर वन के वृक्ष, पुष्प, लता, पशु पक्षी आदि से सीता का पता पूछते हैं—उनकी इस दु खावस्था मे प्रकृति भी सहायक बन गयी है। उन्हे वह बन्धु-बाधव सी प्रतीत होती है—

फिरत प्रभु पूछत वन द्रुम बेली।
अहो बंधु, काहू अवलोकी इहि मग बधू अकेली।[2]

अग्रस्वामी ने 'ध्यान मजरी' और अष्टयाम-पदावली मे कतिपय सुन्दर प्राकृतिक दृश्य प्रस्तुत किए है। 'ध्यान मजरी' मे अयोध्या के वर्णन म कवि की दृष्टि प्राकृतिक छटा की ओर भी गयी है। कुएँ, तालाब, सरोवर की सीढियाँ रत्नो से जडी है, तालाब मे कमल खिले है, वृक्षो की शीतल छाया मे पक्षी कूजते है। चारो ओर बगीचे और उपवन शोभायमान है। अशोक वृक्ष शोक का हरण करते हैं। वन अनेक प्रकार के वृक्षो से सुशोभित हैं। वृक्ष, फल-फूल से लदे हुए है जिनको देखकर मन की सुधि नही रहती।[3] अग्रदास ने रास-क्रीडा के वर्णन मे भी प्राकृतिक छटा का मनोहारी वर्णन किया है। शरद पूर्णिमा के दिन चन्द्र की श्वेत चाँदनी मे आनन्द-कन्द रामचन्द्र ने रास-क्रीडा की रचना की जिसे देखने सखियाँ दौड कर आ गयी। सरयूतट पर अनेक प्रकार के रग-बिरगे पुष्प-कमल, चम्पा, केसरी, कदब आदि की सुगन्ध फैल रही है।

---

१. सूररामचरितावली, पद स० ५३ २. वही, पद स० ५४
३ अग्रदास, ध्यानमंजरी, छद, स० १४, १५, २६, २७

मोरिका, मयूर, कोयल, कीर, मधुर शब्द कर रहे हैं। भौंरे गुंजार रहे हैं, राग-रागनियों का गायन हो रहा है जिसको सुनकर अप्सरा, किन्नर भी मूर्च्छित हो जाते हैं और वह आकाश, पृथ्वी, चर-अचर सब मे व्याप्त हो रहा है—

शरद पूर्ण विमल चन्द बिमल महि अनन्द कन्द
रामचन्द्र रास रचौ देखन सखि आई।
किन्नरि अपसरा गान मूर्छन स्वर ताल तान,
धरसि भूमि तरुतन ततन नीर गगन छाई॥[1]

सरयू के किनारे अशोक-वन मे आयोजित रास-क्रीडा के संदर्भ मे प्राकृतिक शोभा का सजीव वर्णन हुआ है। विविध प्रकार के कुंज, चारो ओर वृक्षों की पंक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती है। चारो ओर फूलो के गमले सजे हुए हैं जिससे वहाँ के वातावरण की शोभा अत्यधिक बढ गयी है। प्रकृति वर्णन संबन्धी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

श्री सरयू तट बन अशोक मधि राग रच्यो श्री अवधबिहारी।
चहुँ दिसि मणिमय कोट विराजै मध्य कुंज बहु न्यारी-न्यारी॥[2]

अग्रदास ने अन्य प्रसगो मे भी प्राकृतिक दृश्यो का मनोरम वर्णन किया है। कवि के निम्न पद में भी प्रकृति का उद्दीपन रूप द्रष्टव्य है। राम और सीता वर्षाऋतु मे परस्पर एक दूसरे को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देख रहे है। पुरवैया हवा बह रही है, नन्ही-नन्ही बूँदे बरस रही हैं। सारी पृथ्वी हरी-भरी हो गयी है। सरयू मे हिलोरें उठ रही हैं। उपवन-बाग मे दादुर, मोर चकोर, शब्द कर रहे है—

दशरथ सुत अरु जनकनन्दनी चितवनि मे चित चोरे री।
नान्हि-नान्हि बुन्द पवन पुरवैया बरपत थोरे-थोरे री।
हरि-हरि भूमि घटा झुकि आई सरयू लेत हिलोरे री।
उपवन बाग बिहगम बोले दादुर मोर चकोरे री॥[3]

नाभादास ने एक स्थल पर राम-सीता के शयन-कुंज का सुन्दर वर्णन किया है। उसकी सुन्दरता को देखकर स्वय ऋतुपति बसत भी आकृष्ट हो जाता है। वहाँ रंग-बिरंगे फूल और छोटे-छोटे वृक्षो की शोभा दर्शनीय है। इस कुंज का प्रत्येक मंदिर षट्-ऋतुओ के अनुकूल विहार की सौज-सामग्री से सुशोभित है, जहाँ पर नित्य राम और सीता रमण करते है—

१. अष्टयाम पदावली, पद स० ४३
२. वही, पद सं० ४८
३. वही, पद, सं० ८१

सो आराम भवन सुठि सोहा। जो बिलोकि ऋतुपति मन मोहा॥
रग-रग के फूल सुहाये। लघु तरु ललित सरल छबि छाये॥
षट ऋतु प्रति मदिर सुखदायक। जहँ नित रमत सिया रघुनायक॥[1]

सेनापति ने प्रकृति के आलम्बन का कहीं कोई विशेष चित्रण नहीं किया है। उद्दीपन रूप के कुछ वर्णन मिलते हैं। प० उमाशकर शुक्ल का कथन है—प्रचलित परम्परा के अनुसार सेनापति ने भी प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में ही किया है। उनके बारहमासे के अधिकांश कवित्त उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखे गये हैं। किन्तु उनकी ऋतु सम्बन्धी रचना को भली प्रकार देखने से यह विदित होता है कि प्रकृति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था, यद्यपि परम्परा तथा साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण वह बहुत सकुचित दिखायी पडता है।"[2] सेनापति की रामकथा केवल चौथे तरग में वर्णित है जिसमें उन्हें रम्य प्रकृति वर्णन के विशेष अवसर नहीं मिल सके। प्रकृति के भयावह रूप का वर्णन ही इस तरग में हुआ है।

समुद्र पर राम के अग्निबाण के व्यापक प्रभाव का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन अवश्य द्रष्टव्य है। बाण के प्रभावस्वरूप समुद्र का जल खौलने लगता है, सूर्य उछल जाता है, सारा जल उछलने लगता है, मच्छ कछुए भी उछलने लगते हैं। इस दशा को देखकर शेषनाग का हृदय काँप जाता है, पर्वत की शिलाएँ चिटकने लगती हैं—

चुरइ सलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि जल झपिय।
मच्छ कच्छ उच्छरिय, पछिल्ल अहिपति उर कपिय।
लपटि लग्गि उच्छरत, चटकि फुट्टत नग पत्थर।
सेनापति जय सद्द, बिरद, बोलत बिद्याधर॥[3]

यहाँ पर प्रकृति के भयावह रूप का सफल चित्रण हुआ है। सेनापति ने इसी प्रकार रावण की रौद्रावस्था के फलस्वरूप प्रकृति के विविध उपकरणों पर उसके भयकारी प्रभाव का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। जब वह साध कर युद्ध के लिए प्रयाण करता है तो अग्नि दहलने लगती है, पवन का बहना रुक जाता है। चन्द्र और सूर्य का तेज बिलकुल फीका पड जाता है। मानो सागर का

---

१ नाभादास, अष्टयाम, छद स० २७९, २८१
२ कवित्तरत्नाकर, स० प० उमाशकर शुक्ल, भूमिका, पृ० २९
३ सेनापति, कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ४४

गर्जन बन्द हो जाता है और मछलियाँ भयभीत होकर नदी और तालाबों के भीतर छिप जाती है।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामभक्त मुक्तककारो ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन यथास्थान भावोद्दीपन के लिए ही विशेषतः किया है। केवल कुछ ही स्थल हैं जहाँ पर प्रकृति के आलबन रूप का वर्णन हुआ है। प्रकृति-चित्रण की विविधता उनमे नही मिलती, किन्तु उनके वर्णनों मे सौन्दर्य-प्रियता के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं।

आलोच्य मुक्तककाव्य में भाषा-प्रयोग—काव्यकला की अभिव्यक्ति भाषा की समृद्धि पर आधारित होती है, इसलिए श्रेष्ठ कलाकार अपनी कृतियों मे सफल भावप्रकाशन के लिए उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग आवश्यक मानता है। भाषा के प्रत्येक शब्द पर उसकी दृष्टि रहती है। सही शब्द-प्रयोग द्वारा उसकी वाक्य-प्रेषणीयता अत्यधिक बढ जाती है। डॉ० हरवंशलाल शर्मा के शब्दो मे "कवि के हाथो मे पड़कर शब्द में एक विशेष योग्यता आ जाती है और वह अर्थ विशेष का वाहक बन जाता है। वास्तव मे शब्द का मूल्य भी अनुभूति पर आधारित है। इसीलिए एक ही शब्द की व्यंजकता भिन्न-भिन्न कवियों की रचना मे विविध रूप में परिलक्षित होती है। कविता के लिए भाषा के श्रोतव्य और दृश्यमान् दोनो ही चिह्न अपेक्षित हैं। श्रोतव्य से कविता मे गति, लय, वेग, कोमलता आदि गुण आते हैं और इसलिए साहित्यशास्त्र मे जहाँ एक ओर छदों को महत्व दिया गया है, वहाँ दूसरी ओर माधुर्य, ओज और प्रभाव–तीनो गुणो के लिए पृथक-पृथक अक्षर और शब्द निर्दिष्ट किए गए है। भाषा के दृश्यमान् चिह्न से चक्षु-इन्द्रिय के माध्यम से भावो को हृदय तक पहुँचाया जाता है।"[२] अतएव स्पष्ट है कि काव्य-सर्जना मे भाषा का भी विशेष महत्त्व है।

आलोच्य कवियो की अधिकाश रचनाओ मे ब्रजभाषा का साहित्यिक, परिष्कृत और प्राजल रूप मिलता है। केवल कुछ ही ऐसी रचनाएँ हैं जिनकी भाषा अधिक परिनिष्ठित नही कही जा सकती। सूरदास, तुलसीदास, सेनापति आदि की काव्य-भाषा पहले कोटि की और अग्रदास, नाभादास आदि कवियों की भाषा दूसरे कोटि की है। सूरदास की ब्रजभाषा मे संगीतात्मकता और सजीवता के लक्षण भी स्पष्ट रूप मे मिलते हैं। सूरदास के पूर्व ब्रजभाषा के परिष्कृत और परिमार्जित रूप का विशेष परिचय प्राप्त नही होता। सर्वप्रथम सूर के काव्य में

१. कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, छंद सं० ५७

२. डॉ० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य, पृ० ३०७

ही ब्रजभाषा का इतना सुनियोजित और उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है। सूर की भाषा मे तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। किन्तु उन्होंने शब्दो को तोडा-मरोडा भी है और उनके व्याकरणिक प्रयोगो मे भी कुछ शिथिलता है इसलिए विद्वानो की सम्मति मे सूर की भाषा शुद्ध परिमार्जित भाषा नही कही जा सकती। यह अवश्य है कि सूर ने चलती हुई ब्रजभाषा को व्यापक और प्रभावशाली बनाने का अत्यन्त स्पृहणीय कार्य किया। डॉ० हरवशलाल शर्मा के शब्दो मे "सस्कृत के तत्सम शब्दो मे यह बात लक्ष्य करने की है कि उन्होने उन शब्दो को ब्रजभाषा की ध्वनि के अनुकूल ही बना दिया है। सस्कृत के कर्णकटु शब्दो मे ब्रजभाषा के उच्चारण के आधार पर यत्किंचित् परिवर्तन कर उनमे उन्होने माधुर्य लाने का प्रयास किया है।"[1] सूर की एक विशेषता यह भी है कि उन्होने प्रसगानुसार और पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। दार्शनिक एव सैद्धान्तिक प्रसगो की भाषा अधिक सयत, गभीर और तत्समप्रधान है, सामान्य वर्णना की भाषा सरल, व्यावहारिक और तद्भवप्रधान है। यहाँ पर उनकी शैली भी सुगम और आडबर-हीन है। किन्तु सूरदास की भाषा मे सवत्र प्रौढता, प्रवाहमयता और आलकारिता के गुण प्रधान रूप से मिलते हैं। शब्द-चयन मे पद मैत्री, ध्वनिसाम्य और विषय का सम्यक् निर्वाह हुआ है। सूरदास ने अपनी भाषा-शैली को अलकृत करने का कोई कृत्रिम प्रयास नही किया है, वरन् भावो के सुगम प्रकाशन के साथ अलकार स्वत ही आ गए हैं। उनकी भाषा शैली भावो की सूक्ष्म, तीव्र और सघन अभिव्यक्ति मे पूर्ण सक्षम है। समग्र रूप मे कहा जा सकता है कि सूरदास की भाषा साहित्यिक और परिनिष्ठित है। सूरदास की शब्दावली मे तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी एव हिन्दी की अन्यान्य बोलियो के शब्द तथा मुहावरे आदि बराबर प्रयुक्त मिलते हैं जिनके उदाहरण आलोच्य रचनाओ के भाषागत तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत दिए गए हैं।

सूरदास के अनन्तर ब्रजभाषा के और अधिक परिनिष्ठीकरण का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को है। उन्होंने साहित्यिक और सस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा मे कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्ट मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत कर उसका और अधिक परिष्कार और परिमार्जन किया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के भावो की अभिव्यक्ति सशक्त भाषा-शैली मे की है और भाषा का प्रसगानुकूल प्रयोग किया है। शृगारपरक वर्णनो मे कोमलकांत पदावली का प्रयोग हुआ है,

---

१ डॉ० हरवशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य, पृ० ३०७

दार्शनिक और सैद्धान्तिक विवेचन में भाषा के संस्कृतनिष्ठ, गभीर और सयत रूप का प्रयोग किया गया है। वाह्य दृश्य वर्णनों की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और तद्भवयुक्त है। तुलसी की काव्य-भाषा गुण, वृत्ति और रीति के अनुरूप व्यवहृत मिलती है जिसके कारण वह अत्यधिक प्रभावशाली है।

तुलसीदास की भाषा चलताऊ और सरल ब्रजभाषा नहीं है वरन् संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक ब्रजभाषा है यद्यपि उनकी भाषा मे अन्य प्रादेशिक भाषाओं के शब्द भी बराबर प्रयुक्त हुए हैं जिनको उन्होने काफी तोडा-मरोडा है। तुलसीदास की भाषा के सम्बन्ध मे निम्नलिखित उक्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है—

तुलसी गग दुवौ भये सुकविन्ह के सरदार।
जिनके काव्यन मे मिली भाषा विविध प्रकार॥[1]

इस कथन से स्पष्ट है कि भाषा का एक विशिष्ट गुण विविध भाषाओ की शब्दावली का प्रयोग है। तुलसी ने ब्रजभाषा मे फारसी, अरबी, अवधी, बुंदेली, राजस्थानी आदि के अनेकानेक शब्दो का प्रयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। आवश्यकतानुसार उन्होने इन शब्दों को ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप बना लिया है।

तुलसी की भाषा मे संस्कृत की सामासिक शैली का रूप भी विशेषतया विनयपत्रिका मे दिखायी देता है। संस्कृत के पद और संधि-रूप कई स्थलो पर प्रयुक्त मिलते है किन्तु ऐसे स्थल कम ही है। इसमे संदेह नही कि इन स्थलो की भाषा कठिन हो गयी है। विनयपत्रिका तथा अन्य ब्रजभाषा मुक्तक रचनाओ में तद्भव शब्दावली का ही व्यापक प्रयोग हुआ है किन्तु बीच-बीच मे संस्कृत शब्द और समस्त पदावली के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं जिनसे उनके भाषा-पाण्डित्य का बोध होता है। समग्र रूप में हम कह सकते हैं कि तुलसीदास का ब्रजभाषा और अवधी भाषा दोनो पर समान अधिकार था। उनकी भाषा-शैली इतनी सरल और भावव्यंजक है कि सभी स्तर के लोग उसे किंचित् प्रयास के बिना ही समझ लेते हैं, यही तुलसी की भाषा की सबसे बडी सफलता और विशेषता है।

पहले कहा जा चुका है कि ब्रजभाषा केवल मुक्तक रचनाओ के लिए ही अधिक उपयुक्त भाषा थी जिसका मार्ग-निर्दशन सूरदास ने कर दिया था। तुलसीदास दूरदर्शी भक्त कवि थे और उनमे समन्वयकारी भावना अत्यन्त प्रबल थी। इसी कारण उन्होने विविध काव्य-शैलियों के साथ कवित्त, सवैया और

१. आचार्य भिखारीदास : काव्यनिर्णय, पृ० ६

गीति सम्बन्धी काव्य-शैलियों मे ब्रजभाषा का प्रयोग करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। ब्रजभाषा प्रकृति और परम्परा दोनो से मुक्तक रचना के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। ब्रजभाषा मे माधुर्य और उत्कृष्ट भाव व्यजना के होते हुए भी वह प्रबन्धात्मक रचना के योग्य नही थी। इसे तुलसीदास ने भलीभाँति जान लिया था, इसीलिए उन्होने गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका जैसी मुक्तक रचनाओ मे ब्रजभाषा का अत्यन्त सफल प्रयोग किया है।

तुलसीदास की भाषा की सबसे बडी विशेषता उसका शब्द-चयन है। यदि उनके द्वारा प्रयुक्त किसी शब्द के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तो काव्य की अर्थव्यजकता मे वह माधुर्य और चमत्कार नही मिलता। कवि का यह शब्द सौष्ठव उसकी बहुत बडी थाती है। इस प्रकार सूर और तुलसी ने अपनी मुक्तक रचनाओ द्वारा ब्रजभाषा को इतना अधिक सशक्त बना दिया कि आगे वह दो सौ वर्षो तक हिन्दी काव्य-जगत पर छायी रही।

तुलसीदास की भाषा मे यथास्थान मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से सजीवता और प्रवाहमयता आ गयी है। तुलसी की उक्त भाषा विषयक विशेषताए आलोच्य कवियो के तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत दी गयी है।

अग्रदास की रचनाएँ—ध्यानमजरी, अष्टयाम पदावली, ग्रन्थावली (कुडलिया) आदि ब्रजभाषा की सुन्दर उदाहरण हैं। कवि ने ध्यानमजरी मे सस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सम्प्रदायगत सैद्धान्तिक विवेचन और रामसीता के रूप के आलंकारिक वर्णन मे केवल तत्सम शब्दावली की प्रधानता ही नही, सामासिक शब्दो के भी यत्रतत्र प्रयोग हुए हैं। अनुप्रास की अन्य रचनाओ मे ऐसी साहित्यिक और परिनिष्ठित ब्रजभाषा का प्रयोग नही मिलता। अष्टयामपदावली में दार्शनिक विवेचन सम्बन्धी केवल कुछ ही पद हैं जिनमे तत्सम शब्दावली का व्यवहार हुआ है। दिनचर्या सम्बन्धी सामान्य प्रसगो, बाह्यदृश्य वर्णनो मे सरल भाषा का प्रयोग किया गया है जिसमे तद्भव और विदेशी शब्दावली की प्रधानता है। कुडलिया-ग्रन्थ की भाषा और भी अधिक सरल है किन्तु अग्रदास की रचनाओ में भाषा सर्वत्र भावव्यजक और प्रवाहपूर्ण है। भाषा मे मुहावरे, कहावतें और अन्योक्ति के प्रयोग से अधिक सजीवता आ गयी है।

नाभादास की ब्रजभाषा प्रौढ और परिमार्जित है। वह तत्समबहुला न होकर तद्भव शब्दावली से युक्त चलताऊ ब्रजभाषा है और उसमे सामासिक शब्दावली का अभाव है। अत्यन्त सरल और सीधी-सादी ब्रजभाषा मे कवि ने राम के आठो

प्रहर की दिनचर्या का सारगर्भित वर्णन किया है। यत्र-तत्र मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव हो गयी है।

सेनापति ने कवित्तरत्नाकर में साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा-शैली के प्रसगानुसार भिन्न-भिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं। स्तोत्र-शैली मे भाषा सस्कृतगर्भित है। राम के स्तुतिगान में कवि ने केवल सस्कृतनिष्ठ और सस्कृत पदावली का प्रयोग किया है किन्तु ऐसे स्थल अत्यल्प हैं, इसलिए कवि का भाषा का यह स्वाभाविक रूप नही कहा जा सकता। भयावह अथवा उत्साह-पूर्ण स्थलो पर भाषा का रूप भी बदल गया है। अपभ्रंशयुगीन परम्परा के अनुसार इन वर्णनो मे कर्णकटु और द्वित्व प्रधान शब्दो के प्रयोग से भाषा मे कर्कशता आ गयी है। ऐसे विशिष्ट स्थलो को छोडकर सेनापति ने सामान्यत. भाषा के प्रकृत रूप का ही व्यवहार किया है जिसमें तद्भव शब्दावली की प्रधानता है। भाषा क अलकरण, वर्णविन्यास मे कौशल-प्रदर्शन आदि को कवि ने बहुत अधिक महत्व नही दिया है, फिर भी उसकी भाव—व्यजकता अत्यन्त प्रभावशाली है। उनमे वाह्य उपकरणो द्वारा भाषा में वह नैसर्गिक मर्मस्पर्शिता नही है जो भक्त कवियो की भावानुभूति की अभिव्यक्ति की सहज विशेषता होती है। पं० उमाशकर शुक्ल के शब्दो में "सेनापति ब्रजभाषा लिखने मे बहुत ही दक्ष थे, भाषा के साधारण से साधारण शब्दो द्वारा उन्होने कितनी सुन्दर रचना की है। ब्रजभाषा से इतना परिचित होने के कारण ही उन्हें श्लिष्ट काव्य लिखने मे अपूर्व सफलता मिली है।"[१]

सेनापति की भाषा मे प्रादेशिक बोलियों और फारसी के शब्द मिलते हैं जिनका तद्भव रूप मे ही प्रयोग किया है गया। सेनापति और अन्य आलोच्य कवियो मे व्यवहृत शब्दावली का वर्गीकरण आलोच्य ग्रन्थो की शब्दावली के अन्तर्गत दिया गया है।

वस्तुत. ब्रजभाषा सूरदास के समय से ही कृष्ण काव्य-सर्जना की माध्यम बन गई थी। कृष्ण-भक्ति और माधुर्योपासना की अभिव्यक्ति माधुर्य गुणो से युक्त ब्रजभाषा में अधिक समीचीन समझी जाती थी और स्वयं सूरदास ने भक्तिभावना से प्रेरित होकर रामकथा के लिए उनका प्रयोग कर ऐसा मार्गनिर्दर्शन किया कि उनके परवर्ती कवियो ने भी बराबर उनका अनुसरण किया। तुलसीदास को भी इसका श्रेय प्राप्त है। उन्होने न केवल कृष्णभक्ति को ही प्रश्रय दिया वरन् रामकथा का गान ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर अपनी समन्वयकारी प्रवृत्ति

१. कवित्तरत्नाकर, सं० प० उमाशंकर शुक्ल, भूमिका, पृ० ५०-५१

का मनोहारी परिचय दिया। तुलसी के परवर्ती रामभक्त कवियो ने इस मार्ग का अनुसरण किया और अपनी मुक्तक रचनाओ में उन्होने ब्रजभाषा का सफल प्रयोग किया।

ध्वनि प्रयोग

ब्रजभाषा मे साधारणतया वे सभी ध्वनियाँ व्यवहृत हुई हैं जो हिन्दी मे प्रयुक्त होती हैं। साहित्यिक हिन्दी से ये किसी प्रकार भिन्न नही हैं। मूल स्वर मे ह्रस्व, दीर्घ, स्वर-सयोग, सयुक्त स्वर, असयुक्त व्यजन, सयुक्त व्यजन आदि ध्वनिया का व्यापक प्रयोग इसमे मिलता है। सभी स्वरो के सानुनासिक प्रयोग भी मिलते हैं। प्राचीन ब्रजभाषा की रचनाओ मे 'ऋ,' मूर्धन्य 'ष,' तालव्य 'श,' विसर्ग 'अः' आदि लिपि वर्ण मिलते हैं यद्यपि इनका प्रयोग मध्ययुगीन भाषा-काल म ही समाप्त हो गया था किन्तु तत्सम-शब्दावली के प्रयोग के साथ इनका पुन प्रयोग हुआ है। इनका शुद्ध उच्चारण आधुनिक काल मे भी नही होता। ऋ का उच्चारण 'रि' अथवा 'इर' के रूप मे होता है। अधिकाश पुरानी पोथियो मे यह इसी प्रकार लिखा भी मिलता है।[1] जहाँ शब्द मे 'ऋ' का स्वर चिह्न ब्रजभाषा के शब्दो मे मिलता है, वह लिपिकारो की भूल का परिचायक है अथवा तत्सम शब्दावली के प्रयोग के कारण। सम्भवत दूसरा कारण ही मुख्य है। मुक्तक रामकाव्य इसका अपवाद नही है। उसमे इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा-मृगराज,[2] भृगुनाथ,[3] दृढ, गृह,[4] ऋषि,[5] कृपालु,[6] मृदग,[7] हृदय,[8] भृकुटी,[9] शृगार, मकराकृत,[10] मृगन,[11]।

ब्रजभाषा की ध्वनिविषयक सामान्य विशेषताए आलोच्य मुक्तक रामकाव्य मे उपलब्ध होती हैं। मूल स्वर, अनुनासिक मूल स्वर, सयुक्त स्वर, स्वर-सयोग सभी वर्गों के उदाहरण इनमे मिलते हैं। इनम मूर्धन्य व्यजनो का अत्यल्प प्रयोग तथा कतिपय व्यजनो मे आमूल परिवर्तन द्रष्टव्य हैं। यथा—य > ह, य > ज, ण > न, व > ब, श, ष स > स, ड > र। न्ह, म्ह, ल्ह महाप्राण व्यजनो के व्यापक

---

१ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा पृ० ३९
२ कवितावली,
३ गीतावली,
४ गीतावली,
५ विनयपत्रिका, पद स० १६३
६ सुररामचरितावली,
७ वही,
८ ध्यानमजरी,
९ अष्टयाम पदावली, पद स० २५
१० अष्टयाम, पद स० १४१
११ कवित्तरत्नाकर, ४।७

प्रयोग मिलते हैं। संयुक्ताक्षरों में क्त, क्ष, ज्ञ, त्र > क्रमशः त, च्छ, ज, ग्य के प्रयोग हुए हैं। संयुक्ताक्षरों में ये अपने मूल रूप में भी यत्र-तत्र व्यवहृत होते हैं।

भाषा-विकास की दृष्टि से इन रचनाओं में ध्वनि-परिवर्तन के विविध रूप मिलते हैं जिनके कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

स्वरागम—दगाई,[1] आपनी,[2] नाथा,[3] सासु,[4] असवार,[5] अस्नान,[6] कछुक[7]

स्वरभक्ति—सनेह,[8] स्वारथ,[9] सनेह,[10] अन्तरगत,[11] गलानि,[12] सबद,[13] चरचा,[14] कीरति,[15] गलानि,[16] दरसन,[17] पदम,[18] कलेश,[19] मगन,[20] परिकरमा,[21] आदरस,[22] सूक्षम,[23] दीरघ[24]

समीकरण—लक्खन,[25] खग्ग,[26] रच्छा,[27] पुज्जन,[28] मच्छ-कच्छ,[29] सद्द,[30] पव्वन,[31] पुन्न,[32] तिक्खन[33]

---

१ कवितावली, ३०, छंद सं० ६०
२. गीता०, अयोध्या०, पद सं० ३१
३ विनयपत्रिका, पद सं० ७३४
४. अग्र० अष्टयाम, पद सं० १५
५. गीतावली, अयोध्या० पद सं० ९१
६. अग्र० अष्टयाम, पद सं० १४७
७. अग्र० अष्टयाम, पद सं० ६५
८. कविता० अयोध्या०, पद सं० ३
९ कवितावली उ०, छद सं० १०
१०. गीतावली, बाल०, पद स० १५
११ विनयपत्रिका, पद सं० ४९
१२. कवितावली,
१३. कविता०, उत्तर०, छंद स० १४८
१४. गीता०, बाल०, पद सं० ५
१५. गीतावली,
१६. विनयपत्रिका, पद सं० ७७
१७. सूर०, पद स० १८
१८. वही,
१९. ध्यान०, पद स० १३, २९
२०. अग्र०, अष्ट०, पद सं० ४
२१. सूर०, पद स० १४
२२. अष्ट०, पद सं० १७३
२३. अग्र०, अष्ट०,
२४. कवित०, ४।१०
२५ कविता०, अयो० पद स० २८
२६. कविता० लंका०, छद स० ६५
२७. गीता०,
२८. कवित्त०,
२९. कवित्त०, ४।४
३० कवित्त०, ४।४
३१. वही,
३२. कवित्त०, ५।११
३३. कविता० लका०, छद सं० ३९

ध्वनि-लोप—नेह,[1] कूर,[1] सुमथ,[1] ध्रु,[2] थिर,[3] फन्कि,[4] निठुर,[5] तुरत,[6] निफल,[7] उज्वल,[10] थल,[11] पेम,[12] हथ्यार,[13] खम्म,[14]

व्यजनागम—कालिह,[15] बारबार,[16] छिनक[17]

वर्ण विपर्यय—वूडत,[18] चिन्ह,[19] वोडे,[20] वृन्त[21]

सभी रचनाओ मे सर्वाधिक ध्वनि-परिवर्तन स्वरागम और स्वर भक्ति सम्बन्धी हैं जिनके द्वारा सयुक्ताक्षरो को सरल बनाया गया है। कवित्तरत्नाकर मे समीकरण की प्रवृत्ति छप्पय म वर्णित वीर रस के छदो में विशेष रूप से मिलती है।

आलोच्य कवियो की रचनाओ मे साहित्यिक ब्रजभाषा का ही विशेष रूप से प्रयोग हुआ है जिसम सस्कृत की तत्सम एव तद्भवबहुला शब्दावली की प्रचुरता है। शब्दो मे यत्किंचित् ध्वनि-परिवर्तन द्वारा उनके सरल रूप का भी प्रयोग किया गया है जिसे अर्द्धतत्सम की सज्ञा दी जा सकती है। यत्र तत्र देशज और विदेशी शब्दावली के भी प्रयोग हुए है। विदेशी शब्दावली मे फारसी शब्द ही मुख्यत प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी की बोलिया कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, राजस्थानी एव उर्दू, पजाबी भाषाओ के कुछ शब्द भी प्रचलित मिलते हैं। इन सम्बन्धित बोलिया और विदेशी भाषाओ के शब्दो को भी अधिकाशत तत्सम् और तद्भव रूपा म अपनाया गया है। यहाँ पर व्यवहृत शब्दावली का वर्गीकरण सक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

तत्सम्—अवलब,[22] मलिल सम,[23] मृगाक,[24] चचलता,[25] परिताप,[26]

---

१ कविता०, अयो०, १२ २ कविता०, सु०, ३ ३ कविता०, उ०, १४
४ कवित्त०, ७।८८ ५ गीता०, वाल०, ४ ६ गीता०, अ०, ४४
७ गीता०, लका०, १८ ८ सूर०, ४६ ९ सूर०, ८०
१० ध्यान०, ५२ ११ अष्ट०, २ १२ कवित्त०, ४।१७
१३ कवित्त०, ४।२७ १४ अष्ट०, ७१ १५ कविता०उ०, १७९
१६ सूर०, ४४ १७ वही, ९३ १८ कविता०,
१९ ध्यान०, ४५ २० अष्ट०, १६४ २१ सूर०, १०८
२२ कविता०, २।७ २३ वही, ५।२० २४ वही, ५।२५
२५ वही, ७।२६ २६ वही, ७।५८

राजनीति,[1] वितान,[2] कैवल्य,[3] लालसा,[4] दीपमालिका,[5] संपदा,[6] अनुराग,[7] फलदायक,[8] रंगभूमि,[9] चित्रसार,[10] मलयानिल,[11] मानसिक,[12] समाचार,[13] यज्ञोपवीत,[14] दिवाकर,[15] कल्पतरु,[16] अनुग्रह,[17] अविद्यमान,[18] विरुदावली,[19] यज्ञ,[20] गमन,[21] जीविका,[22] पीतांबर,[23] उद्यम,[24] प्रस्वेद,[25] आवागमन,[26] पारंगत,[27] क्षत्री,[28] हुतासन,[29] विभूषण,[30] सिंहासन,[31] यज्ञोपवीत,[32] दक्षिण,[33] खद्योत,[34] दर्शन,[35] सौन्दर्य,[36] अरविन्द,[37] नखशिख,[38] प्रणाम,[39] लावण्य,[40] विहगम,[41] शृंगार,[42] औषधन,[43] निपुणता,[44] आवागमन,[45] वर्णाश्रम,[46] चिन्तामणि,[47] मृगतृष्णा,[48] अविद्या,[49] अभूषित,[50] चक्षुश्रवा,[51] ओतप्रोत,[52] अंत:पुर,[53] तांबूल,[54] आवरण,[55] हृदय,[56] अवलंबन,[57] मकराकृत,[58] प्रक्षालन,[59]

---

१ कविता०, ७।७४
२ वही, ७।७९
३. वही, ७।११५
४. वही, ७।१३७
५ वही, ७।१७१
६. गीता०, १।१
७. वही, १।२
८. वही, १।६
९. वही, १।७०
१० वही, १।७५
११. वही, २।४८
१२. वही, २।५७
१३. वही, २।८८
१४. वही, ७।१७
१५. विनय०, १।२
१६. विनय०, ८।३
१७ वही, ५३
१८. वही, ६८
१९. वही, १४७
२० सूर०, ६
२१. सूर०, २४
२२ वही, २३
२३. वही, २९
२४. वही, ६८
२५. वही, ८३
२६. वही, ८९
२७. वही, १०६
२८. वही, ११७
२९. वही, १४७
३०. ध्यान०, १
३१. वही, ३९
३२. वही, ३९
३३. वही, ६७
३४. वही, ७६
३५. अग्र० अष्ट०, १
३६. वही, ८
३७ वही, २३
३८. वही, २५
३९. वही, २९
४०. वही, ६६
४१. वही, ८१
४२. वही, ८९
४३. वही, ९१
४४. वही, ९२
४५. वही, ९४
४६. वही, १११
४७. वही, १११
४८. अग्र०, कुं०१।२
४९. वही, १।४
५०. वही, १।१५
५१. वही, २।५५
५२. वही, २।७०
५३. अष्ट०, १२
५४. वही, ३२
५५. वही, ३०
५६. वही, ७६
५७. वही, ९९
५८. वही, १४१
५९. वही, २३१

सज्जन,[1] वडवानल[2]।

विनयपत्रिका के पद अधिकांशतः संस्कृतनिष्ठ पद-शैली में लिखे गये हैं। अन्य किसी आलोच्य रचना पर संस्कृत का उतना विशद प्रभाव नहीं मिलता। अग्रदास रचित अष्टयाम पदावली में भी संस्कृत का यथेष्ट प्रभाव है। इन दोनों रचनाओं में कई पद पूर्णतया संस्कृत शैली में ही मिलते हैं।

तद्भव—रुख,[3] नेह,[4] सँत,[5] लाज,[6] मूड,[7] छाह,[8] अचरज,[9] मीचु,[10] नागो,[11] सिंगार,[12] माझ,[13] भंडारी,[14] छिन छिन,[15] फागु,[16] मीचु,[17] घाउ,[18] मेह,[19] छिनछिन,[20] हाथ पाँव,[21] मीत,[22] परवान,[23] पाँति,[24] तड़ाग,[25] छाँह,[26] ठौर,[27] चाव,[28] बिजुरी,[29] घर घर,[30] बात,[31] कुम्हार,[32] सुआ,[33] सुहागिन,[34] मीत,[35] छतरी,[36] पच्छिम,[37] सेज,[38] प्रीतम,[39] अँगउछा,[40] ठाँव,[41] सिंगार,[42] रुख,[43]।

अर्द्ध-तत्सम—धरम,[44] तिलक,[45] पदारथ,[46] जुगल,[47] मूरति,[48] मजाग,[49] सरीर,[50] छमा[51] मरजादा,[52] छुधित,[53] राम,[54] अजोध्या,[55] लछिमन,[56] बृच्छ,[57]

---

१ कवित्त०, ४।२९	२ वही, ४।४३	३ कविता० २।१
४ वही, २।१२	५ वही, ६।१३	६ वही, ६।५२
७ वही, ७।६७	८ वही, ७।६८	९ वही, ७।७२
१० वही, ७।७५	११ वही, ७।१५३	१२ गीता०, १।१
१३ वही, १।४	१४ वही, १।६	१५ वही, १।२०
१६ वही, २।४८	१७ वही, ३।७	१८ वही, ६।१९
१९ विनय०, २८	२० वही, २८	२१ वही, ३१
२२ वही, १४०	२३ सूर०, २६	२४ ध्यान०, ५
२५ वही, १४	२६ वही, ६९	२७ वही, ६९
२८ वही, ७७	२९ अग्र० अष्ट०, ७५	३० वही, ११०
३१ वही, ११९	३२ अग्र० कु०, १।५	३३ वही, १।८
३४ वही, १।१८	३५ वही, २।६४	३६ अष्ट०, २१
३७ वही, ४१	३८ वही, ६२	३९ वही, १०१
४० वही, १७०	४१ वही, २०७	४२ वही, ४८७
४३ कविता०, ५।४	४४ वही, ७।१२२	४५ वही, ७।१२३
४६ कविता०, ७।१५६	४७ गीता०, १।२९	४८ वही, १।४३
४९ वही, १।७०	५० वही, २।७६	५१ गीता०, ३।७
५२ विनय०, १२	५३ वही, ४९	५४ वही, ५४
५५ सूर०, २	५६ वही, ५	५७ वही, ६२

कन्लेश,[१] मगन,[२] कृष्न,[३] पतिवर्त,[४] आवरन,[५] जथा,[६] पच्छ[७] ।

विदेशी-फारसी—मरीकता,[८] साहेब,[९] बाजार,[१०] जहान,[११] नेवाजिह,[१२] रहम, फहम, सहन,[१३] बखसीस,[१४] पादमाल,[१५] खलक हलक,[१६] कहर,[१७] टील,[१८] सरखतु,[१९] गुलाम,[२०] खसम,[२१] दरिया,[२२] रवा,[२३] दगाबाज,[२४] उमरि,[२५] दगाई,[२६] खलक,[२७] हबूब,[२८] दरजी,[२९] करदा,[३०] बाप,[३१] रुख,[३२] हालु,[३३] ख्याल,[३४] गरीब,[३५] कबूलत,[३६] सफरी,[३७] गरीब निवाज,[३८] दगाबाजि,[३९] खास,[४०] दादि,[४१] पियादे,[४२] नाता,[४३] बाग,[४४] दगा,[४५] दरबान,[४६] सवार,[४७] फीके,[४८] रुक्का,[४९] बाजार,[५०] गुल्फ,[५१] लहगा,[५२] जुहार,[५३] रख,[५४] मातल,[५५] हजारन,[५६] जरिदार,[५७] दाग,[५८] दिलदार,[५९] जुलुफन,[६०] दिल,[६१] नाजुकता,[६२] इसारे,[६३] शान,[६४] दसखत,[६५] चरचा,[६६] महबूब,[६७] जोर,[६८] चग,[६९]

---

१. ध्यान०, १३
२. अग्र० अष्ट०, ४
३. वही, ७१
४. अग्र० कु०, ११९८
५ अष्ट०, ७४
६ वही, ५६
७. कवित्त०, ४।१५
८. कविता०, १।९
९. वही, ५।९
१० वही, ५।१७
११ वही, ५।३२
१२. वही, ६।२
१३. वही, ६।८
१४. वही, ६।१०
१५ वही, ६।२३
१६. वही, ६।२५
१७. वही, ६।२९
१८ वही, ६।५२
१९. वही, ६।५८
२०. वही, ७।१४
२१. वही, ७।२४
२२. वही, ७।४६
२३. वही, ७।५६
२४ वही, ७।६५
२५. वही, ७।७९
२६ वही, ७।९३
२७ वही, ७।९८
२८. वही, ७।१०८
२९ वही, ७।१३३
३०. वही, ७।१५५
३१. वही, २।१
३२ वही, १।७१
३३ वही, ५।३
३४. वही, ७।२४
३५. विनय०, ३१
३६. वही, ८१
३७ वही, ९०
३८. वही, १०५
३९ वही, १३७
४०. वही, १४७
४१. सूर०, २
४२. वही, २९
४३. वही, ३४
४४, वही, ८८
४५. वही, ९९
४६ वही, ११४
४७. वही, १४३
४८ वही, १४६
४९. वही, १५७
५०. ध्यान०; ७
५१. वही, ४३
५२. वही, ६२
५३. अग्र० अष्ट०, १
५४. वही, ३
५५. वही, ४
५६; वही, ६
५७. वही, १९
५८. वही, २४
५९. वही, ६९
६०. वही, ८२
३१. वही, ८६
३२. वही, ८७
६३. वही, ९०
६४. वही, ९४
६५. वही, ९७
६६. वही, ९८
६७. वही, ११९
६८. वही, ११९
६९. वही, १२०

कबीर,[1] नरम[2] खसम,[3] ज्यादो,[4] अनामत,[5] काम वक्त,[6] गुलीचा,[7] गजगा[8] चिक,[9] शक्ल,[10] रुख,[11] आदरस,[12] जिनस,[13] लायक,[14] दाग,[15] दस्खत[16]।

देशज—पनही[17] हहरान,[18] बुबुक,[19] घहराने हहराने,[20] दाढ़ीजार,[21] हिहनात,[22] डफेरी,[23] झलमलत[24], लरका,[25] मोदे,[26] गोड़,[27] नाधी,[28] मोवे,[29] खरमर,[30] किलकारि,[31] किलकिलात,[32] भभकत,[33] किलकारत,[34] छाई,[35] टपकत,[36] कूकत,[37] मचके,[38] रिमझिमि,[39] चुचकार,[40] फरफराई,[41] हहरत,[42] धधकत[43]।

अन्य बोलियों के शब्द

अवधी—चुताओ,[44] सुवात,[45] मा (मे),[46] कहिगा,[47] ओही,[48] छाहुव, गाजन, सहवे, सुमिरिबे,[49] कीबो[50] उबठेउ,[51] कहिबो,[52] मार,[53] बड दीन,[54]

---

१ अग्र० अष्ट०	२ वही	३ अग्र० कु०, १।१८
४ वही, २।४३	५ वही २।५५	६ अष्ट०, २४
७ वही २५	८ वही ३३	९ वही ३७
१० वही, ५५	११ वही, ११४	१२ वही, १७३
१३ वही २२१	१४ वही, २७०	१५ वही, २५७
१६ वही, १२३	१७ कविता०, २।१९	१८ वही, ५।४
१९ वही ५।६	२० वही, ५।८	२१ वही, ५।११
२२ वही, ५।१५	२३ वही, ५।२७	२४ गीता०, १।१०
२५ वही, १।२०	२६ वही, १।७०	२७ वही, २।६९
२८ वही, ३।७	२९ वही, ५।१२	३० सूर०, ८९
३१ वही, १२३	३२ वही, १२४	३३ वही १४४
३४ ध्यान०, १६	३५ वही, ७३	३६ अग्र०अष्ट०, ७५
३७ वही, ८४	३८ वही, ८५	३९ अष्ट०, ३१८
४० कविता०, ४।४१	४१ वही, ४।४९	४२ वही, ४।५८
४३ वही,४।५८	४४ वही, ५।१९	४५ वही, ६।९
४६ वही ७।११	४७ वही, ७।५६	४८ गीता०, २।२०
४९ वही, २।३३	५० वही, २।३२	५१ वही, २।४७
५२ वही, ६।१४	५३ सूर०, ६८	५४ वही, ११

धा,[1] पौढ़ायो,[2] तोर,[3] लुकाई,[4] रसात,[5] हमार,[6] तनक,[7] छोड़ब,[8] हमार,[9] कहऊ, लहऊ,[10] कीन्ह, लीन्ह,[11]

खड़ी बोली—मचा, बचा, रचा,[12] बीता, जीता,[13] करते, होते,[14] बोले,-खोले,[15] झलकता,[16] बीता, जीता,[17] मरने[18]।

राजस्थानी बोली—थाको, म्हाको[19]।

कन्नौजी बोली—गो,[20] भो,[21] हुतो,[22] हते[23]।

बुन्देली बोली—कीबी,[24] कीवी,[25] सुनायबी,[26] पालबी,[27] डारिबी,[28] ध्याइबी,[29] कहिबी,[30] सुधारिबी,[31] समुझाइबी।[32]

पंजाबी—कैती,[33] वारियाँ, धारियाँ, सारियाँ[34] विच,[35] धारा,[36] खादी,[37]

गुजराती—ऊरै छै, करै छै।[38]

सामासिक शब्द—धर्मक्रिया,[39] सुधागेह,[40] विपथगामिनी,[41] मधुराधर,[42] धरनीधर,[43] करुनासिंधु,[44] कृपातरंगमालिका,[45] सुखमासागर,[46] कृपानिधान,[47] रामराजाधिराज,[48] जनकात्मजा,[49] वारिजलोचन,[50] स्वारथरत,[51] राजीव-

---

१. सूर०, २९
२. वही, ३५
३. वही, ६८
४. वही, ८९
५. वही, ९९
६. वही, १३२
७. ध्यान०, ५७
८. अग्र०अष्ट०, ६८
९. वही, १२०
१०. अष्ट०, ४७
११. वही, १७७
१२. कविता०, ६।१५
१३. वही, ६।१७
१४. सूर०, ८२
१५. वही, १४८
१६. ध्यान०, ५०
१७. अग्र० अष्ट०, २१
१८. वही, ११९
१९. कविता०, ६।२१
२०. वही, ६।२४
२१. गीता०, ३।३३
२२. सूर०, १३, ५३
२३. वही, ८१
२४. कविता०, ७।१०
२५. गीता०, २।७८
२६. वही, ६।१४
२७. वही, ७।२९
२८. वही, ७।२९
२९. विनय०, १८
३०. वही, १७
३१. वही, १४९
३२. वही, १४९
३३. सूर०, ८६
३४. अग्र० अष्ट०, १०४
३५. वही, १२०
३६. अग्र० कु०, ५८
३७. वही, ५८
३८. अग्र० अष्ट०, ८७
३९. कविता०, ३।१
४०. वही, ३।४
४१. वही, ३।९
४२. वही, ३।११
४३. वही, ६।३३
४४. वही, ७।१०
४५. वही, ७।१७३
४६. गीता०, १।८
४७. वही, २।४६
४८. वही, ५।५०
४९. विनय, २०
५०. वही, ६१
५१. वही, १०९

त्रिलोचन,[1] जनकसुता,[2] कृपानिधान,[3] रामाज्ञा,[4] भवसागर,[5] अमृतरसधार,[6] चतुरानन,[7] मनोभिराम,[8] कृपानिवास,[9] वचनामृत,[10] मिथिलशनंदिनी,[11] रससिंधु,[12] गलबाही,[13] सुधानिधि,[14] भवसागर,[15] गलबाँह,[16] पुष्पाजलि,[17] ब्रह्मादिक,[18] सुरासुर।[19]

संकर शब्द—इसके अन्तर्गत संस्कृत तत्सम, हिन्दी तद्भव तथा संस्कृत, हिन्दी और फारसी शब्दों की संकर स्थिति मानी गयी है।

मसि बिंदु,[20] राम रुख,[21] काम पच्छ,[22] सिंगारसार,[23] ग्राम जुवती,[24] प्रेम-नेम,[25] सियमुद्रिका,[26] गरीबजन,[27] हरिभगति,[28] पहरेदार,[29] सिरताज[30] रग-दार,[31] पानदार,[32] सिरताज,[33] दयादरिया[34]।

शब्द-वैशिष्ट्य—आल-बाल,[35] छगन मगन[36]।

चिन्त्य प्रयोग—चार पुत्र दशरथ के उपजे,[37] कह न सो धरनी[38]।

मुहावरा-प्रयोग—मुहावरों के प्रयोग द्वारा अर्थ चमत्कारपूर्ण और कथन अधिक रोचक, सुंदर तथा प्रभावपूर्ण हो जाते हैं। मुहावरों में *अर्थ व्यंजकता* और लाक्षणिकता की प्रधानता होती है। प्रसिद्ध कोशकार स्मिथ के शब्दों में—'मुहावरे जीवन और शक्ति के वे स्फुलिंग हैं जिनसे भाषा गति प्राप्त करती है, मुहावरों से रहित शैली नीरस, अनाकर्षक और उबा देने वाली होती है। सच पूछिये तो भाषा की आत्मीयता और सप्रमाणता मुहावरों से ही प्राप्त होती है।' इन

---

१ विनय०, ११९	२ सूर०, ११	३ वही, ५०
४ वही, ७३	५ ध्यान०, १८	६ वही, ७३
७ वही, ७१	८ अग्र० अष्ट०, ४	९ वही, ३३
१० वही, ३४	११ वही, ४४	१२ वही, ७६
१३ वही, ८७	१४ वही, १२०	१५ अष्ट०, ५
१६. वही	१७ वही	१८ वही
१९. कवित्त०, ४।४८	२० गीता०, १।१०	२१ वही, १।९२
२२ वही, १।९९	२३ वही, १।१०७	२४ वही, २।३८
२५ वही, २।६४	२६ वही, ५।१५	२७ विनय०, ८१
२८ वही, ११३	२९ अग्र० अष्ट०, ९४	३० वही, ९४
३१ वही, १२०	३२ अष्ट०, २८	३३ कवित्त०, ४।२
३४. कविता०, उ०, ४५	३५ गीता०, १।३०	३६. वही, १।३०
३७ सूर०, २	३८ वही, ३	

मुहावरो द्वारा कवि के व्यापक अनुभव और व्यक्तिगत अनुभूति का भी वोध होना है। आलोच्य कवियो ने अपनी रचनाओ मे मुहावरो और कहावतो का यथेष्ट प्रयोग किया है जिसके कारण उनकी भाषा काफी सजीव और सशक्त हो गयी है। इनके प्रयोग से भाषा मे यथेष्ट प्रवाह आ गया है। साहित्यिक भाषा प्रायः तत्सम शब्दावली के प्रयोग के कारण कुछ बोझिल सी हो जाती है, परन्तु इन कवियो ने अपनी साहित्यिक व्रजभाषा मे तद्भव, देशज, विदेशी शब्दो के साथ ही जहाँ भी सम्भव हो सका अनेकानेक मुहावरो के प्रयोग द्वारा उसे सरल और प्रवाहपूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है।

यहाँ पर उनकी कृतियों मे व्यवहृत मुहावरो और कहावतो का विवेचन समीचीन होगा। इन कवियो ने मुहावरो के ही अधिक प्रयोग किये है, कहावतों या लोकोक्तियो के प्रयोग यत्र-तत्र ही हुए है और उनकी संख्या अधिक नही है। मुहावरो और कहावतो के प्रयोग से उनकी भाषा मे सजीवता और सरलता के साथ जनभाषा के साथ उनके नैकट्य का बोध होता है। मुहावरे मानव-जीवन के किसी न किसी रूप से सम्बन्धित होते है। सर्वाधिक मुहावरे मनुष्य-शरीर के अंग-प्रत्यग तथा उसकी क्रियाकलाप से ही विशेष रूप से सम्बन्धित है। कुछ मुहावरे जीव-जन्तु, वनस्पति आदि से भी सम्बन्धित मिलते है। यहाँ पर उन्ही का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

अग प्रत्यंग से सम्बन्धित मुहावरे-- इसके अन्तर्गत मनुष्य के शरीर, सिर, मस्तक, आंख, कान, मुख, अधर, हाथ, पैर आदि से सम्बन्धित अनेकानेक मुहवरो के प्रयोग हुए है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जो न लगे मुँह कारयो,[1] करयो तिय को जिन कान कियो है,[2] आँखिन मे मखि राखिबे जोग,[3] तिन तौ मन फेरि न पाए,[4] मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,[5] मीजि-मीजि हाथ, धुनै माथ,[6] गाल को बजाव,[7] रावन राठ के हाड़ गढ़े,[8] तृन दंत गहि,[9] नाक बिनु भए,[10] काढ़त दन्त,[11] कह्यो बारक पेट खलाई,[12]

१. कवितावली, बालकाण्ड, छद स० १५
२. वही, अयोध्याकाण्ड, छद स० २० ३. वही, २०
४ वही, अयो०, २० ५. वही, सुन्दर०, १० ६. वही, ११
७. वही, लका०, १८ ८. वही, ६ ९. वही, १७
१०. वही, २५ ११ वही, उत्तर०, ३९ १२. वही, ५७

आयो ही नाकहि,[1] काहे न कान करो,[2] मोटी मूठ मार दी,[3] अधनि लहै है बिलोचन तारे,[4] निमेषे वियकित भई,[5] बजावें गाल,[6] अधर फरकत,[7] हाथ मीजिवो हाथ रह्यो,[8] बार बार कर मीजि,[9] सीस धुनि गीधराज पछिताने,[10] फरकत बाम बिलोचन बाँहु,[11] गहि बाँहि,[12] सिर धुनि धुनि पछितात,[13] तौ तू पछितैहो मन मीजि हाथ,[14] मुँह लाइकै,[15] भरिपेट गिगारी,[16] बाँह गहीहै,[17] लोचन फेरो,[18] अक दीजियो,[19] मन ही मन पछिताई,[20] मुँह दिखराऊँ,[21] कर मीजै पछिताई,[22] नैन उर करके,[23] पापी क्यों न पीठि दै,[24] प्राण जात है खेली,[25] तुरत आँखि नहिं मारत,[26] कहाँ तुरावै गाल,[27] नागी कहाँ निचोय,[28] निज हृदय लगावत,[29] यह विधि सबके नैन थकि,[30] कीनो पाँचहि पलक मे,[31] अक लगाय ।[32]

आलोच्य रचनाओ मे मानव-जीवन के कार्योपर आधारित अनेक मुहावरो के भी प्रयोग किये गये हैं यथा—दाहिनी होन,[33] लाज अँगाई घोरि,[34] सुरति कराई,[35] नाच नचायो,[36] बायो दियो,[37] करिहै कुछु साको,[38] जाऊँ बलि,[39] ढील दई,[40] दीजै दादि,[41] परवो परवो छठि,[42] नवायो पार,[43] गाँठि बाध्यो दाम,[44] रेख खैंची,[45] भरि भरि लेत उलास,[46] फूल्यो न समाई,[47] बोर्‌यो रितु भाउँ,[48] हम

---

१. कवित्त०, उत्तर० १५३ २. वही, १५७ ३. वही, १८३
४. गीता० बाल०, ६०।५ ५. वही, ६१।३ ६. वही, ९५।२
७. वही, अयो०, १०२।२ ८. वही, ८४ ९. वही, अरण्य०, १२
१०. वही, १२ ११. वही, १७ १२. विनय०, ७६, १४७
१३. वही, ८३ १४. वही, ८४ १५. वही, १४८
१६. वही, १४८ १७. वही, २७९ १८. वही, २७२
१९. सूर०, २१ २०. वही, ४६ २१. वही, ६०
२२. वही, ६० २३. वही, ६८ २४. वही, ६८
२५. वही, ७९ २६. वही, १०८ २७. अष्ट०कुंडलि०,१।२२
२८. वही, २।३९ २९. अष्टयाम०, ७६ ३०. वही, १४५
३१. कवित्त०, ४।३९ ३२. ब्रह्म, छद म०१९ ३३. विनय०, १५६
३४. वही, १५८ ३५. वही, १६५ ३६. वही, २७६
३७. वही, २४९ ३८. कविता, बाल., २० ३९. विनय०, ११
४०. वही, १३९ ४१. वही, १९१ ४२. वही, १५५
४३. वही, १८८ ४४. वही, १९१ ४५. वही, २५८
४६. सूर०, ३० ४७. वही, ८१ ४८. वही, ६०

सर्व की पति राखी,[1] नाम नै बूड़ते पावने,[2] देखो ठोके बजाय,[3] लोन राई केरि वारी लोन गई करि,[4] वारि फेरि पियै पानी,[5] बाल फूली फिरै।[6] आलोच्य ग्रन्थों में जीव-जन्तुओं से भी सम्बन्धित कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं—सौंपिनि सौ सेतें,[7] पानी भरी खाल है,[8] मीन मरत जल पायो,[9] सोवत सिंह जगायौ।[10]

वनस्पतियो मे केवल 'तृण' से बने हुए अनेक मुहावरों के प्रयोग हुए है—गोरी सोभा पर तृन तोरी,[11] तोरी तृन ज्यों हित,[12] कहौ तो ताको तृन गहाइ के,[13] तृन दसननि लै, दत तृन धरि कै,[14] मुख चूमत तृण तोरी हो, छबि लखि निरखत तृण तोरे,[15] सो छवि लखि सखियन तृन तोरे।[16] कतिपय स्फुट मुहावरे निम्नलिखित हैं—माडिगो (बुन्देली का मुहावरा),[17] जल खाइ रहा है,[18] खजानो खोटे दाम कौ,[19] अबुद और दिए,[20] खोटो खरो,[21] पावक परि कौन जियौ,[22] फूटि पापर से पल मे।[23] 'अपशब्दो' से सम्बन्धित दो मुहावरे भी द्रष्टव्य हैं—गावत नारि गारि सब दै दै,[24] वहै बड नोनहरामी।[25]

लोकोक्ति—लोकोक्ति वस्तुत. लोक-मानस की सच्ची अनुमति है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों मे कहा जा सकता है—"इनके द्वारा किसी कथन मे तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इससे भाषा मे बल आ जाता है और वह श्रोताओं के हृदय पर प्रभाव डालती है। लोकोक्तियाँ अनुभव-सिद्ध ज्ञान की निधि है। मानव ने युग-युग मे जिन तथ्यो का साक्षात्कार किया

१. सूर०, ८०
२. वही, १०८
३. अग्र० कुंडलि०, १।१९
४. कवित्त०, ४।२०
५. वही, ४।२०
६. नरहरि, ४६
७. कवितां०, सुंदर०, ११
८. वही, उत्तर०, ६५
९. गीता०, लका०, १९
१०. सूर०, ६९
११. कविता० बाल०, १४
१२. सूर०, ३१
१३. वही, ९३
१४. वही, ९९-१००
१५. अग्र० अष्ट०, ७४।७८
१६. अष्टयाम०, ९
१७. कविता०, लंका०, २४
१८. वही, अयो०, ७।३१
१९. वही, उत्तर०, ७०
२०. गीता०, बाल०, ७
२१. विनय०, ७५
२२. सूर०, ३३
२३. कवित्त, ४।५३
२४. सूर०, १०
२५. अग्र० अष्ट० कुंड०, २।६७

है, उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र है। समाज में चिरसंचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका उद्देश्य है।"[1] इस प्रकार लोकोक्तियां जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित होती है और ये दीर्घकालीन अनुभवों के निरीक्षण, परीक्षण की परिणाम हैं। सामान्यतः संक्षिप्तता, सरलता और सप्राणता लोकोक्ति के अपरिहार्य गुण है एवं लोकप्रियता इसका अनिवार्य लक्षण है। ये लोकोक्तियाँ मानव का पथ प्रदर्शन और मानव-मार्ग का प्रशस्त करती हैं।

आलोच्य कवियों ने अपनी भाषा को लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा व्यंजकता और शक्तिमत्ता प्रदान की है किन्तु उनकी रचनाओं में इनकी संख्या अल्प है। यहाँ पर उन्हीं का संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है—

बयो लुनियत[2]—	जैसा बोया वैसा काट रहे है अर्थात् जैसा कर्म किया वैसा फल भोग रहे है।
बिहाइ के बबूर रेंड गाड़िये[3]—	उनको छोड़कर कटीले बबूल और रेंड के वृक्षों की सेवा कौन करेगा?
धोबी कैसा कूकर न घर न घाट को[4]—	धोबी का कुत्ता न घर का होता है, न घाट का अर्थात् न इधर का और न उधर का।
भेंट पितरन को न मूंड़हू मे बारु है[5]—	पितरों को भेंट देने के लिए सिर मे बाल भी नहीं हैं अर्थात् मेरे पास कुछ भी नहीं है।
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है[6]—	साग धन खाकर भी अब हाथ चाटते हैं अर्थात् अत्यंत कंजूस है।
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप है[7]—	दीवाली की रात भर तो दियों मे घी तेल भरा जाता है पर प्रातः सूप खट-खटाये जाते हैं अर्थात् दुष्ट दुष्टता करके मौज उड़ावे पर सज्जन दुःख पाते है।

---

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, पृ० १९५
२ कवितावली, सुन्दरकाण्ड, १२ ३ वही, २५
४ वही, उत्तरकाण्ड, ६६ ५ वही, ६७
६ कवित्त० ७ वही,

मिलो मथत वारि घृत बिनु छीर[1]–	दूध के बिना ही पानी को मथ कर घी निकालना चाहते हैं अर्थात् सार के बिना ही फल की कामना करते हैं।
सावन के अर्धाहि सूझत रग हरो[2]–	सावन के अधे को हरा ही हरा दिखायी पडता है अर्थात् परिस्थितिवश व्यक्ति हर वस्तु को अपने ही रूप मे देखता है।
सेमर ढाकहि काटि के, बाँधो तुम बेरो[3]–	सेमर, ढाक काट कर बेडा बनाना निरर्थक है।
कत स्वान सिंह बलि खाइ[4]–	कुत्ता सिंह के भोज्यपदार्थ को कैसे ग्रहण कर सकता है अर्थात् हरेक व्यक्ति की क्षमता और शक्ति एक समान नही हो सकती।
करम रेख मेटी नहिं जाई[5]–	भाग्य को कोई बदल नही सकता।
सिंह को भच्छ सृगाल न पावे[6]–	सियार सिंह के भोजन को नही पा सकता अर्थात् सब की प्रकृति और शक्ति एक समान नहीं होती।
सौ गाहे सुआ पढ़े, अन्त बिलाई खाय[7]–	अत्यन्त परिश्रम से तोते को पढाओ, परन्तु अन्त मे उसे बिल्ली खा लेगी, अर्थात् सारा परिश्रम करने पर भी अन्त मे उसका कोई परिणाम नही निकलता।
सूनो घर को पाहुनो, ज्यो आवै त्यो जाय[8]–	खाली घर मे आया अतिथि जैसे आता है, वैसे ही लौट जाता है अर्थात् उसका आना-जाना बिलकुल व्यर्थ ही होता है।

१. विनय०, १९६
२. वही, २२६
३. सूर०, २७
४. वही, ३२
५. वही, ४४
६. वही, ६४
७. अग्र० कुंडलियां, १/८
८. वही, १/१३

प्रीतम बात न बूझई, धरो सुहागिन नाम[1]- पति तो उससे बात तक नहीं करता और वह अपने को सुहागिन कहती है अर्थात् यथार्थमें कुछ भी नहीं है।

कुँआ मे मेढुका कहै समुद्र की बात[2]- कुएँ में पड़ा हुआ मेंढक समुद्र की बात करता है अर्थात् कुछ गुण न होते हुए भी बढ़-चढ़कर बातें करता है।

अग्रस्वामी ने अपनी कुंडलियों में अनेक कहावतों और लोकोक्तियों का दृष्टान्त देकर ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि दार्शनिक तथ्यों और सामान्य नीति, कथन का विस्तृत विवेचन किया है। इस कारण कुंडलियों की भाषा में अत्यन्त सरलता, सुबोधता, और अर्थ-व्यंजकता की प्रधानता मिलती है।

छन्द-योजना

कवि के हृदय से निःसृत उद्गार अपनी लयात्मकता के साथ जिस सुनियोजना के अधीन होकर व्यक्त होते हैं, उसे छन्द कहते हैं। यह छन्द काव्य की विशेष प्रवृत्ति का सूचक होता है अर्थात् 'प्रकार-विशेष' के काव्यात्मक प्रवाह को 'छन्द-विशेष' में ही बाँधने का विधान है। इससे अभिव्यक्ति में सौष्ठव आता है और रचना की प्रभावोत्पादकता बढ़ती है।

छन्द' शब्द का ठेठ साधारण अथवा कोशगत अर्थ है 'बन्धन'। काव्य-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द 'छन्द' में भी उसका यही अर्थ गृहीत है। कविता की गति को आबद्ध करने वाले नियम ही छन्द हैं। परन्तु इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि छन्द में काव्य की गति में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता, अपितु उससे उसमें व्यवस्था आती है। कविता और छन्द का सम्बन्ध बताते हुए कलाकार कवि श्री सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है—

"कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते-जिनके बिना वह अपनी बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है–उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियन्त्रित साँसें नियन्त्रित हो जाती, तालयुक्त हो जाती, उसके स्वर में प्राणायाम, रागों में स्फूर्ति

१. अग्र० कुंडलिया, १/१८ २. वही, २/५५

आ जाती, राग की असम्बद्ध झकारें एक वृक्ष में बँध जाती, उससे परिपूर्णता आ जाती है।"[१]

ब्रजभाषा के आधुनिककालीन रससिद्ध कवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने पद्यमय काव्य पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा है—"काव्य शब्द एक प्रकार से पद्य-काव्य के लिए रूढ सा हो गया है। इसका मुख्य कारण यही है कि छन्द की लय का जो एक अपना आनन्द है, वह काव्यानन्द मे मिलकर उसको अधिक बढा देता है। लय की रमणीयता कुछ ऐसी व्यापक वस्तु है कि वे पक्षीगण भी जिनका गाना सुखद माना जाता है, बँधी हुई लय मे ही अपना हृदयोद्गार निकालते हैं। मेरी समझ मे छन्दोबद्ध कविता के निमित्त छन्दो का सुशृङ्खल, सुढाल तथा नियम सयुक्त एव विषयानुकूल होना परम आवश्यक है।"[२]

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने छन्दो की उपयोगिता पर विचार करते हुए लिखा है—"छन्द केवल उत्तेजना, उत्प्रेरणा एव उद्दीपन का ही कार्य नही करता, सयम, नियम और अधिकृत क्रमयोजना में भी योग देता है, क्योंकि स्वय छन्द का लयाधार निश्चित और सयत होता है। छन्द के किनारो मे बँधकर कविता की धारा वेगवती ही नही होती है, सुनियन्त्रित और अनुक्रम से तरगायित भी होती है।"[३]

छन्द, कविता का नैसर्गिक परिधान है, उसमे युक्त कविता ही सच्चे अर्थों मे कविता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस सदर्भ मे अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है—"जिन पक्तियो मे वर्णों या मात्राओ की सख्या नियमित होती है, वे छन्द कहलाती हैं और छन्द मे जो कुछ कहा जाता है, वह पद्य कहलाता है।"[४] द्विवेदी जी का यह कथन सम्भवत: आचार्य विश्वनाथ के इस कथन पर आधृत है—"छन्दोबद्धपदं पद्य।"[५]

ऋषियो द्वारा स्वीकृत षड् वेदागो मे छन्द भी एक है।[६] छन्द का लक्षण बताते हुए यास्काचार्य ने लिखा है—छन्दामिच्छादनात्।[७] इसकी व्याख्या करते

१. पल्लव, प्रवेश, पृ० २१
२. बीसवें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भाषण, पृ० २९-३०
३. डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक काव्य मे छदयोजना, पृ० ५५
४. प० महावीरप्रसाद द्विवेदी : रसज्ञरंजन, पृ० ११
५. आचार्य विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, ६-३१४
६. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। मुण्डकोपनिषद्, १-१-५, पृ० ३१, ईशादिदशोपनिषद् सग्रह:
७. निरुक्त (निघण्टु), दैवतकाण्ड, अ० ११/२, पृ० ५८३

हुए कहा गया है कि मन्त्र छन्दोमय होते हैं और मृत्यु से भयभीत देवताओं ने इन मन्त्रों से अपनी आत्मा को आच्छादित किया था छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है।[1] व्याकरण के अनुसार छन्दातीतिछन्द' अर्थात् जो भावो का सवरण करे या हृदय को आह्लादित करे, वही छन्द है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र म 'छन्दोयुक्त समासेन निबद्ध वृत्तमिष्यते'[2] वाक्य द्वारा वृत्त को छन्दोयुक्त कहा है और उसके अगल श्लोक मे ही यह बताया है कि छन्दहीन कोई शब्द नही होता तथा शब्द से रहित कोई छन्द नही होता—'छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्द शब्दवर्जित ।'[3]

पाश्चात्य विद्वानो मे इस पर सर्वप्रथम विचार करने वाले अरस्तू हैं जिन्होंने कहा है कि छन्द वह रीति है जिससे विविध शब्द एक लय से ध्वनित किये जायें।[4] दूसरे विचारक कॉलरिज का कथन है कि छन्द साधारण भाव एव ध्यान दोनो मे स्फूर्ति लाता है तथा इसकी सवेदनशीलता को बढाता है।[5] इनके अतिरिक्त ब्लेयर, गेटे, आर० ए० रिचर्ड्स आदि सभी प्रसिद्ध विद्वानो ने छ द को काव्य के लिए अनिवार्यता प्रतिपादित की है। ससार के समस्त साहित्य का आरम्भ छन्दमयी वाणी मे ही हुआ। वेदो मे भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। लेकिन सस्कृत म सर्वप्रथम मुनि वाल्मीकि के मुख से एक क्रौञ्चमिथुन पर शराघात करते देखकर यह अनुष्टुप छन्द निकला था—

मा निषाद् प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती: समा ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ॥[6]

वैदिक छन्दो से भिन्न इस छन्द को श्रवण कर देवों को तो आश्चर्य हुआ ही, स्वय महामुनि भी आश्चय मे अभिभूत होकर बोल पड़े—'किमिद व्याहृत मया' अर्थात् यह मैंने क्या कह डाला ?

१. देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयी विद्या प्रविशंस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयन्स्तच्छन्दसा छन्दस्त्वम् । छान्दोग्योपनिषद्, अ० १, खण्ड ४, मन्त्र २, पृ० १२, स० हरिनारायण आप्टे

२. नाट्य शास्त्र, १४-४४, टीका अभिनवगुप्ताचार्य, गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, पृ० २३५

३. वही, १४-४५

४. Aristotle's Theory of Poetry and Fine Art, (The Poetics, by S H. Butcher p. 141)

५. Principles of Literary Criticism, P. 143.

६. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग २, श्लोक १५

छन्द दो प्रकार के होते हैं—वैदिक और लौकिक। वैदिक छन्दों का प्रयोग केवल वेदों में हुआ है, जैसे–गायत्री, उष्णिक इत्यादि। वेदों से अलग शास्त्र, पुराण और काव्य आदि ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले छन्दों को लौकिक कहा गया है। लौकिक छन्दों के तीन भेद होते हैं—(१) मात्रिक (जाति), (२) वर्णिक (वृत्त) और (३) आक्षरिक। 'मात्रिक' छन्दों में लघु, गुरु की गणना होती है, 'वर्णिक' में गणों की तथा 'आक्षरिक' में केवल अक्षर गिने जाते हैं। हिन्दी में लौकिक छन्दों के मात्रिक और वर्णिक केवल दो भेद किए गए हैं। कवित्त आदि छन्द जिनमें अक्षरों की गणना होती है, वर्णिक के अन्तर्गत ही है। वर्णिक के मात्रिक छन्दों में भी मात्रिक छन्द ही हिन्दी में विशेष प्रयोग में लाये जाते हैं, वर्णिक का प्रयोग बहुत कम होता है। वास्तव में काव्य का सौन्दर्य मात्रिक छन्दों में ही प्रकट होता है। वर्णिक छन्द तो हिन्दी के लिए भार के समान लगते हैं।

मध्ययुगीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य के शृङ्खलान्तर्गत परिगणित काव्यों में उनके रचयिताओं द्वारा विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है, जो उनकी काव्य-कलात्मक प्रौढ़ता का द्योतक है। इसमें उनका दृष्टिकोण विभिन्न स्तर एवं वर्ग के जन-समुदाय को परितुष्ट और हिन्दी काव्य-भण्डार की श्रीवृद्धि करना था। राम-काव्य के मूर्धन्य गायक गोस्वामी तुलसीदास जी का अपने समय की समस्त काव्य-शैलियों एवं छन्द-विधान पर अगाध-अधिकार था। वे भाषा के जितने बड़े शिल्पी थे, छन्दों के भी उतने ही बड़े कलाकार थे। उन्होंने अपने काव्यों में सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग करके अपनी इस असाधारण क्षमता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। प्रतिपाद्य संदर्भ में उनके तीन काव्य-ग्रन्थों--कवितावली, गीतावली और विनयपत्रिका के छन्द-विधान पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

कवितावली—यह सवैया-मनहरण-मनहर-घनाक्षरी-छप्पय-झूलना छन्दों का कथानक निरपेक्ष संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें रामकथा के प्रमुख एवं मार्मिक स्थलों के सरस और रोचक वर्णनात्मक वृत्तों के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थिति के परिचायक, आत्मवृत्ति के सूचक, दैवी आपदाओं के द्योतक और स्वतन्त्र वर्णन विषयक छन्दों का संकलन किया गया है। इसमें अनेक दैवी आपदाओं तथा विभिन्न स्थानों और समय पर लिखे गये छन्द इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि यह रचना एक लम्बे कालक्षेत्र पर फैली हुई है। ग्रन्थ राम-कथा के परम्परागत विभागों के अनुसार सात काण्डों में विभाजित है। इन काण्डों में क्रमशः २२, २८, १, १, ३२, ५८ और १८३ छंद प्रयुक्त हुए हैं। इस विभाजन से यह स्पष्ट होता है कि कवि ने जितना विस्तार उत्तर काण्ड को दिया है उतना सब काण्डों को सम्मिलित रूप

से भी नही प्राप्त हो सका है। उत्तर काण्ड में कथानक का अश बिलकुल नही है। उसमें व्यक्तिगत प्रसंग जिसमे दैन्य, आत्म-समर्पण और आत्मवृत्त पर अप्रत्यक्ष प्रकाश डालने वाले तथा समसामयिक परिस्थितियो की ओर सकेत करने वाले छन्दो का प्राचुर्य है। बालकाण्ड के २२ छन्दो मे राम के बाल-सौंदर्य का चित्रण है। यह एक स्फुट काव्यग्रन्थ होने के कारण इसमे राम-कथा का कोई व्यवस्थित रूप सामने नही आता है। कुछ विद्वानो का यह भी अनुमान है कि तुलसीदास द्वारा विभिन्न समयो पर प्रणीत कवित्त और सवैये उनके भक्तो द्वारा कवितावली मे सकलित कर दिये गये हैं। इसीलिए कथागत एकरूपता न होकर वणन मे विविधता है। प्रत्येक काण्ड मे छन्दो का अनुपात इतना बेमेल होने का भी यही प्रमुख कारण लगता है। कवितावली के ही अन्तर्गत परिशिष्ट रूप मे हनुमान बाहुक को भी स्वीकार कर कई समीक्षको ने उसे उसका एक अग मान लिया है। इस स्थान मे ४४ छन्दो मे हनुमान जी की वदना की गयी है तथा इसमे भी छप्पय, घनाक्षरी तथा सवैये और झूलना छन्दो के प्रयोग हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इसमें व्रजभाषा के उपयुक्त सवैया, घनाक्षरी छन्दो के ही.विशेष प्रयोग किए हैं। कविता-वली की छन्द-योजना के सम्बन्ध मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के विचार द्रष्टव्य हैं—"मनहरण, रूपघनाक्षरी, सवैया, छप्पय और झूलना इस पुस्तक के प्रयुक्त छन्द हैं। सवैया कई प्रकार के हैं। मालती और उर्मिला सवैया के अति-रिक्त कुछ मिश्रित चरणो के सवैयो का प्रयोग भी पाया जाता है, जिन्हे पिंगल मे उपजाति कहते हैं। कवितावली मे कही-कही तो चारो चरणो मे विभिन्न सवैयों के पद मिले हुए हैं, उपजाति सवैया बनाने मे एक मेल के सवैयो का ध्यान नही रखा गया है। कोई २२ अक्षर का है तो कोई २४ का। मनहरण कवित्तो म धारा का ध्यान बहुत रखा गया है, पर कही-कही प्रवाह उखड़ा हुआ और शिथिल भी है।"[1]

गीतावली—गोस्वामी जी का यह ग्रन्थ भी स्फुट पदो का सग्रह है जो रामकथा के सुप्रसिद्ध सात सोपानो से सम्बद्ध है। इसकी छन्द-योजना भी आनु-पातिक दृष्टि से सम न होकर विषम है। विषम काण्डो मे छन्दों की सख्या अलग-अलग है। बालकाण्ड सबसे बड़ा है जिसमे १०८ पद हैं। अन्य काण्डो मे क्रमशः ८९, १७, २, ५१, २३ और ३८ पद हैं। किष्किन्धा काण्ड की कथा को कवि ने केवल दो पदो मे ही वर्णित कर दिया है। छन्दों की इस विषमता एवं कतिपय प्रमुख घटनाओ की उपेक्षा से पात्रों के चरित्र-विकास मे भी बाधा पड़ी है और उनमे निखार नही आ सका है। गीतावली की छन्द योजना और विषय-वस्तु के

१. कवितावली, अन्तर्दर्शन : स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ५९

प्रस्तुतीकरण पर बहुत कुछ सूरदास की छाप है। विशेषत: वात्सल्य के प्रसंगों में तुलसीदास, कवि सूर की ओर अधिक आकृष्ट लगते हैं। यहाँ एक उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता।
दूध भात को दोना दैहौं, सोने चोच मढैहौं।
जब सिय सहित विलोकि नयन भरि, राम लखन उर लैहौं।
अवधि समीप जानि जननी जिय, अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पांय परि पूछति, प्रेम मगन मृदु बानी ॥[1]

प्रस्तुत पद में कौवे द्वारा सगुनौती पर विचार, दूध भात का दोना देना, सोने से चोंच मढ़ाना तथा गणक बुलाकर मुहूर्त निकलवाना, जन विश्वास और लोकजीवन के नैत्यिक दृश्य हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त पद मे भी कवि ने लोकजीवन की झांकी प्रस्तुत की है जिसमें वात्सल्य छलक रहा है।

गीतावली मे वर्णन की अतिशयता से भी छन्द-योजना पर प्रभाव पडा है। अनुभूति का जो कसाव छन्द मे अभिव्यक्त होना चाहिए उसका निर्वाह नही हो सका है और अभिव्यक्ति की तीव्रता एव प्रबन्धात्मकता दोनो को क्षति पहुँची है। गेयनत्व जो छन्द योजना का प्रमुख उद्देश्य होता है इस अतिशयता से आहत और प्रभावित हुआ है। गीतावली में कवि ने पदों की २१ रागों की योजना की है। रागों का क्रम इस प्रकार है—आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोडी, सारग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, चचरी, बसन्त और रामकली। ये राग विषय और भाषा की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं। गीतावली की रचना मुक्तक रूप से गीतों मे हुई है। गीतकाव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से होती है, उसमे विचारो की एकरूपता रहती है। आराध्य से आत्मनिवेदन के उल्लास मे रचना गेय हो जाती है और मानव के घनीभूत हो जाने के कारण सक्षिप्तता आ जाती है। फलस्वरूप गीतकाव्य मे आत्माभिव्यक्ति, विचारो की एकरूपता, सगीत और संक्षिप्तता—ये चार तत्व आवश्यक हो जाते हैं। गीतावली में संगीत तो भरपूर है किन्तु अन्य तत्वों की सम्यक् रक्षा न होकर उनकी अवहेलना सी हो गयी है। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन द्रष्टव्य है—"गोस्वामी जी की रुचि काव्य के अतिरंजित या प्रगीत स्वरूप की ओर नहीं थी। गीतावली गीति-काव्य है, पर

१. गीतावली, लंकाकाण्ड, पद सं० १९

उसमें भी भावों की व्यंजना उसी रूप में हुई है जिस रूप में मनुष्यों की उनकी अनुभूति हुआ करती है या हो सकती है। वह आदि से लेकर अन्त तक कथा ही को लेकर चलती है। उसमें या तो वस्तु व्यापार वर्णन है अथवा पात्रों के मुंह से भाव-व्यंजना। अत यह भी वाह्यार्थ निरूपक हो कही जायगी।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्ल जी गीतावली को वाह्यार्थ निरूपक गीतिकाव्य मानते हैं। विशुद्ध गीतिकाव्य की कसौटी पर गीतावली खरी नहीं उतरती।

विनयपत्रिका—ग्रन्थ के कुल २७९ पदों में कवि ने आत्मनिवेदन का बड़ा ही प्रौढ़ और भावोत्तेजक रूप प्रस्तुत किया है। गीतिकाव्य की दृष्टि से यह हिन्दी का एक उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ है। विद्वानों में इसके स्वरूप को लेकर विवाद है कि यह एक स्फुट काव्यग्रन्थ है या सम्यक् ग्रन्थ है। स्फुट पदों के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इसमें पदों की व्यवस्था किसी क्रम से नहीं है और विचारों का तारतम्य भी नहीं मिलता है। पूर्ण ग्रन्थ मानने वाले विद्वानों का तर्क है कि इन पदों का एक नियोजित क्रम है और गणेशवंदना से ग्रन्थ का प्रारम्भ होना इस बात का सूचक है कि यह एक पूर्ण रचना है। पंचदेवोपासना से ग्रन्थ का समारम्भ हुआ है। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव के अतिरिक्त राम रूपी विष्णु की वंदना आद्योपान्त हुई है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि ग्रन्थ में दोनों का समन्वयात्मक रूप उभरा है। ऐसा लगता है कि जैसे कवि ने पदों की रचना तो भिन्न भिन्न समय पर ही की किन्तु नियोजना भी उसने स्वयं ही की जिससे इन स्फुट पदों में भी एक व्यवस्था आ गयी है।

गोस्वामी जी की छन्द-योजना पर विचार करते हुए डॉ० राजपति दीक्षित ने लिखा है—"गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली एवं विनयपत्रिका के छन्द विधान के विषय में कुछ कहना ही नहीं। इन ग्रन्थों में सन्निविष्ट पदों का वास्तविक मर्म विविध राग-रागिनियों का विशेषज्ञ सहृदय ही पा सकता है। पर इन तीनों कृतियों के छन्दों के द्वारा काव्य और संगीत का समन्वय तथा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध समझने में किसी विशेष प्रयास की अपेक्षा नहीं। गोस्वामी जी ने गीतावली तथा विनयपत्रिका में दो विभिन्न प्रकार के छन्दों की समृष्टि कर एक तीसरे प्रकार का नया छन्द बनाने की स्वतन्त्र रुचि दिखाई है। गीतावली में दोहा के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो मात्राएँ बढ़ाकर तथा विनयपत्रिका में दो मात्राएँ घटाकर नए ढंग के छन्द भी निर्मित किए गए हैं।"[2]

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८५

२. डॉ० राजपति दीक्षित · तुलसीदास और उनका युग, पृ० ४१८

विनयपत्रिका की छन्दगत विशेषता का प्राणतत्व उसका सङ्गीत समन्वित होना है। इस सदर्भ में श्री वियोगी हरि ने लिखा है कि महात्मा तुलसीदास कृत विनयपत्रिका भी सङ्गीत का एक उत्कृष्ट आदर्श है। यदि इसे वे ऐसे छन्दो में रचते, जो सङ्गीत सङ्गत नही है, तो वे अपने हृदय के इतने मनोरम और सच्चे भाव कदाचित व्यजित न कर सकते और जनसाधारण मे उन पदो का इतना प्रचुर प्रचार भी न होता, क्योकि पडित मडली चाहे न भी अपनावे, पर साधारण जनता गाने की चीजें बड़े चाव से तुरत कण्ठस्थ कर लेती है। आज भी हम प्रायः देहातो मे सूरदास और तुलसीदास के भजन गाते हुए लोगों को देखते हैं। कबीरदास के भजनो का तो सर्वत्र साम्राज्य ही है। विनयपत्रिका मे जितने पद हैं वे सभी गाने योग्य है। वे पद ऊँचे रागों मे गाए जाते हैं। कौन पद किस राग-रागिनी में गाया जा सकता है, इसका भी पूरा विचार रखा गया है। स्वर-ताल समझने वाले सज्जन ही विनयपत्रिका के पदो को बखूबी समझ सकते हैं। इन पदो की रचनाओं से भली भाँति पता चलता है कि गोस्वामी जी सङ्गीत-कला के कितने भारी पण्डित थे।"[1]

विनयपत्रिका की छन्दयोजना पर अपनी दृष्टि डालते हुए डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि विनयपत्रिका की रचना गीतिकाव्य के रूप मे है। गीति-काव्य अन्तर्जगत काव्य है। उसमे विचारो की एकरूपता संक्षिप्त होकर व्यक्तित्व को साथ ले सङ्गीत के सहारे प्रकट होती है। सङ्गीत का आधार होने के कारण राग-रागिनियो का ही प्रयोग किया गया है। हर्ष और करुणा की भावना में जयतश्री, केदारा, सोरठ ओर आसावरी, वीर की भावना मे मारू और कान्हरा, शृङ्गार की भावना मे ललित, गौरी, बिलावल, सूहो और बसन्त, शात की भावना मे रामकली, वर्णन मे विभास, कल्याण, मलार और टोडी का प्रयोग है। भावना विशेष के लिए विशेष रागिनी मे रचना की गयी है। इस तरह इक्कीस रागो में विनयपत्रिका का आत्मनिवेदन है। उन रागो के नाम हैं—बिलावल, धनाश्री, रामकली, बसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित, टोडी, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण।[2] इस ग्रन्थ मे स्तोत्र और पदो के सहारे तुलसीदास ने अपने समय की भक्ति-परम्परा की रक्षा की है।

भक्तप्रवर सूरदासकृत रामचरितावली मे कुल २१२ पद हैं जिनमे कवि ने रामचरित्र का बखान किया है। इस ग्रन्थ का आधार भी लोकविश्रुत राम-कथा

१. विनयपत्रिका (भूमिका भाग) : सं० वियोगी हरि, पृ० ५२
२. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४१८

है। कवि ने इस ग्रन्थ में कथा का रूप क्रमबद्ध न रखकर स्फुट रूप में ही रखा है। ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने हरि के मंगलाचरण से किया है और फिर वह रामजन्म से कथा का आरम्भ करता है। सूरसागर का अंश होने के कारण रामचरितावली का प्रणयन भी पद-शैली में ही हुआ है। छन्दों का स्वरूप तुलसीदास की गीतावली और विनयपत्रिका जैसा ही है। गीततत्व का निर्वाह भी बहुत कुछ उसी प्रकार का है। कतिपय पद आवश्यकता से अधिक लम्बे हो जाने के कारण आत्माभिव्यक्ति की तीव्रता को ठेस पहुँचाते हैं तथा उनसे विषयगत प्रबन्धात्मकता की भी हानि हुई है। सूर रामचरितावली के पद गेय शैली में होने के कारण विभिन्न राग-रागिनियों में रचे गये हैं। इस संग्रह में जिन रागों का समावेश हुआ है, उनके नाम हैं—राग बिलावल, राग कान्हरा, राग सारंग, राग रामकदारा, राग रामकली, राग आसावरी, राग राजनट, राग गूजरी, राग मारू, राग गौरी, राग धनाश्री, राग मारठ, राग मलार, राग राजश्री, राग जैतश्री, रूप राग बसंत। इन रागों के दर्शन से कवि का चरम संगीत का ज्ञान व्यंजित होता है। छन्द-विधान की दृष्टि से रामचरितावली में आद्यन्त कवि की कलात्मक प्रौढ़ता एवं पूर्णाधिकार के दर्शन होते हैं।

सेनापति कृत कवित्तरत्नाकर भी स्फुट काव्य संग्रह है। इसमें कुल पाँच तरंग हैं जिनमें रामकथा का निरूपण चौथी तरंग में ही किया गया है। इस तरंग में कुल ७६ छंद हैं—६ छप्पय तथा ७० कवित्त। छप्पय मात्रिक छन्द है तथा कवित्त वर्णिक छन्द। श्रेष्ठ कलाकार के छन्द विधान में केवल छन्द-विधान के नियमों की पाबंदी ही नहीं रहती, अपितु उसमें प्रसंगानुकूल लय और ताल भी निनादित होते रहते हैं। जैसे कोयल की काकली में, निर्झर के नाद में प्राकृतिक संगीत स्वयमेव समाविष्ट होता है, वैसे ही उच्च कलाकार विरचित छंदों में भावानुरूप नैसर्गिक ध्वनि होती है। सेनापति एक उच्च कोटि के कवि थे और उनका छंदों पर अगाध अधिकार था। इसी कारण उनके कवित्तरत्नाकर की छंद-योजना अत्यन्त ही प्रौढ़ एवं कवि प्रतिभा से दीप्त है। दो-एक कवित्तों में छंदोभंग दोष भी मिलते हैं यद्यपि उसे प्रतिलिपिकारों की भूल कही जा सकती है। यति-गति सम्बन्धी दोष भी कुछ स्थलों पर द्रष्टव्य हैं[1]—

१. भूप सभा भूपन, छिपावौ पर दूपन, कु-
बोल एकहू खन कहे न देह पाइ कैं।

---

१. कवित्तरत्नाकर, भूमिका, पृ० ५४

२. गरजत घन, तरजत है मदन, लर–
जत तन मन नीर नैनति बहत है।

राम-कथा के कुछ विशिष्ट स्थलो का चयन कर केवल ७६ छन्दो मे कवि ने जो कथात्मक बोध और प्रभाव उत्पन्न किया है, वह सर्वथा सराहनीय है।

अग्रदास रचित ध्यानमंजरी, ग्रन्थावली रचनाओ मे मुख्यतया मात्रिक छन्दों– दोहा, रोला, कुण्डलिया आदि का व्यवहार हुआ है। अष्टयाम–पदावली मे दोहा, सवैया, कवित्त के स्फुट प्रयोग हुए हैं। कवि ने प्रधानतया उसकी रचना विविध रागो के अनुसार की है। पदावली मे ललित, देवगन्धार, मंगल, कान्हर, सारग, मारू, जैतश्री, मल्हार, बिलावल, आसावरी, टोड़ी, गौरी आदि विविध रागो के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। रामजन्मोत्सव और बधाई का वर्णन गौरी, आसावरी, टोड़ी रागो मे हुआ है। टोड़ी राग मे रामजन्म का वर्णन द्रष्टव्य है–

राम-जन्म आनन्द बधाई।
सुरतरु सुधा धेनु चिन्तामणि मिलत परस्पर दूब बँधाई।[1]

कवि ने बिलावल राग में अयोध्यापुरी की महिमा का मधुर गान किया है। पदावली मे कान्हर, ललित रागो में रूप-सौदर्य और मल्हार मे हिंडोला आदि का वर्णन सफलतापूर्वक किया है। मल्हार राग मे हिंडोला का एक दृश्य देखिए–

सरयू सरिता राज सवन ते पुरी शिरोमणि रामपुरी।
वेदनहूँ बहु भेदन गाई महिमा जाकी अघट घरी।[2]

जनकपुर लागत तीज सुहाई।
रंग रगीली अतिहि छबीली सब मिलि झूलन आई।[3]

कवि ने पदावली मे कवित्त, सवैया, वर्णिक छन्दो के भी स्फुट प्रयोग किये हैं। उबटन लगाते समय खुले अगो की छवि का वर्णन निम्नलिखित कवित्त में द्रष्टव्य है—

श्री प्रसाद प्यारी ओर प्यारे और चारुशीला अगन,
सुगन्धमय उबटनों लगावती।
दोउन के खुले गात अंगन छवि झलमलात मानो शशि-
कोटि सुधा किरण को लजावती।[4]

---

१. अग्रदास, अष्टयाम पदावली, पद सं० १३०
२. वही, पद स० १२५
३. अग्रदास, अष्टयाम पदावली, पद १०१
४. वही, पद १३

उक्त रचना में कवि द्वारा व्यवहृत इन वर्णिक छन्दों के अत्यल्प प्रयोग ही हुए है। अग्रदास द्वारा विरचित एक अन्य अप्रकाशित कृति पदावली की रचना भी रागानुसार की गई है। ध्यानमंजरी मे ८० रोला छंदो के प्रयोग किये गये हैं। इसमें मुख्य रूप से राम और सीता के रूप-सौंदर्य का वर्णन नख-शिख शैली में हुआ है। अयोध्या का प्राकृतिक सौंदर्य, सरयू माहात्म्य, भक्तिभावना आदि के भी सुन्दर वर्णन हुए हैं। पुस्तक का आरम्भ कवि ने रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए निम्न-लिखित रोला छन्द में किया है—

सुमिरो श्री रघुवीर धीर रघुवंश विभूषण।
शरण गहे सुखराशि हरन अघसागर दूषण ॥[1]

सीता जी के रूप-वर्णन सम्बन्धी दो एक छंद द्रष्टव्य है–

पाटन की लर और बड़े बड़े उज्वल मोती।
सघन तिमिर के मध्य मनो उडगण की ज्योती ॥
रतन रचित मणि जटित शीश पर बिन्दा छाजें।
ललित कपोल सुयुगल कर्ण ताटंक विराजें ॥[2]

कवि ने अंतिम छंद मे ग्रन्थ-रचना का हेतु निम्न रूप मे स्पष्ट किया है–

ध्यान मंजरी नाम सुनत मन मोद बढ़ावै।
श्री रघुवर को दास मुदित मन अग्र सों गावै ॥[3]

अग्रदास ने स्वरचित ग्रन्थावली के दोनो खण्डो मे कुण्डलिया मात्रिक छंद का प्रयोग किया है। पहले खण्ड मे २५ कुण्डलियाँ है और दूसरे मे ४७। दोनों खंडो मे क्रमानुसार १–७२ तक की संख्याएँ दी गयी हैं। "कुण्डलिया छंद दोहा और रोला छद के योग से बनता है। इन दोनों छदो का सम्बन्ध अभिन्न करने के लिए दोहे का अंतिम चरण रोला के आदि में आवृत होता है और रोला का अंतिम शब्द समूह दोहे के प्रारम्भिक शब्द-समूह के समान रखा जाता है।"[4] कुल छः चरण होते हैं जिनमे प्रथम दो चरण दोहा और बाद के चार चरण रोला के होते हैं। अग्रदास के कुण्डलियो की रचना कुछ भिन्न रूप में हुई है। इन कुण्डलियो में प्रथम चरण तो दोहा का है, चार चरण रोला के हैं और अन्त मे एक दोहा है जिसका दूसरा चरण कुण्डलिया के प्रथम चरण का आवृत्तिमात्र है। इस प्रकार कवि द्वारा व्यवहृत कुण्डलिया छंद की रचना छंद शास्त्र में वर्णित कुण्डलिया से भिन्न है।

१. अग्रदास, ध्यानमंजरी, छंद सं० १
२. वही, छंद सं० ५२-५३
३. वही, छंद सं० ८०
४. डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्दयोजना, पृ० ३२९

अग्रदास ने इस कुण्डलिया छंद को 'कुण्डलिया छप्पय' के नाम से अभिहित किया है। इसे कुण्डलिया नाम से अभिहित करना ठीक ही है, क्योंकि उसमे दोहा–रोला का मिश्रण है और छप्पय इसलिए कि मूलत: उसमे छ: चरण ही हैं–अंतिम चरण तो पहले चरण की केवल आवृत्तिमात्र है।

अग्रदास ने इन कुण्डलियो मे जीवन की अस्थिरता, नीति, उपदेश, जीव, ब्रह्म, माया आदि का अन्योक्ति रूप में सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। ये छन्द उनकी गहन अनुभूति और उत्कृष्ट मार्ग-निदर्शन के परिचायक हैं। यहाँ पर कवि की कुण्डलियो के दो-एक उदाहरणो से उसकी रचना-वैशिष्ट्य का बोध हो जायेगा। जीव का प्रबोधन करते हुए वे कहते हैं–

जैसे कता घर रहो, तैसे गयो विदेश।
तैसे गयो विदेश, लोक परलोक न साध्यो।
पुर पट्टन बहु फिरो, ताप तीनो मिल दाह्यो।
कियो न सनेही श्याम, भजन विन जन्म गवाया।
मानो गोय चौगान, जहाँ तह दश दिशि धायो ॥[१]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कवि ने उनकी रचना परंपरित कुण्डलियो से कुछ भिन्न रूप मे की है।

नाभादास ने अष्टयाम मे दोहा और चौपाई छदो के प्रयोग किये हैं। कवि ने ग्रथ मे दोहा और चौपाई का यथास्थान उल्लेख करते हुए अपनी काव्य-रचना की है। चौपाई छंद का प्रयोग हिन्दी की प्राय सभी रसो की रचनाओ के लिए हुआ है। दोहा का प्रयोग मुक्तक रचनाओ के लिए विशेष रूप से होता है। कवि के इस ग्रथ में ५०० से अधिक दोहा–चौपाई छद वर्णित है जिनमे दोहों की सख्या कम है। इन छदों मे रामचन्द्र जी के आठ पहर की दिनचर्या–जागरण से लेकर शयन तक, विशद रूप मे वर्णित है। इन छदों में उनके पारिवारिक सम्बन्धों, राजकीय वैभव, मनोविनोद, हास-परिहास आदि का चित्रण अत्यन्त मनोरम और आकर्षक है। यहाँ पर ग्रन्थ से इन छदो के दो-एक उदाहरण देना समीचीन होगा। दोहा का एक उदाहरण देखिए जिसमें ग्रन्थ-रचना का हेतु बताया है —

भवसागर दुस्तर महा, मोहि मगन लखि पाय।
सदय हृदय जिनको सरस, तब इमि मह रजाय ॥[२]

१. श्री अग्र ग्रंथावली, प्रथम खंड, कुडलिया छप्पय सं० २०
२. नाभादास, अष्टयाम, छंद सं ५

निम्नलिखित चौपाई मे कवि ने रामचन्द्रजी की जलक्रीडा का वर्णन किया है–

हास विलास परस्पर करही। जल फूही कर बहु सुख भरही॥
यह विधि करि स्नान दुलारे। पुनि जल तजि बाहर पगु धारें॥[१]

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियों ने छंद-प्रयोग मे अधिकतर प्राचीन परम्परा का ही पालन किया है जिसमे मात्रिक छदो की प्रधानता है। दो-एक कवियो ने अवश्य पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए कुछ नवीन प्रयोग भी प्रस्तुत किए हैं।

अलकार-विधान

आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' मे अलकार पर विचार प्रकट करते हुए कहा है– "काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान्प्रचक्षते।"[२] अर्थात् काव्य की शोभा बढाने वाले धर्मों को अलकार कहते हैं। दण्डी से पूर्व भामह और उनसे भी पूर्व सर्वप्रथम भरतमुनि ने अलकारों पर विचार किया था। उनके नाट्यशास्त्र मे षोडश अध्याय ही 'अलकार लक्षण' सज्ञक हैं। परन्तु उसमे अलकार की विधिवत् परिभाषा नही है। वास्तव मे दण्डी की परिभाषा ही अलकारो का सहज ग्राह्य रूप प्रस्तुत करती है। दण्डी के उपरान्त वामन ने काव्यालकार सूत्र म काव्य मे निहित सौंदर्य को अलकार की सज्ञा दी है 'सौन्दर्यमलकार।'[३] ध्वन्यालाक म आनन्दवधन न शब्द और अथ का काव्य के अग बनलाकर अलकारो को कटकादि के समान आभूषण निरूपित किया। यथा–*'अगाश्रितास्त्वलकारा मन्तव्या. कटकादिवत्।'*[४] आचाय विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' मे अलकारो को काव्य के उत्कर्ष का हेतु कहा है—

वाक्य रसात्मक काव्य, दोषास्तस्यापकर्षका।
उत्कर्षहेतव. प्रोक्ता गुणालकाररीतय॥[५]

अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है, दोष उसके अपकर्षक हैं तथा गुण, अलकार और रीति काव्योत्कर्ष के हेतु हैं।

अलकार का सामान्य अर्थ है—गहना या आभूषण। जिस प्रकार आभूषणो को धारण कर कोई व्यक्ति अपनी यत्किचित् सौन्दर्य-राशि मे थोडा उद्दीपन कर लेता है, उसी प्रकार काव्य मे अलकारो के योग से आकर्षण की अभिवृद्धि हो जाती है। यह अभिवृद्धि कभी शब्द-वैचित्र्य, कभी वर्णन-वैचित्र्य तथा कभी उक्ति वैचित्र्य

१. नामादाम, अष्टयाम, छद स० १६८, १६९
२. काव्यादर्श, २-१
३. काव्यालकार सूत्र, १-१-२
४. ध्वन्यालोक, २-६,
५ साहित्यदर्पण, १-१

के माध्यम से प्रकाश में आती है। डॉ० भगीरथ मिश्र के मतानुसार अलंकार वाणी के विभूषण हैं। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से सम्पन्न हो जाती है। अतः अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति अलंकार, कथन की कल्पित भंगिमा है। जिस उक्ति में कोई बांकपन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है। उक्ति वैचित्र्य के अनेक रूप हो सकते हैं, वे ही विभिन्न अलंकार हैं। सामान्यतया यह वैचित्र्य शब्द के विशेष प्रयोग या अर्थ की भंगिमा से सम्पादित होता है। अतः इसी आधार पर अलंकार के 'शब्द' और 'अर्थ' ये दो भेद किए जाते हैं। परन्तु ये सर्वथा अलग हो जायें, ऐसी बात नहीं। अनेक शब्दालंकारों में अर्थालंकारों की आभा विद्यमान रहती है और अनेक अर्थालंकारों के साथ चमत्कार का योग रहता है।[1] अलंकारों के सम्बन्ध में यह ध्यान में रखने की एक विशेष बात है कि जिस प्रकार कोई कुरूप स्त्री मात्र आभूषणों को धारण कर लेने से सुन्दर नहीं हो सकती, उसी प्रकार कविता अपने मूल रूप में रसात्मक सौन्दर्य से विहीन होने पर मात्र अलंकारों का संयोग पाकर उत्कृष्ट कविता नहीं कहला सकती। अलंकार काव्य के पूर्वावस्थित सौन्दर्य में उद्दीपन ला सकते हैं, उसमें अभिवृद्धि कर सकते हैं, स्वयं आकर्षण की सृष्टि नहीं कर सकते। भावोत्कर्ष, भावानुभूति की व्यंजना और रसोद्रेक के लिए अलंकारों का प्रयोग वांछनीय कहा गया है। अलंकारों के उपयोग से काव्य-मर्मज्ञता, कला-कुशलता और पाण्डित्य-प्रतिभा प्रकाश में आती है। इससे भिन्न उद्देश्य के लिए अलंकारों का प्रयोग वांछनीय है। अलंकारों से भाषा चमक उठती है और भाषा से काव्य की शोभा बहुगुणित हो जाती है। इससे काव्य में अलंकारों का महत्त्व स्पष्ट है। अलंकारों द्वारा अस्पष्ट अनुभूति सुस्पष्ट बनकर सहृदय पाठक को अभिभूत कर देती है। उपादेयता के क्षेत्र में अलंकार की यही सबसे बड़ी देन है। आचार्य केशव ने निम्न दोहा बहुत सोच समझकर कहा होगा—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन, सरस, सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजयी कविता, बनिता, मित्त॥

अलंकारों के मुख्यतः दो भेद किए जाते हैं–(१) शब्दालंकार,(२) अर्थालंकार। एक तीसरा भेद और किया जाता है जिसे उभयालंकार कहते हैं। शब्दालंकार को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है–(१) अनुप्रास, (२) यमक, (३) वक्रोक्ति, (४) श्लेष। अर्थालंकारों में–उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, प्रतीक, भ्रान्तिमान,

१. डॉ० भगीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र, पृ० १६९-१७०

संदेह, अपह्नुति, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक तथा विभावना आदि की गणना की जाती है। शब्दालंकार काव्य में शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करते हैं और अर्थालंकार अर्थगत चमत्कार। जहाँ शब्द और अर्थ सम्मिलित रूप में चमत्कारिता लाते हैं, वहीं उभयालंकार होता है।

भक्तियुगीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य के प्रणेता अत्यन्त उच्च कोटि के कवि और कलाकार हुए हैं। अतः उनके काव्य में अनायास ही अलंकारों का समावेश हो गया है। क्या तुलसी, क्या सूर, क्या सेनापति सभी ने अपने अपार काव्य-वैभव में अलंकारिक सुषमा से श्रीवृद्धि की है। जब हम प्रत्येक कवि की सम्बन्धित काव्य कृतियों से अलग-अलग उदाहरण प्रस्तुत कर यह देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इन कवि-कलाकारों ने अलंकारों के यथार्थ एवं समुचित प्रयोग से काव्यों की कमनीयता को मर्यादित किया है। आलोच्य कवियों का अलंकार विधान अत्यन्त उच्च कोटि का है। सभी रससिद्ध कवि हैं। अतः उन्होंने अपने भावोत्कर्ष एवं अभिव्यक्ति-स्पष्टता के लिए विविध अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है, किन्तु इस परिदर्शन में यह उल्लेखनीय है कि इन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग सायास नहीं किया है, प्रत्युत वे कविता के सहज प्रवाह में स्वयमेव आ गए हैं। इन काव्यों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि उनमें अलंकारों का प्रयोग साधन रूप ही हुआ है, साध्य रूप में नहीं। इनमें चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति नहीं रही है। उनकी कृतियों में अलंकारों के प्रयोग से भाव और भाषा की प्रभावात्मकता और सजीवता में यथेष्ट समृद्धि हुई है। इससे उनकी कवि-कल्पना का विशद रूप दिखायी पड़ता है। जहाँ तक अलंकारों की संख्या की बात है प्रायः सभी अलंकारों के भेदोपभेद इन कवियों में उपलब्ध हैं। यहाँ स्थान-संकोच से उनकी सविस्तार चर्चा न करके केवल कुछ प्रमुख अलंकारों के उद्धरण प्रस्तुत कर उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करने का प्रयास किया जायेगा।

शब्दालंकार—शब्दालंकार का प्रयोग शब्दों के चमत्कार पर विशेषतया आश्रित होता है। शब्दों के परिवर्तन होने के साथ ही उनका अलंकारत्व समाप्त हो जाता है। इसके सामान्यतया चार भेद किये जाते हैं—

(१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष (४) वक्रोक्ति।

अनुप्रास—आलोच्य कवियों ने अनुप्रास के सभी भेदों का प्रयोग किया है। इनके काव्य में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास की प्रधानता है। इस अलंकार का प्रयोग प्रायः सभी कवियों द्वारा बहुलता से हुआ है। कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

दनुज सूदन, दयासिंधु, दम्भापहन, दहन, दुर्दोष, दर्पापहर्ता।
दुष्टतादमन, दमभवन, दुःखौघहर, दुर्ग-दुर्वासना-नाशकर्त्ता ॥[1]

उक्त पद में द वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है। वृत्यनुप्रास का यह सुन्दर उदाहरण है।

विनयपत्रिका में लाटानुप्रास के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—"सत्यकृत, सत्यरत, सत्यव्रत सर्वदा"[2] और "विश्वविख्यात, विश्वेश, विश्वायतन, विश्व-मरजाद व्यालारिगामी"[3] मे क्रमश. सत्य और विश्व शब्दो की अनेक आवृत्तियाँ हुई हैं। कवितावली से वृत्यनुप्रास और लाटानुप्रास का एक अन्य उदाहरण देखिए—

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हे छत्रछाय,
छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचड बरिबंड बर बेष बपु,
बरिबेको बोले बैदेही बर काज के।
बोले बदी बिरद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
तुलसी मुदित मन पुर नर नारि जेते,
बार बार हेरैं मुख औध-मृगराज के ॥[4]

उक्त छंद मे छोनी और बाजे शब्दो और प, ब, म वर्णों की आवृत्तियो से शब्दों मे चमत्कार आ गया है।

गीतावली में भी अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है—

जयमाल, जानकी, जलजकर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु,
मानहु मदन माली आप निरमई है ॥[5]

उक्त पक्तियों मे ज, स, म वर्णों की आवृत्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

---

१. विनयपत्रिका, पद सं० ५६
२. वही, पद स० ५३
३. वही, पद स० ५४
४. कवितावली, बालकाण्ड, छंद सं० ८
५. गीतावली, बालकाण्ड, छंद सं० ९६

सूरदास ने अनुप्रास प्रयोग से अपने काव्य को अलंकृत किया है। एक उदाहरण देखिए--

रावन रहिर रसाल पछावरि परसत मव सुखकारी।
आए अँचवन दन दवगन अमृत कलस कर झारी॥[1]

निम्नलिखित चरण में लाटानुप्रास का उदाहरण भी द्रष्टव्य है--

सूरदास प्रभु भुज के वलि वलि, विमल विमल जस गाए।[2]

उक्त पंक्ति में वलि और विमल शब्दों की आवृत्तियाँ हुई हैं।

अग्रदास की रचनाओं में अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है। निम्न छंदों में व, क, झ की आवृत्तियों से शब्द चमत्कार लाया गया है--

वीथी वगर वजार रतन खचि ज्योति उजासा।
रहन न पावै तिमिर सहज ही होत प्रकासा॥[3]

तिन पर कपि कपोत कीर कोकिल किलकारत।
सुरधरि तिनकी देह पशुमुयश उचारत॥[4]

झाका सरस झुकि झुमि भूषण झमाझम वजि रहै।[5]

नाभादास ने भी अष्टयाम में अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग किया है--

लाल लाडिली तिन पर राजै।
तब तिन मंगल आरति साजै।
रतन जडित कोपरि युग लाई।
कंचन की झारी छबि छाई॥[6]

उक्त छंद में ल, त, छ वर्णों की आवृत्तियों द्वारा शब्दों में लालित्य आ गया है। सेनापति द्वारा छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास और लाटानुप्रास की छटा एक साथ द्रष्टव्य है--

पाउक प्रचंड, राम पतिनी प्रवेस कीनो,
पतिव्रत पूरी पै न तासे परसति है।

---

१ सूररामचरितावली, पद स० १८८ २ वही, पद स० ६०
३ ध्यानमंजरी, अग्रदास, छंद स० ७ ४ वही, छंद स० १६
५ अष्टयाम पदावली, अग्रदास, पृ० ७
६ अष्टयाम, नाभादास, छंद स० ६३, ६४

सत्त सियरानी जू के आगि सियरानी जाति,
हियरा हिरानी देव-सभा दरसति है ॥[1]

यमक—तुलसीदास की मुक्तक रचनाओं में यमक अलंकार के प्रयोग भी अल्प रूप में मिलते हैं। विनयपत्रिका के निम्नलिखित पद में आरति, आरती, तालकर, तालिका—शब्दों की आवृत्तियों से भिन्न अर्थों का बोध कराया गया है—

हरति सब आरति आरती राम की
दहन दुख-दोस निरमूलिनी काम की।
सुरभ सौरभ धूप दीपवर मालिका।
उड़त अघ-विहग सुनि ताल करतालिका ॥[2]

कवितावली के निम्न छंद में यमक का प्रयोग देखिए—

छोनी मे के छोनीपति छाजै जिन्हे छत्रछाया,
छोनी छोनी छाए छिति आए निमिराज के।[3]

यहाँ छोनी शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। प्रथम चरण मे छोनी पृथ्वी के अर्थ मे और दूसरे चरण मे अक्षौहिणियों के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। सेनापति श्लेष अलकार प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ यमक का एक प्रयोग द्रष्टव्य है—

सत्त सियरानी जू के आगि सियरानी जाति,
हियरा हिरानी देव सभा दरसति है।[4]

उक्त छंदों में भिन्नार्थी पाइ, सियरानी शब्दों की आवृत्तियों द्वारा यमक की छटा दिखायी गयी है।

श्लेष—आलोच्य रचनाओं में श्लेष अलंकार का अत्यल्प प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने काशी को कामधेनु के सागरूपक रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है कि काशी रूपी कामधेनु के पालनकर्ता उदारचित्त विश्वनाथ अर्थात् शिव और विष्णु दोनो ही और उसका संपोषण गिरिजा अर्थात् पार्वती और गंगा करती हैं—

---

१. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ६७

२. विनयपत्रिका : तुलसीदास, पद सं० ४८

३. कविता०, बालकाण्ड, छंद सं० ८

४. कवित्तरत्नाकर : चौथी तरंग, छंद सं० ६७

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि कासी।
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा सी ॥[1]

सूरदास ने श्लेष अलंकार का एक स्थल पर प्रयोग किया है जिसमें 'हंस' शब्द का प्रयोग पक्षी विशेष और श्रेष्ठ अर्थ में किया है—

कपिवर ! देखि अयोध्या आई।
हंस-वंस को धाम सदा यहाँ, भुजा उठाय दिखाई।
सुन्दर सर, चौहटे चहूँ दिसि आस्रमनि छिति छाई ॥[2]

वक्रोक्ति—तुलसीदास ने कवितावली में एक स्थल पर काकुवक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है। उदाहरण निम्नलिखित है—

कानन-बासु, दसानन सो रिपु, आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलिसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषनु भूप कियो है।
तीय हरी, रन बंधु पर्यो पै भर्यो सरनागत सोच हियो है।
बाँह पसार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है ॥[3]

यहाँ 'काकु' के आधार पर अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। राम को सीता हरण और लक्ष्मण शक्ति का इतना सोच नहीं है जितना विभीषण की चिन्ता है ? ऐसे शरणागत प्रतिपालक दूसरा वीर कहाँ है अर्थात् कहीं नहीं है।

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग कई स्थलों पर किया है। एक पद में वे कहते हैं कि मेरी मति सहस्र शिलाओं से भी अधिक जड़ है। आपने उस पाषाणशिला को कैसी उच्च गति प्रदान की थी अतः मेरी जड़मति को भी गति दीजिए——

देहु कामि कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥
सहस सिला तें अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं, कौन गति पाहनहिं दई है ॥[4]

इस प्रकार अलंकार-विधान के अन्तर्गत केवल अनुप्रास और उपमा के ही अधिक प्रयोग आलोच्य कवियों की रचनाओं में हुए हैं, श्लेष, वक्रोक्ति के अत्यल्प प्रमाण ही मिलते हैं।

१ विनयपत्रिका, पद सं० २२   २ सूररामचरितावली, पद सं० १११
३ कविता०, सुन्दरकाण्ड, छंद सं० २३   ४ विनयपत्रिका, पद सं० १८१

अर्थालंकार—काव्य में अर्थालंकारों का महत्व ही प्रधान है। भावोत्कर्ष में जितनी सहायता इनसे मिलती है, उतनी अन्य अलकारो से नही। काव्य में आकर्षणवृद्धि और मार्मिक व्यजना प्रस्तुत करने में ये बेजोड़ होते हैं। अलकार को आचार्यों ने कई वर्गों में बाटा है, जिनमे से कुछ प्रमुख वर्ग इस प्रकार हैं—

१ साधणर्म्यमूलक	२. अध्यवपायमूलक	३. विरोधमूलक
४ वानयन्यायमूलक	५. लोक व्यवहारमूलक	६. तर्कन्यायमूलक
७. शृखला वैचित्र्यमूलक	८ विशेषण वैचित्र्यमूलक	

भक्तियुगीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य के रचयिताओं ने प्रायः इन सभी अलकारो का प्रयोग किया है। उन सबकी चर्चा स्थान-सकोच से नही की जा सकती। कुछ प्रमुख अलकारो के उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं।

१. साधर्म्यमूलक अलकारो के भी तीन भेद होते हैं—(१) अभेदप्रधान, (२) भेद प्रधान, (३) भेदाभेद प्रधान। इन तीनो के भीतर निम्न अलंकारों की गणना की जाती है—

(१) अभेद प्रधान—रूपक, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, परिणाम, सन्देह, अपह्नुति आदि।

(२) भेद प्रधान—दीपक, तुल्योगिता, दृष्टान्त, निदर्शना, प्रतिवस्तूपमा, सहोक्ति, प्रतीप, व्यतिरेक आदि।

(३) भेदाभेद प्रधान—उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मरण आदि।

अभेद-प्रधान अलकारो मे **'रूपक'** गोस्वामी तुलसीदास का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। विनयपत्रिका मे इसका प्रयोग बहुलता से मिलता है। निम्न रूपक मे विरक्ति और अनुरक्ति का कितना सुन्दर सामजस्य गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

विषय-वारि, मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहु पल एक।
ताते सहौं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा डोरि, बनसी पद-अकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि वेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥[1]

उक्त पद मे विषय वारि, मन मीन, कृपा डोरि, पद अंकुस, मोहरज्जु आदि रूपको के प्रयोग द्वारा भावो की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

---

१. विनयपत्रिका, पद सं० १०२

सूरदास ने निम्नलिखित पदो मे रूपको द्वारा राम का सौंदर्य-वर्णन किया है—

करतल सोभित वान धनुहियाँ ।
रघुकुल-कुमुद-कद चिनामनि प्रगटे भूतल महियाँ ।[1]

तुलसीदास न निम्न पदो मे राम के रूप-सौंदर्य वर्णन मे रूपको का अाश्रय लिया है । गीतावली से एक उदाहरण देखिए—

भुजनि भुजग, सरोज-नयननि, वदन विधु जित्यो लरनि ।
रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि ।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं विलोकि दसरथ घरनि ।
बसति तुलसी हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥[2]

गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली मे रावण रूपी राज्य यक्ष्मा रोग का साग रूपक का सुदर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

रावनु सो राजरोगु बाढत विराट् उर,
दिनु-दिनु विकल सकल सुख राक सो ।
जातुधान वुट, पुटपाक लक जातरूप
रतन जतन जारि कियो है मृगाक सो ॥[3]

राजरोग को नष्ट करने के लिए राक्षस रूपी वूटियो के रस से लका के सोने और रत्नो का पुटपाक बनाकर और यत्न से उसे जलाकर मृगाक नामक रस बनाया गया ।

कवित्त रत्नाकर मे रूपक द्वारा अर्थ-वैशिष्टता द्रष्टव्य है—

भूपति रघुवर वस, भक्तवत्सल भव खडन ।
मुनि-बन-मानस-हस, रहित सीता सुख मडन ॥[4]

भ्रान्तिमान—विनयपत्रिका मे गोस्वामी तुलसीदास द्वारा जेवरी मे साप के भ्रम का चित्र द्रष्टव्य है—

जागु, जागु, जीव-जड ! जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपनेहु सहै ससृति-सताप रे ।
बूड्यो मृग-वारि खायो जेवरी को साँप रे ॥[5]

---

१. सूररामचरितावली, पद स० ५   २ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० २७
३ कविता०, सुदरकाण्ड, छद स० २५   ४ कवित्त०, चौथी तरग, छद स० ३
५ विनयपत्रिका, पद स० ७३

कवितावली मे भ्रम अलकार का सुदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। रामचन्द्र धनुष बाण लिये हुए मृगया खेलते हुए इतने सुदर लगते हैं कि मृग-मृगी उन्हे कामदेव जानकर न तो हिलते है, न डरकर भागते हैं—

अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि कै चितवै चित दै।
न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पंच घरे रतिनायक है॥[1]

सेनापति के द्वारा रणस्थल मे वायुयानो पर बैठे हुए राम और रावण के रौद्र रूप वर्णन मे सदेहालंकार का प्रयोग द्रष्टव्य है—

पच्छन को धरे, किधौ सिखर सुमेर के है,
बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धहि करत हैं।
किधौ मारतण्ड के है मडल अडबर सौ,
अबर मे किरन की छटा बरसत है॥[2]

अलक झलकता श्यामपीठ शोभित कलवेणी।
सुन्दरता की सीव किधौ राजति अलिवेणी॥[3]

उज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहै।
राजत परम सोहाग माग को भवन किधौं है॥[4]

उल्लेख—तुलसीदास ने निम्न पद मे राम के कर कमल के विभिन्न प्रभावो का रोचक वर्णन किया है। उनके कर कमल किसी के लिए कठोर हैं तो किसी के लिए वरदानस्वरूप हैं। इसका विशुद्ध प्रभाव द्रष्टव्य है—

कबहू सो कर-सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत, वारक विवस नाम टेरे।
जेहि कर-कमल कठोर सभु धनु, भंजि जनक ससय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बघु ज्यों, परम प्रीति केवट भेट्यो।[5]

सूरदास ने भी राम के द्वारा हाथ मे धनुष लिये जाने पर उसकी प्रभावगत भिन्नताओ का सुदर वर्णन किया है—

---

१ कवितावली, अरण्यकाण्ड, छद सं० २७
२. कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ६४
३ ध्यानमजरी, अग्रदास, छंद सं० ५०
४. वही, छद स० ५४
५. विनयपत्रिका, पद सं० १३८

ललित गति राजत अति रघुबीर।
करुनामय जब चाप लियौ कर, बाँधि सुदृढ़ कटि चीर।
भूभृत सीस नमित जो गर्वगत, पावक सींच्यौ नीर।
डोलत महि अधीर भयौ फनिप्रति, कूरम अति अकुलात।[1]

राम द्वारा धनुष उठा लेने पर राजाओं के मस्तक झुक गए, पृथ्वी हिलने लगी, शेषनाग और कश्यप अधीर होने लगे, इन्द्र, सूर्यादि घबड़ा गए, शंकर और ब्रह्मा भी व्याकुल हो उठे।

तुलसीदास ने लंकादहन के अवसर पर उल्लेख अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

एक करैं धौंज, एक कहै काढ़ौ सौंज, एक
औंजि, पानी पीके कहैं बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े एक
देखत है ठाढ़े, कहैं पावकु भयावनों॥[2]

'धाओ रे, बुझाओ रे, कि बावरे हौ रावरे, या
और आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो॥'

कोई उसे बुझाने के लिए दौड़धूप करता है, कोई पानी पीता है, कोई खड़े-खड़े तमाशा देखता है, कोई मेघनाद से कहता है कि बड़े शुभ हाथों से बन्दर को पकड़ लाए थे। इस प्रकार अग्निदाह का प्रभाव विभिन्न लोगों पर पृथक्-पृथक् रूप में दिखायी पड़ता है।

सेनापति ने 'राम नाम' के विभिन्न प्रभावों का वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है। शिवा जी के लिए वह निधि, हनुमान के लिए सिद्धि और विभीषण के लिए समृद्धि है। वह चारों वेदों का सार, मोक्ष-प्रदायक और कामधेनु सदृश है—

सिव जू की निधि, हनुमानहू की सिद्धि, बिभी—
षन की समृद्धि बालमीकि नैं बखान्यौ है।
बिधि कौं अधार, चारयौ वेदन कौं सार, जप
जज्ञ कौं सिंगार, सनकादि उर आन्यौ है॥[4]

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० १३ २ कवितावली, सुंदरकांड, पद सं० १८
३ वही, पद सं० १८ ४ कवित्त०, चौथी तरंग, छंद सं० ७५

तुल्योगिता—गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट किया है कि रामचरण से विमुख ऋषि, मुनि, दनुज, मनुज, सुर, असुर कोई भी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता—

> रिषय सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर अपर जीव जगमाहीं।
> तव पद विमुख न पार पाव कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥[1]

संसार में माता, पिता, पुत्र, स्त्री, भाई-बन्धु सभी ने स्वार्थ की भावना के कारण हरिभक्ति के लिए प्रेरित नहीं किया—

> जननि जनक सुत दार बंधु जन भये बहुत तहँ तहँ हौं जायो।
> सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥[2]

तुलसीदास जी ने कवितावली में तुल्योगिता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे कहते है कि जो रामभक्त है वह मेरे लिए माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, सगा-सम्बन्धी, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास के तुल्य है—

> सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सोहत मेरो।
> सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो।
> सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौ बनाइ कहौं बहुतेरो।
> जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो ॥[3]

वीरभाव के परिणामस्वरूप कभी तीर बरसते हैं, कभी हृदय में प्रसन्नता होती है, कभी तेजी से युद्ध होता है। दोनो ओर बराबरी का युद्ध हो रहा है—

> वीर रस मद माते, रन तें न होत हांते,
> दुहू के निदान अभिमान चाप-बान कौं।
> सर बरसत, गुन कौं न करषत मानौ,
> हिय हरषत, जुद्ध करन बखान कौं।[4]

दृष्टान्त—तुलसीदास ने विनयपत्रिका में दृष्टान्त के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है कि ब्रह्म वह शीतल, सरस पीयूष है जिसका रसानंद साधक को ग्रहण करना चाहिए किन्तु ऐसा न करके लोग मृग-जल रूपी विषयों के पीछे रात-दिन भागते हैं। ऐसा कर चिन्तामणि जैसे बहुमूल्य ब्रह्म को छोड़कर काँच को बटोरने दौड़ते हैं—

---

१. विनयपत्रिका, पद सं० ९ २. वही, पद सं० २४३
३. कविता०, उत्तरकाण्ड, छंद सं० ३५ ४. कवित्त०, चौथी तरंग, छंद सं० ५८

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जोपै मन मो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय कारन निसि बासर धावै।
जेहि के भवन बिमल चिन्तामनि, सो कत काँच बटोरे।
सपने परबस परै, जागि देखत केहि जाइ निहोरै॥[1]

गीतावली म दृष्टान्त का एक उदाहरण दखिए। भरत का मन प्रभु राम को देखकर आग बढने के लिए उतावला है, शरीर शिथिल हो गया है, नेत्र आसुओ से भर गए हैं, मानो उनके पैर सकोच के दलदल मे फस गया है जिसे वह प्रेम बल से निकालते हैं—

मन अगहुँड, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर।
गडत गोड मानो सकुच पक महँ, कढत प्रेम बल धीर॥[2]

कवितावली मे दृष्टान्त अलकार का उदाहरण द्रष्टव्य है। कौशल्या राजकुल म उत्पन्न हुईं, राजकुल मे विवाह हुआ और राजपुत्र पाकर भी सुख प्राप्त नही किया, जैसे कि चन्द्रमा सुधा का घर है फिर भी उसे राहु द्वारा कलकित होना पडता है—

जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माँह,
राजपूत पायहूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधा गेह ताहि मृगहूँ मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है॥[3]

प्रतीप—विनयपत्रिका मे तुलसीदास रामचन्द्रजी के शारीरिक सौदर्य का वर्णन करत हुए कहते हैं कि उनके शरीर की काति के कारण ही नीलकमल, मेघ और तमाल की शोभा प्रतिबिंबित हो रही है—

बिसद, किसोर, पीन, सुन्दर, बपु, स्याम, सुरुचि अधिकाई।
नील कज वारिद तमाल मनि, इन्ह तनु ते दुति पाई॥[4]

रामचन्द्रजी की भृकुटि का सौन्दर्य भवरे से कही अधिक है और मुख की शोभा कमल का भी लज्जित करती है—

भृकुटी सयपद दुगुन मनहु अलि अवलि विराजै।
नासा परस सुदेश वदन लखि पकज लाजै॥[5]

---

१ विनयपत्रिका, पद स० ११६
२ गीतावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० ६९ (३)
३. कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० ४
४. विनयपत्रिका, पद स० ६२
५ अग्रदास, ध्यानमजरी, छद स० ३५

पद्मराग मणि की चौकी पर दुग्ध फेन सम बिछे बिछावन।[1]

२. अध्यवसाय मूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्प्रेक्षा तो गोस्वामी जी के अधिकाधिक प्रिय अलकारों में से है। इसके द्वारा उनके रूप-वर्णनों मे सजीवता और गहरी प्रभावोत्पादकता आ जाती है। पाठक के अन्तर मे अपने आराध्य की अलौकिक अप्रतिम सौंदर्यानुभूति कराने में उत्प्रेक्षा से उन्हे सर्वाधिक सहायता मिलती है। निम्नलिखित रूप-वर्णन में किस प्रकार उन्होने उत्प्रेक्षा की झडी लगा दी है। तुलसीदास ने अपनी अप्रस्तुत योजना बिन्दु माधव की नख-शिख शोभा वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके सुन्दर सांवले शरीर से ही नील-कमल, वारिद और तमाल ने छबि ग्रहण की है—

इहै परम फलु परम बडाई।
नख सिख रुचिर बिन्दु माधव छबि निरखहिं नयन अघाई।
कटि तट रटति चारु किंकिनि रव, अनुपम बरनि न जाई।
हेम-जलज-कल-कलिन-मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई।।[2]

इसी प्रकार सांगरूपक से परिपुष्ट उत्प्रेक्षा अलंकार का एक दूसरा पद देखिए। बसत रूपी अप्सरा के शारीरिक सौंदर्य वर्णन में तुलसीदास ने अप्रस्तुत विधान की आकर्षक योजना की है—

देखो-देखो बन बन्यो आज उमाकंत। मानो देखन तुमहिं आई रितु बसंत।
जनु तनुदुति चंपक कुसुम माल। बर बसन नील नूतन तमाल।[3]

सेनापति ने लका-दहन के चित्ताकर्षक वर्णन मे हनुमान की ऐसी पूंछ जो लंका के सारे घी और तेल से भीगी है, मानो आकाश का धूमकेतु हो—

रह्यौ तेल घी ज्यौं घिय हू कौं पूर भीज्यो, ऐसो
लपट्यौ समूह पट कोटिक पहल कौं।
वेग सौं भ्रमत नभ देखियै बरत पूंछि,
देखियै न राति जैबो महल-महल कौं।[4]

सेनापति के काव्य मे उत्प्रेक्षा अलंकार का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है। युद्धावसर पर राम अपने कानो तक धनुष की प्रत्यंचा को खीचकर स्वर्ण वाण तेजी से फेकते हैं तो ऐसा जान पडता है मानो देदीप्यमान सूर्य से किरणों का समूह उदय हो रहा हो—

१. अष्टयाम पदावली, पृ० ११
२. विनयपत्रिका, पद सं० ६२,
३. वही, पद सं० १४
४. कवित्त०, चौथी तरंग, छंद सं० ३८

सारग धनुप कुडलाकृति बिराजै बीच,
तामस तै लाल मुख लाल कौं लसत है।
कान-मूल कर, हेम बान कौं करत झर,
ताकौं सुर नर चलन न (?) दरसत है।[1]

धनुप टूटने पर सीताजी द्वारा रामचन्द्र जी के गले म डाली हुई माला इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो मानसरोवर से निकल कर हसो की पक्ति किसी तमाल वृक्ष पर बैठकर सजी हो—

सतानद सिख सुनि पाय परि पहिराई।
माल सिय पिय हिय, सोहत सो भई है।
मानसतें निकसि बिसाल सु तमाल पर
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है ॥[2]

तुलसीदास के द्वारा सखशिख सौंदर्य-वर्णन में उत्प्रेक्षा के सुष्ठु प्रयोग का अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

जानकी-वर सुदर माई।
इद्रनील मनि, स्याम सुभग अग अग मनोजनि वहु छवि छाई।
अरुन चरन, अगुली मनोहर, नख दुतिवत कछुक अरुनाई।
नासिक चारु, ललित लोचन भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छवि पाई।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चचरीक कछु हृदय डेराई ॥[3]

सूरदास ने भी राम-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि राजाओ की सभा के बीच रामचन्द्रजी इस प्रकार खडे थे मानो दो हस खडे हों—

ललित गति राजत अति रघुवीर।
नरपति-सभा-मध्य मनौ ठाढे, जुगल हस मति धीर ॥[4]

एक अन्य उदाहरण देखिए, सीता जी हनुमान से कहती हैं कि तुमने दर्शन देकर मेरे वियोग के सताप को उसी प्रकार दूर कर दिया है जैसे सूर्य के प्रकाश से दसो दिशाओ मे फैला कुहरा फट जाता है—

बिछुरन को सताप हमारो, तुम दरसन दै काट्यो।
ज्यौं रवि तेज पाइ दसहूँदिसि, दोप कुहर कौ फाट्यो ॥[5]

---

१ कवित्त०, चौथी तरग छद स० ५९ २ गीतावली, बालकाण्ड, पद स० ९६
३ वही, पद स० १०८ ४ सूररामचरितावली, पद स० १३
५ सूररामचरितावली, पद स० ८७

अग्रदास ने राम के रूप-सौंदर्य वर्णन मे उत्प्रेक्षा अलकार का सुन्दर प्रयोग किया है—

मेचक कुटिल सुकेश सरोरुह नयन सुहाये।
मुख पकज के निकट मनहुँ अलिछौना आये ॥[1]

रामचन्द्र जी के मुख पर पसीना इस प्रकार सुशोभित है जैसे कमल पर ओस की बूंदें हों—

रतन जड़े चौकी पर बैठे बैठक मे मव साथ।
श्रम सीकर मुख पर राजत जनु कमल कोश हिम पाँत ॥[2]

सीता जी के आभूषणो का प्रतिबिंब रामचन्द्रजी पर ऐसा लगता है मानो यमुना जल के बीच दीपक शोभायमान हो—

सिय भूषण प्रतिबिम्ब राम छवि उर धरे।
मनहु जमुन जल मध्य दीप दीपक बरे।
राम भुजा के निकट सीय भुज यो लसै।
मरकत मनिकर खम्भ मनहुँ कचन कसै ॥[3]

अतिशयोक्ति—काव्य के लिए कोई उत्तम अलकार नही माना जाता। फिर गोस्वामी जी जैसे शान्त और गम्भीर प्रकृति के कवि की रचनाओ मे ऐसे अलकार को बहुलता कैसे मिल सकती थी ? विनयपत्रिका, गीतावली, कविता-वली सभी मे इसका बहुत कम प्रयोग हुआ है। छान-बीन करने पर यदि मिल भी जाता है तो राम-रूप-गुण अथवा आत्माभिव्यजना के रूप मे ही।

विनयपत्रिका की इस पक्ति मे चपलातिशयोक्ति के सहारे अवश्य राम नाम के अलौकिक प्रभाव का बडा ही सुन्दर वर्णन किया गया है—

तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।

इसी प्रकार असम्बन्धातिशयोक्ति की योजना से कटि की करधनी की ध्वनि को अवर्णनीय सिद्ध करते हुए गोस्वामी जी कहते है—

कटि तट रहति चारु किंकिनि-रव, अनुपम बरनि न जाई।[4]

सूरदास जी ने भी धनुष-भग के व्यापक प्रभाव का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

---

१. अग्रदास, ध्यान०, छंद सं० ३४ २ अग्रदास, अष्टयामपदावली, पृ० २९
३. वही, पृ० ६२ ४. विनयपत्रिका, पद सं० ६२

करुनामय जब चाप लियो कर, बाँधि सुदृढ कटि चीर।
भूभृत-सीस, नमित जो गर्वगन, पावक सीच्यौ नीर।[1]

सेनापति ने सीता के रूप-सौन्दर्य वर्णन मे अतिशयोक्ति अलकार का आश्रय लिया है–

तीनि लोकि ऊपर सरूप पारवती, जातै,
सभु सग रग अरधग प्रीति पाई है।
ताही पारवती के अछत मोहिनी के रूप,
मोहि के महेस मति महा भरमाई है।[2]

३ विरोधमूलक अलकारो मे विभावना, विपम और असगति तथा विशेषोक्ति को विशेष स्थान दिया जाता है। विनय के पदो मे गोस्वामी जी ने विभावना तथा विशेषोक्ति के अत्यन्त उत्कृष्ट प्रयोग किये है। इससे अपने दार्शनिक मन्तव्यो को स्पष्ट करने मे उन्हे विशेष सहायता मिली है। तुलसीदास जी के साथ अन्य कवियो की रचनाओं से भी प्रत्येक के अलग अलग उदाहरणा को यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

विभावना—तुलसीदास के निम्नलिखित पद मे विभावना अलकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। प्रत्येक सृष्टिरचना का कोई आधार होता है किन्तु इस सृष्टि का कोई आधार नही है। बिना रगो के ही चित्र बने हुए है। इसी प्रकार कारण बिना कार्य का विस्तृत उल्लेख है–

केसव ! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र हरि, समुझि मनहि मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र, रग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे।[3]

भक्तप्रवर सूरदास ने निम्नलिखित पद मे राम के जैसे किशोरावस्था के व्यक्ति द्वारा शिव जी के विकट धनुष को तोडने मे इस अलकार का सुन्दर प्रयोग किया है—

चितै रघुनाथ-वदन की ओर।
रघुपति सो अब नेम हमारो, विधि सों करति निहोर।

१ सूररामचरितावली, पद स० १३
२. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० २२
३ विनयपत्रिका, पद सं० १११

का प्रयोग कई स्थलो पर हुआ है। तुलसी की कवितावली और विनयपत्रिका मे इसका प्रयोग निम्नलिखित है। विनयपत्रिका से निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है—

मीन तें न लाभ लेस पानी पुन्य पीन को।
जल बिनु थल कहा मीच बिनु मीन को॥[१]

कवि ने रामचन्द्र जी और हनुमान के शौर्य-वर्णन मे इस अलकार का सफल प्रयोग किया है—

बसत गढ लक लकेस नायक अछत,
लक नहिं खात कोउ भात राँध्यो।[२]

सेनापति ने राम के अग्निवाण के प्रभाव-वर्णन मे इसका सुन्दर प्रयोग किया है—

सेनापति राम बान पावकै बखानै कौन,
जैसो सिख दीनी सिंधुराज को रिसाइ कै।
ज्वालन के जाल नाइ पजरे पताल, इत
छै गयो गगन, गयो सूरज समाइ कै॥[३]

व्याज-स्तुति—तुलसी ने विनयपत्रिका और कवितावली मे शिव के वर्णन मे इसका निम्नलिखित प्रयोग किया है—

बावरो रावरे नाह भवानी।
दानि बडो दिन देत दए बिनु बेद-बडाई भानी॥
प्रेम प्रसंसा-विनय-व्यगजुत, सुनि विधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत मातु मुसकानी॥[४]

परिकर—तुलसी द्वारा रामभक्ति के प्रसग मे साभिप्राय गुणो के कथन में परिकर अलकार का प्रयोग द्रष्टव्य है—

किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल, नट, चोर, चर, चेटकी।
पेट को पढत, गुन गढत, चढत, चढत गिरि,
अटत गहन गन अहन अखेटकी॥[५]

परिकरांकुर—राम-भक्ति के प्रसग मे तुलसी द्वारा इसका सुन्दर प्रयोग हुआ है—

---

१. विनयपत्रिका, पद स० १७८		२. कविता०, लकाकाण्ड, छद स० ४
३. कवित्त० चौथी तरग, छद स० ४१		४. *विनयपत्रिका, पद सं० ५*
५. कवितावली, छंद सं० ९६

(अ) मैं अपराध सिंधु, करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।
तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु गामी ॥[1]

(ब) हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥[2]

काव्यलिंग— सेनापति ने इस अलकार के प्रयोग द्वारा अर्थ में विशेष चमत्कार ला दिया है—

गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौ,
सख्या सत कोटि जाकी कहत प्रवीने हैं ।
नारद तैं सुनी वालमीकि, वालमीकिहू तैं,
सुनी भगतन, जे भगति रस भीने हैं ॥[3]

अतएव उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियो ने विविध अलकारो के प्रयोगो द्वारा सशक्त भावाभिव्यक्ति की है । इन कवियो ने अलकारो को साधन न मानकर साधन के रूप मे प्रयुक्त किया है । काव्यालकरण द्वारा इन्होने भावो को उचित ढग से सप्रेषित किया है जो कि प्रत्येक महान रचनाकार का सहज काव्य-धर्म माना जा सकता है ।

आलोच्य मुक्तक काव्य में गुण और वृत्ति

आचार्यों ने काव्य की उत्कृष्ट रचना हेतु काव्य-गुणो का प्रयोग आवश्यक बताया है । समाज मे गुणहीन व्यक्ति का जिस प्रकार कोई आदर नही होता, उसी प्रकार गुणरहित काव्य भी विद्वज्जनो मे समादृत नहीं होता । गुण को काव्य-रस का धर्म कहा गया है । अलकृत काव्य भी गुणरहित होने पर उपेक्षणीय समझा जाता है । आचार्य भरत और दण्डी ने काव्य-गुणो की सख्या १०, वामन ने २० और भोज ने २४ मानी है । किन्तु परवर्ती आचार्यों ने अन्य गुणो को तीन प्रधान गुण—माधुर्य, ओज और प्रसाद के अन्तर्निहित माना है ।[4] अत काव्य-रचना में इन तीन गुणो को ही विशेष मान्यता दी जाती है ।

माधुर्य गुण—काव्य मे माधुर्य गुण की योजना के लिए शब्दो के चयन पर

१ विनयपत्रिका, पद स० ११७ २ वही, पद स० १२०
३ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ६
४. राम दहिन मिश्र, काव्य दर्पण पृ० ३०१
डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र पृ० ३१३

विशेष ध्यान रखा जाता है। इस गुण के उत्कर्ष मे कर्कश वर्ण ट, ठ, ड, ढ, संयुक्त वर्ण और दीर्घ समासों का परिहार आवश्यक होता है। इसमें क से म तक के वर्ग, अन्य अनुनासिक व्यजनो, कोमल तथा मधुर शब्दावली का प्रयोग अधिक होता है। इसका प्रयोग शृंगार, करुण और शान्त रसो में अधिक प्रकर्षयुक्त माना जाता है।

आलोच्य कवियो मे सूरदास के काव्य मे कर्णकटु वर्णों का अभाव है। डॉ० प्रेमनारायण टंडन के शब्दो मे "संयुक्ताक्षर भी उनकी भाषा मे बहुत कम मिलते हैं। मधुरता प्रकट करने वाले वर्णों अर्थात् कवर्ग, चवर्ग तथा तवर्ग, पवर्ग, पाँच पंचमाक्षरों-ङ, ञ, ण, न, म मे निर्मित शब्दों की अधिकता के कारण ऐसी भाषा में मधुरा या उपनागरिका वृत्ति और ललित पदयोजना के कारण वैदर्भी रीति मानी जाती है।'[1] सूर के पदो मे माधुर्य गुण की प्रधानता मिलती है। कृष्ण की शृंगारिक लीलाओ और भक्तिवर्णन मे इसका यथेष्ट उत्कर्ष मिलता है। अपने राम-काव्य को भी उन्होने इस गुण के प्रयोग द्वारा मधुरता प्रदान की है। राम के प्रति सीता के प्रेम-वर्णन मे इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

चितै रघुनाथ वदन की ओर।
रघुपति सो अब नेम हमारौ, विधि सो करति निहोर।
यह अति दुसह पिनाक, पिताप्रन, राघववयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढै क्यों, सखि! यह संसय मोर॥[2]

तुलसीदास की मुक्तक रचनाओ मे इस गुण का यथेष्ट विकास मिलता है। कवितावली मे इसका सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगत होता है। कवितावली मे राम-विवाह सम्बन्धी निम्नलिखित छद मे माधुर्य गुण की छटा द्रष्टव्य है—

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मदिर माही।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढाही।[3]

गीतावली मे लक्ष्मण-उर्मिला के रूप सौंदर्य-वर्णन मे इस गुण का सुष्ठु प्रयोग हुआ है—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन कोने।[4]

---

१ डॉ० प्रेमनारायण टंडन : सूर की भाषा, पृ० ५१४
२. सूरराम चरितावली, पद सं० १०
३. कवितावली, बालकाण्ड, छद सं० १७
४. गीतावली, बालकाण्ड, पद सं० १०७

अग्रदास की मुक्तक रचानाओ मे भी माधुर्य गुण की सुन्दर नियोजना मिलती है क्योकि उनके काव्य म शृंगारिक वर्णनो की ही प्रधानता है। अष्टयामपदावली से सीता-विरह सम्बन्धी एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

प्रीतम मग जोहति सिय प्यारी।
कनक महल के खिरकी पर ह्वै सखिवन युत निरखति सुकुमारी।[1]

नाभादास ने भी माधुर्य गुण का विशेष आश्रय लिया है। अष्टयाम म भोजन के अवसर की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका सुन्दर उदाहरण है—

जेहि व्यजन पर सिय कर देही। सो प्रीतम पहिलेहि ग्रर लेही॥
लै कर ग्रास सिया मुख माही। देत लेत सुधि छुधा की नाही॥[2]

सेनापति की भाषा मे भी काव्य-गुणो का सुदर समावेश मिलता है। उनके काव्य मे माधुर्य की अपेक्षा ओजगुण की प्रधानता है और माधुर्य गुण का अन्यल्प प्रयोग हुआ है और भाषा को माधुर्य गुणयुक्त करने मे कवि को विशेष सतर्कता रखनी पड़ती है। कवित्तरत्नाकर की राम-कथा सम्बन्धी चौथी तरग म माधुर्य के उदाहरण अन्यल्प है। सीता-विवाह के अवसर का निम्नलिखित छद द्रष्टव्य है—

लै कै जयमाल सिय वाल है विलोकी छवि,
दसरथ लाल के वदन अरविंद की।
परी प्रेम फद, उर वाढ्यौ है अनद अति,
आछी मद-मद चाल चलति गयद की॥[3]

ओजगुण—काव्य भाषा मे इसके उत्कर्ष हेतु द्वित्व वर्णों, सयुक्त वर्णों तथा कर्कश वर्ण—ट, ठ, ड, ढ आदि और सामासिक शब्दो का अधिक प्रयोग किया जाता है। यह रौद्र और वीभत्स रसो मे विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। ओज से चित्त में स्फूर्ति तथा मन में तेज उत्पन्न होता है, चित्त दीप्त हो उठता है, आवेग मे तीव्रता आ जाती है। आलोच्य कवियो मे तुलसीदास, सेनापति आदि की रचनाओं मे इसका विशेष योग मिलता है। सूरदास के काव्य मे इसका प्रयोग कम ही हुआ है। उनकी रामकथा के पदों मे राम प्रतिज्ञा सम्बन्धी निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

१. अष्टयाम पदावली, पद स० ५६, पृ० ३१
२. अष्टयाम, नाभादास, छद स० २३६-२४०
३. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० १७

दूसरे कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव! प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं।[1]

उक्त पद मे ओजगुण सम्बन्धी वर्णों का अभाव ही है। हनुमान की निम्नलिखित गर्वोक्ति मे अवश्य ओजपूर्ण शब्दावली का प्रयोग हुआ है—

कहौ तौ कालहि खंड-खंड करि, टूक-टूक कर काटौं।
कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै, खोदि पतालहि पाटौं॥[2]

तुलसीदास ने कवितावली के लंकाकाण्ड मे ओज गुण का कई स्थलो पर अत्यन्त आकर्षक वर्णन किया है। हनुमान की वीरता वर्णन मे ओजपूर्ण शब्दावली का सुन्दर सयोजन हुआ है। दो उदाहरण निम्नलिखित हैं—

रजनीचर मत्त गयंद घटा विघटै मृगराज के साज लरै।
झटकै भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥[3]

मत्त भटमुकुट दसकंठ साहस सइल, सृङ्ग विद्दरनि जनु वज्र टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ, सेसु संकुचित संकित पिनाकी॥[4]

कतहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि, गजराज करक्खत।[5]

गीतावली मे ओजगुण का अभाव ही है। इसमे तत्सम्बन्धी केवल कुछ ही पंक्तियां उपलब्ध होती हैं—

जब रघुबीर पयानो कीन्हा।
कटकटात-भट भालु, विकट मरकट करि केहरि नाद।
कूदत करि रघुनाथ सपथ उपरी उपरा बदि बाद॥[6]

अग्रदास, नाभादास आदि कवियो की रचनाओ मे ओजगुण का प्रायः अभाव ही है, क्योंकि उनका लक्ष्य विशेष रूप से राम-सीता के शृंगारी रूप का वर्णन करना ही था। सेनापति के काव्यग्रंथ मे ओज-गुण के वर्णन बहुलता से मिलते हैं। रामायण प्रसग मे अनेक स्थलो पर भाषा का ओजस्वी रूप वर्णित है। राम के अग्निबाण के प्रभावस्वरूप समुद्र की स्थिति अत्यन्त भयावह हो गयी है—

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० १७८
२. वही, पद स० १६८
३. कवितावली, लंकाकाण्ड, छंद सं० ३६
४. वही, छंद सं० ४४
५. वही, छंद सं० ४७
६. गीतावली, सुंदरकाण्ड, छंद सं० २२

चुरइ मलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि जल झपिय।
म छ कच्छ उच्छरिय पिरिख अहिपति उर कपिय।[1]

प्रसाद गुण—इसमे कवि की दृष्टि मुख्यत अर्थ की स्पष्टता पर रहती है, साथ ही यह चित्त को व्याप्त और प्रसन्न करने वाला गुण होता है। अत यह सभी रसो मे मिलता है। इसमे शब्दो को सुनते ही तत्काल अर्थ का बोध हो जाता है। इस गुण के सूचक स्थलो मे कटु वर्णं, कठिन शब्द योजना और सामासिक पदावली का अभाव होता है। इसमे प्राय सरल, सीधे-साधे शब्दो और सुकुमार वर्णों का प्रयोग किया जाता है। आलोच्य कवियो की रचनाओ मे यह गुण व्यापक रूप से समाविष्ट मिलता है। सूरदास की रामचरितावली से प्रसाद गुण का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

मैं तो रामचरन चित्त दीन्हौ।
मनसा, वाचा और कर्मना, वहुरि मिलन कौं आगम कीन्हौं।
सीता कहति विचार मनहिं मन, आजु कान्हि कोसलपति आवैं।
सूरदास स्वामी करुनामय, सो कृपालु मोहि क्यों बिसरावैं ॥[2]

तुलसीदास की मुक्तक रचनाओ मे इस गुण का विकास व्यापक रूप से हुआ है। कवितावली म केवल कुछ छदो को छोडकर सभी सुबोध हैं—वालकाण्ड मे माधुर्य और लकाकाण्ड मे ओजगुण का विशद प्रयोग हुआ है। शेप स्थलो पर प्रसाद गुण की प्रधानता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

पुर ते निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दए मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति है, चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चार चली जल च्वै ॥[3]

जैसा कि पहले कहा गया है गीतावली मे ओजगुण का अभाव है और माधुर्य गुण का भी अत्यल्प प्रयोग मिलता है। अत इसमे प्रसाद गुण की ही प्रधानता है। मुनि विश्वामित्र की निम्नलिखित चिन्तना म तत्काल भाव का वोध हो जाता है—

आजु सकल सुकृत फलु पाइ हौं।
सुख की सीव, अवधि आनँद की अवध विलोकिहौं पाइहौं।[4]

---

१ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० ४४
२ सूररामचरितावली, पद स० ७६
३ कवितावली, अयोध्याकाण्ड, छद स० ११
४ गीतावली, बालकाण्ड, छद स० ४८

विनयपत्रिका का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है—

जानत प्रीति रीति रघुराई।

नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥[1]

अग्रदास की रचनाओ मे भी माधुर्य गुण की प्रधानता है, वैसे सामान्य और बाह्य दृश्य वर्णनो मे प्रसाद गुण का भी वर्णन हुआ है। पदावली में प्रसाद गुण का राम-जन्म सम्बन्धी एक पद द्रष्टव्य है—

राम जन्म आनन्द बधाई।

सुर तरु सुधा धेनु चिन्तामणि मिलत परस्पर दूध बँधाई।[2]

नाभादास रचित अष्टयाम मे प्रसाद गुण की ही प्रधानता है। राम की दिनचर्या सम्बन्धी एक उदाहरण देखिए—

आये यज्ञ वेदि के तीरा। मौज लिए मुनिजन मति धीरा ॥

वेद मन्त्र ब्राह्मण उच्चरही। सिय युत बैठि होम प्रभु करही ॥[3]

सेनापति की भाषा मे 'प्रसाद गुण श्लिष्ट रचनाओ को छोड़कर प्रायः सर्वत्र ही प्राप्त होता है'–प० उमाशकर शुक्ल के उक्त कथन को सर्वथा स्वीकारा नही जा सकता। सेनापति की प्रवृत्ति मुख्यतः आलकारिक है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी के शब्दो मे—"जहाँ उनकी रचना श्लिष्ट नही है वहाँ अन्य अलकारो से लदी हुई है। कवि जहाँ भावानुभूति मे तन्मय होकर इस अलकरण की प्रवृत्ति को भूल सका है, वहाँ उसकी काव्यभाषा मे प्रसादगुण का समावेश हो सका है। ऐसे स्थल अधिक नही हैं।"[5] डॉ० तिवारी का उक्त मत समीचीन कहा जा सकता हैं। रामरसायन वर्णन मे प्रसाद गुण का निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है—

चाहत है धन जौ तू, सेउ सिया रमन कौं,
जातें विभीषन पायौ राज अविचल है।
चाहै जौ अरोग, तौ सुमिरि एक ताही, जिन,
मरचौ फेरि ज्यायौ सारा मृगन कौ दल है।[6]

---

१. विनयपत्रिका, पद स० १६४

२. अष्टयामपदावली, पद सं० १३०, पृ० ११२

३. अष्टयाम, नाभादास, छद स० ११२, १८३

४. कवित्तरत्नाकर, स० प० उमाशकर शुक्ल, भूमिका, पृ० ५३

५. डॉ० रामचन्द्र तिवारी : रीतिकालीन हिन्दी कविता और सेनापति, पृ० १०३

६. कवित्तरत्नाकर, पाँचवी तरग, छद स० ९

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियों ने अपनी रचनाओ मे माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणो का यथावश्यक प्रयोग कर अपने काव्योत्कर्ष को बढाया है।

काव्य-वृत्ति—आचार्यों द्वारा काव्य के तीन प्रमुख गुणो का सम्बन्ध तीन वृत्तियो से माना गया है। माधुर्य गुण के साथ मधुरा या उपनागरिका वृत्ति, ओज के साथ परुषा और प्रसाद के साथ कोमला का सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। इन तीनो वृतियो का विवेचन 'वृत्त्यनुप्रास' के अन्तर्गत भी किया जाता है, क्योंकि इनमे वृत्तिगत वर्णों की योजना आवश्यक होती है। उपनागरिका मे माधुर्य गुण के सदृश ट, ठ, ड, ढ वर्णो को छोडकर मधुर वर्णों और सानुनासिक न, म आदि वर्णों की आवृत्ति होती है। कोमला म य, र, ल, व वर्णो की आवृत्ति तथा अल्प समास होने है तथा परुषा मे ओजपूर्ण वर्णों जैसे ट, ठ, ड, ढ तथा संयुक्ताक्षरो की आवृत्ति होती है।[1] उपनागरिकावृत्ति का माधुर्य गुण के समान शृंगारादि रसो के वर्णन मे, परुषा—वीर, रौद्र, भयानक आदि रसो में और कोमला, शान्त, अद्‌भुत आदि रसो मे व्यवहृत होती है।

सूरदास ने राम के बाल-वर्णन और सीता-विवाह सम्बन्धी वर्णनो मे उपनागरिका का सुन्दर प्रयोग किया है। बालवर्णन का एक उदाहरण चित्ताकर्षक है—

करतल सोभित बान धनुहियाँ।
खेलन फिरत कनकमय आँगन, पहिरें लाल पनहियाँ।[2]

तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका—मुक्तक रचनाओ मे उपनागरिका का सुष्ठु प्रयोग किया है। कवितावली मे केवल राम आदि के बालवर्णन और विवाह सम्बन्धी कतिपय छदो मे प्रयोग मिलता है। दशरथ के राजपुत्रो का निम्नलिखित बालवर्णन अत्यन्त आकर्षक है—

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनग की दूरि धरैं।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर मे बिहरैं॥[3]

---

१ डा० भगीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र, पृ० १६२
२ सूररामचरितावली, पद स० ५
३. कवितावली, बालकाण्ड, छंद स० ३

है। लंकादहन, अंगद प्रतिज्ञा, राम-रावण युद्ध आदि प्रसंगों में इसका समुचित योग हुआ है। लंकादहन की भयावह स्थिति का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

लपट झपट, झहराने, हहराने वात,
झहराने भट, परचो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो।[1]

युद्धावसर पर हनुमान की वीरता अतुलनीय है—

विकट चटकन चपट, चरन गहि पटकमहि,
निघटि गए सुभट, सत सबको छूटयो॥[2]

गीतावली और विनयपत्रिका में परुषावृत्ति का प्रायः अभाव है, क्योंकि तुलसीदास ने उनमें ओजपूर्ण स्थलों का निराकरण ही किया है। अग्रदास और नाभादास की रचनाओं मे भी इसका अभाव है। इन कवियों की दृष्टि मुख्यतः राम-सीता के शृंगारमय प्रेम वर्णनों पर ही रही है। सेनापति रचित कवित्त-रत्नाकर मे परुषावृत्ति की विशेष योजना हुई है।

सेनापति के राम-कथा सम्बन्धी छंदों में इस वृत्ति का अधिक प्रयोग हुआ है। क्रोध भाव सम्बन्धी निम्नलिखित वर्णन में ओजपूर्ण शब्दावली की योजना हुई है—

दब्बिय जु छिति पताल कहँ, भुजगपत्ति भग्गिय सटकि।
रक्खिय जु हड्डि सुट्ठिय कठिन, कमठ पिट्ठि टुट्टिय भटकि॥[3]

पहले कहा जा चुका है कि कोमलावृत्ति प्रसाद गुण के आश्रित होती है। सभी आलोच्य कवियों ने कोमलावृत्ति का व्यापक प्रयोग किया है। यह उनके काव्य की अर्थगत सरलता और सुबोधता से सर्वथा स्पष्ट है। सूरदास के निम्न-लिखित विनय मे इसका सुन्दर प्रयोग हुआ है—

विनती केहि विधि प्रभुहि सुनाऊँ।
महाराज रघुवीर धीर को समय न कबहूं पाऊँ।

---

१. कवितावली, सुन्दरकाण्ड, छंद सं० ४६
२. वही, लंकाकाण्ड, छंद सं० ४६
३. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छंद सं० ३०.

तुमही कहो कृपन हो रघुपति किहि विधि दुख समझाऊँ।
एक उपाय करौं कमलापति कहो तो कहि समझाऊँ।
एक उपाय करौं कमलापति कहो तो कहि समझाऊँ।
पतित उधारन सूर नाम प्रभु लिखि कागद पहुचाऊँ॥[1]

तुलसीदास की गीतावली और विनयपत्रिका आलोच्य ग्रथो म कोमला वृत्ति का विशेष आश्रय लिया गया है। दो एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

विनय सुनायबी परि पाय।
कहो कहा, कपीस! तुम्ह सुचि, सुमति सुहृद सुभाय।
स्वामि मर्कट हेतु हौं जड़ जननि जनम्यो जाय।
समौ पाइ, कहाइ सेवक घटयो तौ न सहाय॥[2]
तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुज हारी॥[3]

अग्रदास और नाभादास की रचनाओ मे यद्यपि उपनागरिका की प्रधानता किन्तु कोमलावृत्ति भी उदाहरण मिलत हैं। भक्ति सम्बन्धी स्थलो पर इसकी विशेष योजना हुई है। अग्रदास का निम्नलिखित पद राम सीता की भक्ति का सुन्दर उदाहरण है–

बसो मेरे नैनन मे सियाराम।
कल्पवलि श्री जनकनन्दनी रघुनन्दन घनश्याम।
राजत रतन जडित सिंहासन जुगल जोडि अभिराम।
अग्रअली निरखत यह शोभा वारत कोटिन काम॥[4]

नाभादास की भक्ति भावना भी निम्नलिखित छदो म द्रष्टव्य है–

अड कोटि को नायक जो है। सुव बसत रहत सदा प्रभु मोहै।
सुन मूरति तिन्ह हृदय बसाई। स्यामल अग अधिक छवि पाइ॥[5]

सेनापति ने रामरसायन वणन म प्रसाद गुण व्यजक कोमलावृत्ति की

---

१ सूररामचरितावली पद स० १९८
२ गीतावली, लकाकाण्ड पद म० १४।१ २
३ विनयपत्रिका, पद स० ७९
४ अष्टयामपदावली पद स० १२६, पृ० ९९
५ अष्टयाम, नाभादास, छद स० ४४२ ४४६

अनेक छंदों मे सुन्दर योजना की है। निम्नलिखित उदाहरण कवि की अतिशय भक्ति-भावना का परिचायक है—

दै कै जिन जीव ज्ञान प्रान तन मन मति
जगत दिखायो जाकी रचना अपार है।
दृगन सौं देखै विश्वरूप है अनूप जाकौ,
बुद्धि सौं विचारैं निराकार निरधार है।
जाकौं अधअरध गगन दसदिसि, उर व्यापि,
रह्यो तेजहीन लोक को अधार है।
पूरनपुरुष हृषीकेस गुनधाम राम,
सेनापति ताहि विनवत बारबार है॥[1]

आलोच्य कवियों की भाषा में उपर्युक्त गुण-वृत्ति के विवेचन से स्पष्ट है कि इन कवियों ने आवश्यक प्रसंगानुसार माधुर्य, ओज, प्रसाद गुणों और क्रमशः उनसे सम्बद्ध उपनागरिका, परुषा, कोमला वृत्तियों के समुचित प्रयोग से अपने काव्य की उत्कर्ष-वृद्धि की है।

१. कवित्त रत्नाकर, पाँचवीं तरंग, छंद सं० १

षष्ठम अध्याय

मुक्तक रामकाव्यों में दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

मुक्तक राम-काव्य में दार्शनिक प्रवृत्ति

भक्तियुगीन कवियो की रचनाओ मे दार्शनिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति यथेष्ट रूप मे हुयी है। भक्ति-भाव के प्रकाशन के साथ साथ ईश्वर, जीव, जगत्, माया आदि सम्बन्धी विचारो का विवेचन भी उनकी रचनाओ मे प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रूप मे मिलता है। निर्गुणोपासक भक्त-कवि हो, चाहे सगुणोपासक सभी ने इसकी अभिव्यंजना न्यूनाधिक रूप मे की है। ब्रह्मवाद के सम्बन्ध मे स्वामी शकराचार्य के अद्वैतवाद अथवा केवलाद्वैतवाद का मत अत्यन्त प्राचीन है। उन्होंने ब्रह्म और जीव मे अश-अशी सम्बन्ध माना है— 'अहं ब्रह्मास्मि', के अनुसार जीव ब्रह्म का ही अश है। ब्रह्म सत्य है और सारा ससार मिथ्या है। शकराचार्य जी द्वारा ब्रह्म के इस स्वरूप का आधार वेद, उपनिषद् आदि ग्रथ है।

वेदो मे ब्रह्म का साकार रूप अचिन्त्य है। उसे 'नति नेति' कहा गया है। उपनिषदो मे उसी अनन्त, अचिन्त्य ब्रह्म का निर्देश किया गया है। माडूक्योपनिषद् के अनुसार ब्रह्म जन्म और निद्रा से रहित, स्वप्न के समान शून्य तथा नामरहित, प्रकाशयुक्त, सर्वज्ञ, तथा सब प्रकार से क्रियारहित है।[२] केनोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म को मन से नही जाना जा सकता, वाणी से जिसका वर्णन नही किया जा सकता, जिसकी उपासना नही की जा सकती, नेत्रो से उसे देखा भी नही जा सकता।[३]

श्वेताश्वेतरोपनिषद् मे ब्रह्म की शक्ति त्रिविध रूप मे दृष्टिगत होती

---

१ तुलसी की विचारधारा, पृ० १७, १८

२ अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् । सकृद्विभात सर्वज्ञ नोपचारः कथचन् ॥
—माडूक्योपनिषद्, अद्वैत प्रकरण, पृ० १७३

३ यद्वाचा नभ्युदित येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्मत्व विद्धि नेदयदिदमुपासते ॥
यच चक्षुसा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति । केनोपनिषद्, ४।८

है—चित्त-शक्ति (अन्तरंग), माया-शक्ति (बहिरंग) तथा जीव-शक्ति (तटस्थ) ।[1] यह शक्ति ब्रह्म के सर्वातीत स्वरूप में लीन रहती है तथा उसके कारणस्वरूप प्रकट हो जाती है। अंतरंग शक्ति के अन्तर्गत ही माया तथा जीव शक्तियाँ हैं। परन्तु ब्रह्म ही संसार का कर्त्ता है, समस्त कार्य उसी की माया-शक्ति के कारण प्रेरित होते हैं और उसी की प्रकटीभूत माया के कारण संसार सत्य प्रतीत होता है। सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता होते हुए भी ब्रह्म सब में व्याप्त रहता है तथा व्याप्त होते हुए भी निर्लिप्त रहता है। उनमें परस्पर विरोधी भावों का समावेश है।[2] वह चलता है और नहीं भी चलता है। वह प्राणियों से दूर है और समीप भी। वह सब के भीतर है और बाहर भी।

उपनिषद् की 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' की ही भाँति तुलसीदास ने 'अथातो राम जिज्ञासा' का प्रारम्भ करते हुए कहा है—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥[3]

शंकराचार्य जी ने तत्व का अर्थ लिया है—ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप, विशिष्टाद्वैत में तत्व-त्रय माना है, सांख्य-दर्शन में पचीस तत्व माने गये है। द्वैत-वाद में जीव और जड पदार्थ को भी 'तत्व' कहा गया है।

स्वामी रामानुजाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का संशोधित रूप विशिष्टाद्वैत के रूप में प्रतिपादित किया जिसमें उन्होंने ब्रह्म के सगुणवाद का खंडन करते हुए माया को उनकी गुणमयी भावरूपी शक्ति के रूप में बताया है। यही विद्या माया है और इसका दूसरा रूप अविद्या माया का है जो आत्मा का शरीर से तादात्म्य कराती है और आत्मा के सत्य रूप को आच्छादित कर लेती है।[4] गोस्वामी तुलसीदास ने अपने विवेचन में इन मतों का निजी ढंग से समर्थन किया है।

डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार "तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद और रामानुज

---

१. भोक्ताभोग्यतार च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविध ब्रह्मेतत्।
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, १।१२

२. तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत: ॥
—ईशावास्योपनिषद्, ६।५

३. रामचरितमानस, १।५०

४. तुलसी की विचारधारा, पृ० ४९

के विशिष्टाद्वैत से मुख्यतया प्रभावित हैं। परन्तु अन्य मतों से भी उन्होंने विचार ग्रहण किये हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपनिषदों और वेदांत सम्प्रदायों में जो मान्यताएँ समान रूप से पाई जाती हैं, वे तुलसी को स्वीकार्य हैं, जैसे—ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान और आश्रय है आदि। परन्तु जहाँ अद्वैतवादियों, वैष्णव वेदांतियों में मतभेद है, वहाँ उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। केवल अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण, निर्विशेष और निर्लक्षण है, अर्थात् उसमें कृपा आदि विशेषतायें नहीं हैं। माया की उपाधि से युक्त सगुण ब्रह्म ही अवतार लेता है, एकमात्र ब्रह्म (निर्गुण) ही सत्य है, जीव, जगत् और ईश्वर सब मिथ्या है, केवल ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना, जीवन के जीवत्व का नाश ही मुक्ति है। वैष्णव आचार्यों के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः सगुण अर्थात् कृपा आदि दिव्य गुणों से युक्त है, वही कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेता है, उसी की शक्ति माया है। जीवन उसी का अंश है, भिन्न प्रतीयमान जगत् उससे अभिन्न है, भक्ति का अमोघ साधन है, सालोक्य आदि मुक्तियाँ श्रेष्ठ हैं। तुलसी ने राम को बारबार निर्गुण-सगुण स्वरूप कहा है।"[1]

तुलसी-साहित्य के परम विद्वान् डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र के अनुसार राम न केवल ब्रह्म हैं (निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण शरीरी परमात्मा हैं), न केवल महाविष्णु हैं (सगुण शरीरी परमात्मा हैं), न केवल मर्यादापुरुषोत्तम हैं (आदर्श मनुष्य हैं), वरन् तीनों के सामंजस्य से पूर्ण परम आराध्य है।[2] इसी प्रकार डॉ० मिश्र ने परब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का उल्लेख करते हुए उनके अवतार-रूप का भी निर्देश कर दिया है। तुलसीदास के राम परब्रह्म तो हैं ही और अवतार-रूप में वे मर्यादापुरुषोत्तम—आदर्श पुरुष भी हैं।

जीव के आश्रय के केन्द्र-बिन्दु के विचार से राम मूल-तत्व या परम तत्व हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उपनिषदकारों और वेदान्तियों ने जिसे ब्रह्म कहा है, शैवों ने जिसे परम शिव माना है, वैष्णवों की दृष्टि में जो परम-विष्णु हैं, उसी परमार्थ तत्व को तुलसी राम कहते हैं। इसीलिए उन्होंने 'राम' के लिए ब्रह्म, विष्णु और शिव शब्दों का प्रयोग किया है। उन्हीं से आविर्भूत और उनसे

१. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी काव्य-मीमांसा, पृ० ३२५
२. डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र : तुलसी दर्शन, पृ० १३५

भिन्न-भिन्न तत्व हैं—जीव और जगत। राम सृष्टि के कर्त्ता, पालक और संहारक है। पौराणिक परम्परा के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, विश्वपालक विष्णु और प्रलयकर शिव उन्ही के अंश है। दूसरे शब्दो मे राम की उद्भवकारिणी शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा हैं, पालनकारिणी शक्ति के विष्णु और संहारकारिणी शक्ति के शिव। राम स्वरूपतः निर्गुण भी हैं और सगुण भी। निर्गुण के अर्थ हैं–निर्विशेष या अनिर्वचनीय, निराकार या रूपरहित, प्राकृत गुणों से परे और अखंडता, अप्रमेयता आदि गुणो से युक्त रूप मे भासमान और भक्त-वत्सलता आदि दिव्य गुणो से सम्पन्न राम का सगुण रूप उनके निर्गुण रूप का ऐश्वर्य है। सज्जनो के परिताप और अधर्मियो के विनाश, धर्म के संस्थापक और भक्तो के आनन्द के लिए निराकार राम आकार विशेष रूप मे प्रकट होते हैं। यही उनका अवतार है। राम अवतारी भी है और अवतार भी।[1] अवतारी और अवतार मे कोई अन्तर नही है। दोनों मे तत्वतः कोई भेद नही है। राम की अवतार-लीला बडी विचित्र है। मुनियों तक को भ्रम मे डाल देती है।

ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुए राम को तत्त्वत्रय (चेतन जीव, जड, जगत्) स्वरूप-लक्षण, तटस्थ लक्षण, निर्गुण-सगुण रूप, अवतार-रूप आदि का विवेचन किया है। यहाँ पर ब्रह्म के इसी स्वरूप का संक्षेप मे परिचय दिया जा रहा है।

राम का स्वरूप-लक्षण

राम सच्चिदानन्द स्वरूप है। यही उनका समीचीनतम स्वरूप-लक्षण है। राम सत्य हैं, क्योकि उनके निश्चित स्वरूप का व्यभिचार (परिवर्तन) या नाश नही होता। इसी अर्थ मे उन्हें नित्य और शाश्वत् भी कहा गया है। राम का स्वरूप-निरूपण करते समय तुलसी ने बतलाया है कि राम, जीव और जगत् के परम प्रकाशक हैं, वे परमानन्द हैं। निसर्गानन्द, सहज आनन्द विधान, आनन्द-सिन्धु, आनन्द-भवन, आनन्द-वेद, सुख-संदोह आदि शब्दों द्वारा तुलसी ने उनके इसी रूप की अभिव्यक्ति की है। वे एक अद्वितीय, अनुपम, अभेद, केवल और शुद्ध हैं। एक रूप एक रस, शान्त और सम है। तुरीय व्यापक अन्तर्यामी और विभु है। अतएव उन्हे सर्वउरवासी, विश्वात्मा, विश्वायतन अथवा परमात्मा कहना सर्वथा संगत है। सर्वत्र रमने के कारण भी उनका नाम राम है। वे समदर्शी और सर्वदर्शी है।[2]

---

१ डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी काव्य मीमांसा, पृ० ३१९

२ तुलसी दर्शन-मीमांसा, पृ० ४४

यहाँ पर आलोच्य मुक्तक रचनाओ मे राम के इसी स्वरूप-लक्षण का विवेचन करना समीचीन होगा।

सूरदास ने मर्यादापुरुषोत्तम राम के स्वरूप-वर्णन मे ब्रह्म के अनेक गुणो का निदर्शन किया है। उन्होने राम को अलक्ष्य, अनन्त और अपार महिमा से युक्त बताया है। यद्यपि वे सामान्य पुरुष के सदृश कमर पर तरकस बाधे हुए है, हाथ में धनुष और सिर पर काकपक्ष शोभायमान है।[1]

राम अगणित महिमा वाले है, वेद और पुराणो ने उसका गान किया है—

सूरदास प्रभु अगनित महिमा, वेद पुरानन गाई ॥[2]

राम अनेक ब्रह्माण्डो के रचयिता हैं, पर वे ही पालनकर्ता और सहारक भी हैं।[3]

रामचन्द्र अन्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा हैं। वे साक्षात् करुणा के सागर और कल्पतरु और तीनो लोको के स्वामी हैं—

अन्तरजामी हो रघुवीर।
करुनासिधु अकाल कलपतरु, जानत जन की पीर ॥[4]
सूर सेवकहि-इति बडाई, तुम त्रिभुवन के नायक।[5]

इस प्रकार सूरदास ने रामचन्द्र को ब्रह्म का अवतार मानते हुए उनके अनेक विशिष्ट और समान्य गुणो का वर्णन किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामविषयक मुक्तक रचनाओं मे रामचन्द्रजी को ब्रह्म के अनन्त गुणो से विभूषित किया है। वे गुणो के निधान और करुणामय है-

गुण के निधान रूप धाम सोम राम को।[6]

वे तीनो ऐश्वर्य–शील, शक्ति और सौन्दर्य से सम्पन्न हैं। राम आनन्द स्वरूप, पतितपावन और शीतल स्वभाव वाले है—

तुलसी जहा निसि राम लखन राम सिय
आनन्द अविधि अवध बिसराई ॥[7]

गीतावली के प्रथम पद मे ही तुलसीदास राम को सौन्दर्य, शील, गुण का आगार, सुख और आनन्द का समुद्र बताते हुए कहते है।[8]

---

१ सूररामचरितावली, पद स० १३
२ वही, पद स० २८
३. वही, पद स० ४७
४ सूररामचरितावली, पद स० १९९
५ वही, पद स० १७७
६. कवितावली, बाल०, छद स० ९
७ गीतावली, अयो०, पद स० ४६।९
८ गीतावली, पद स० १।१-११

श्री रामचन्द्र के कर कमल कल्पतरु है और भगवान शंकर का प्रिय करने -वाले हैं—

राम चन्द्र कर कंज कामतरु वामदेव हितकारी।[1]
रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ राज विराजै।[2]

तुलसी के राम गुण के निधान और करुणामय हैं—'गुण के निधान रूप धाम सोम काम को।'[3] वे तीनो ऐश्वर्य विभूतियों—शील, शक्ति और सौन्दर्य से सम्पन्न हैं—'दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु।'[4] राम के प्रदक्षिणा करते ही धनु भयभीत सा होकर हल्का हो जाता है। ब्रह्म को समस्त भुवनों मे व्याप्त एव समस्त भुवनो को ब्रह्म का अंग बताया गया है।[5]

इसमे गोस्वामी जी यह सिद्ध करते हैं कि अचिद् अंश से सृष्टि का उत्पादन कर चिद् अश से वे इसमे व्याप्त भी है। सम्पूर्ण सृष्टि मे ब्रह्म व्याप्त है, यद्यपि वह स्वय अव्यक्त है।

परब्रह्मस्वरूप राम के आनन्दस्वरूप की ओर सकेत निम्न पद मे मिलता है—

ऐसी आरती राम रघुबीरकरहि मन।
हरन दुखदवन्द गोविंद आनन्दघन॥

राम स्वय आनन्दस्वरूप है। अत स्वाभाविक है कि वे योग्य पात्र के दुखो का हरण करने है। एक और विशेष पद कहा गया है—'जद्य हरितन नहीं भेद माया।'

जब ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है तो मायाजन्य स्वरूप ससार की निवृत्ति हो जाती है।[6]

गोस्वामी जी ने स्पष्ट शब्दो मे परब्रह्म के स्वरूप को अपनी भाषा मे अलङ्कृत किया है—

ब्रह्म वरदेश बागीस, व्यापक विमल विपुल बलवान निर्वानस्वामी।
प्रकृति, महतत्व, शब्दादि, गुन, व्योम मरुदाग्नि अमलाम्बु उर्वी॥[7]

---

१. वही, उत्तर०, पद स० १४ २ वही, पद सं० १५
३. कवितावली, बाल०, छद स० ९ ४ गीतावली, बाल०, पद स० ९२।३
५. विनयपत्रिका, पद स० ४५
६ विनयपत्रिका, पद सं० ४७ ७. वही, पद सं० ५४

इसमे ब्रह्म को सत्, चित्, आनन्दस्वरूप सज्जनो का सतापहरणकर्ता कहा गया है। वे दीनो के उद्धारक, करुणापूर्ण तथा पापो को हरने वाले है—

दीन उद्धरन रघुवर्य करुनाभवन, समन सताप सताप पापौघहारी।[1]

अपने इसी स्वरूप के कारण वे बार-बार,पृथ्वी पर अवतरित होकर भक्तो और सज्जनो की रक्षा करते है।

राम के दयालु स्वभाव के विषय मे कहा गया है—हे नाथ, दीनो पर दया करने वाला दूसरा और कौन है ? 'देव, दूसरो कौन दीन को दयालु।'[2] राम को कल्याणकारी स्वरूप कहा गया है—'ऐसे राम दीन हितकारी।'[3] वे दीनो का कल्याण करने वाले हैं। राम के ससार से उद्धार करने वाले, ससार सागर से मोक्ष प्रदायकस्वरूप की ओर सकेत है।

परब्रह्म

श्री राम-स्तुति मे वे उनका सत्, चित् एव आनन्दस्वरूप मानते है, वे व्यापक हैं एव अव्यक्त से व्यक्त साकार रूप मे प्रकट होते हैं। ब्रह्मादि देव और सिद्ध राक्षसो के अत्याचार से व्याकुल हो गए, तब उनके सकोच से विशुद्ध गुण विशिष्ट नर-शरीर धारण किया।

जयति सच्चिदाव्यापकानन्द यद् ब्रह्म विग्रहव्यक्त लीलावतारी।
बिकल ब्रह्मादि सिद्ध सकोच बस, विमल गुन गेह नरदेह धारी॥[4]

राम सच्चिदानन्द ब्रह्म है और उन्होंने ही लीलावतार धारण किया है।[5]

नित्य, निर्मोह, निर्गुन, निरजन, निजानद, निर्वान निर्वानदाता।
निर्भरानद, निःकम्प निस्सीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता॥[6]

नाभादास रचित अष्टयाम मे सगुण-निरूपण हुआ है। कतिपय स्थल ब्रह्म के सगुण रूप की ओर स्पष्ट सकेत करते है—

छवि लखि भानु न देह सुधि, खेलन चले जु राम।
सग अनुज लिए सखागण, सकल विश्व अभिराम॥[7]

---

१ विनयपत्रिका, पद स० ५९ २ वही, पद स० १५४
३ वही, पद स० १६६ ४ वही पद स० ४३
५ डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास · पृ० ४६७
६ विनयपत्रिका, पद स० ५६ ७ अष्टयाम, नाभादास, छद स० ४२०

सृष्टिस्रष्टा होने के कारण जगत् के निमित्तोपादान कारण हैं ।[1] डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार-राम विश्व के परम कारण हैं । इसलिए उन्हें कारण और ब्रह्मादिजनक कहा गया है । वे जगत् से अभिन्न उसके निमित्त एवं उपादान दोनो ही कारण है । जब तुलसी राम को विश्वकारण करण कहते हैं तब कारण से उनका उपादान कारणत्व और करण से उसका निमित्त कारणत्व ही विशेष रूप से अभिप्रेत रहता है ।[2]

आलोच्य मुक्तक-रचनाओं में रामचन्द्र के अवतार-हेतु-वर्णन ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है जिका यहाँ सक्षेप मे उल्लेख किया जा रहा है ।

सूरदास ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि पूर्व जन्म में भगवान विष्णु के दो पारपद शापवश हिरण्याक्ष और हिरण्यकशपु हुए जिनका संहार ईश्वर ने वराह और नृसिंह अवतार लेकर किया और अब वे ही रावण और कुम्भकरण के रूप मे उत्पन्न हुए जिनके लिए भगवान को रामावतार लेना पडा जिससे कि वे पृथ्वी का उनके कष्टों से उद्धार कर सकें—

रावन कुभकरन सोइ भए । राम जनम तिनकैं हित लए ॥[3]

ये भू भार उतारन कारन । प्रगटे स्याम शरीर ॥[4]

राम का अवतार भक्तजनों के हित के लिए ही हुआ । उन्होने दया करके सब लोगों के दुःख को दूर किया—

त्रिभुवन नाथ दयालु दरस है, हरी सबने की पीर ।[5]

वे पतितो का उद्धार करते है—'सूरदास प्रभु पतित उधारन विरद, कितौ यह काम ।'[6] वे दुष्टो को कष्ट एव सज्जनो के सुखदाता हैं । इस प्रकार उन्होंने राजा के व्रत को पूरा किया— 'दुष्टनि दुःख, सुख सन्तनि दीन्हौ, नृप व्रत पूरन कीन ।'[7]

राम बड़े कोमल स्वभाव के हैं । इष्ट जनो का दुःख उन्हें सह्य नहीं है । सीता-हरण के पश्चात् वे दीनावस्था में दिखायी पड़ते हैं । रावण सीता का

१. तुलसी की विचारधारा, पृ० ९९
२. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० ४७
३. सूर-रामचरितावली, पद सं० १
४. वही, पद सं० ४
५. वही, पद सं० ४
६. वही, पद सं० ८
७. वही, पद सं० १३

हरण कर ले गया, यह सुनते ही वे शिथिलकाय हो जाते हैं और हाथ से धनुष गिरा देत हैं—

इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रभु, दियो धनुष कर डारि ।[1]

सूर-रामचरितावली, गीतावली एव कवित्तरत्नाकर के अनुसार राम का जन्म पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुआ है—

सुर, नर, मुनि, करि अभय, दनुज हति हरहि धरनि गरुआई ।[2]
दीरघ उदार भुवभार के हरनहार,
पुजवनहार सेना प्रति मन काम के ॥[3]

वे ही ससार के पालक, सृजक और सहारक हैं ।[4]

परब्रह्म, देवता, सन्त, भक्त के रक्षार्थ एव पृथ्वी के निकृष्ट भार को दूर करने के लिए तथा विश्व के अभ्युदयार्थ अनेक अवतार धारण करते हैं—

जब जब जगजाल व्याकुल करम काल सब भूप भूतल भरन।
तब तब तनु धारि भूमि भार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आश्रमवरन ।[5]

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार निर्गुण और सगुण दोनो ही ब्रह्म के स्वरूप हैं उनमे कोई अन्तर नही है—

परम कारन, कज नाम जलदाभतनु सगुन निर्गुन सकल दृश्य द्रष्टा ।[6]

परब्रह्म ने राम के रूप मे ब्रह्मा इत्यादि एव सिद्धो का दु ख निवारण हेतु लीला अवतार लिया है ।

जयति सच्चिदव्यापकानद यद्, विग्रह व्यक्त लीलावतारी ।
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सकोचवस, विमल गुन गेह नर देहधारी ॥[7]

इस विचित्र सृष्टि का परब्रह्म ने शून्य द्वारा निर्माण किया। निराकार ब्रह्म सृष्टि का निमित्त और उपादान दोनों ही कारण है—

सून्य भीति पर चित्र रग नही तनु बिना चितेरे ।[8]

अवतार-वर्णन

'अवतार' शब्द का मूल व्युत्पत्यर्थ है—उतरना । भगवान आवश्यकता पड़ने

१ सूररामचरितावली, पद स० ५५ २ गीतावली, बालकाण्ड, पद १६।३
३ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छद स० १०
४ सूररामचरितावली, पद स० ४७
५ विनयपत्रिका, पद स० ४३ ६ वही, पद स० ५३
७ वही, पद स० ४३ ८ वही, पद स० १११

पर भक्तो के कल्याण के लिए भूतल पर उतर आता है। भक्तवत्सल भगवान ही अति पीड़ित भक्त के सहायतार्थ उसके समीप चला आता है। परिस्थितियों के अनुसार भगवान कोई न कोई शरीर धारण करके आविर्भूत होता है—जैसे, वराह, नृसिंह आदि।

अवतार का प्रयोजन है—असुरो, खलो एवं विधर्मियो का नाश। प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थों में राम का अवतार राक्षसो के नेता रावण और कुंभकरणादि के नाश, देवताओ, ऋषि, मुनियो एवं सज्जनो की रक्षा के लिए हुआ है—

> रावन-कुभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकै हित लए।[1]
> पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौ।[2]

लीला—उपर्युक्त प्रयोजनों की सिद्धि हेतु भगवान ईश्वर लीला करते हैं। 'इस प्रकार जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय भगवान का लीला विलास है।[3] उसी प्रकार शरीर धारण करके चरित करना भी उसकी लीला है। भक्त के केन्द्र-बिन्दु से अवतार लीला का एक निश्चित प्रयोजन है—'भक्तों को भक्ति-रस का दान।'[4]

भगवान के लीला वैशिष्ट्य के आधार पर ही तुलसी ने राम के चरित को लीला-अवतार कहा है—

> दशरथ गृह सोई उदार, भवन संसार भार,
> लीला अवतार तुलसिदास-त्रास हारी।[5]
> श्री रघुनाथ की लीला नित्य गाऊं।[6]

निर्गुण-सगुण

ब्रह्म के दो रूप हैं—निर्गण और सगुण। तुलसीदास ने इन दोनों ही रूपो का वर्णन किया है। आचार्य शंकर और बल्लभाचार्य ने केवल निर्गुण ब्रह्म अथवा सगुण ब्रह्म को ही पारमार्थिक सत्य माना है और तुलसीदास का ब्रह्म इन दोनो से मिलता-जुलता है। वे दोनो रूपो से परमार्थतः सत्य मानते हैं। निर्गुण-निरूपण में वे शंकराचार्य और सगुण-निरूपण में वे रामानुजाचार्य और बल्लभाचार्य के समीप हैं।

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० १
२. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, छन्द सं० ७
३. ब० सू०, २।१।१३ तत्वत्रय, पृ० ८९
४. तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० ७१
५. गीतावली, बालकाण्ड, पद सं० २५।६
६. सूररामचरितावली, पद सं० ७९

निर्गुण ब्रह्म को निर्विशेष, अनिर्वचनीय, सत्, चित्, आनद, अनहो, अखड, अनत, अनादि, अविच्छिन, मायातीत, निरजन, निराकार, नित्यमुक्त, ज्ञानगिरा गोतीत, आवाड्‌मनसगोचर आदि कहा गया है। वस्तुत तुलसीदास ने ईश्वर के इन सब रूपो का निरूपण अपनी रचनाओ मे किया है। शकराचार्य ने भी ब्रह्म के इसी स्वरूप का परिचय दिया है। इनका ब्रह्म भी नित्य, सार्वभौम, चैतन्य, परमार्थ सत्य, ज्ञान, अनत, सर्वव्यापक, अद्वितीय, आनदस्वरूप, माया-रहित, अव्यक्त, अखड आदि रूप वाला है। इस प्रकार शकराचार्य और तुलसीदास के निर्गुण ब्रह्म के विवेचन मे अत्यधिक समानता है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म मे तत्वत कोई भेद नही है। दोनो एक दूसरे के पर्याय हैं। आवश्यकतावश निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण कर लेता है। सगुण ब्रह्म अनेक विमल सद्‌गुणो से सम्पन्न होता है। वह करुणानिधान, दीनदयालु, दीनबधु, जनरजन, शोक-भय-भजन, छविधाम, भक्तवत्सल, कृपानिधान, सुख-निधान, रूप का आगार, कोटि कामदेवो के सौंदर्य को पराभूत करने वाला होता है। वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य आदि ने ब्रह्म के इसी सगुण रूप का विवेचन किया है जिसका प्रकाशन सूरदास और तुलसीदास ने अपनी कृतियो मे व्यापक रूप से किया है तुलसीदास के राम ही चराचर के स्वामी, जगत के प्रकाशन, सर्वव्यापक, अनादि, मायाधीश हैं। वे निराकार होते हुए भी साकार रूप धारण करते हैं। यह निर्गुण ब्रह्म ही भक्त के रक्षार्थ सगुण रूप मे प्रकट हो जाता है। डॉ० उदयभानु सिंह ने तुलसी दर्शन-मीमासा म इसका विवेचन करते हुए स्पष्ट किया है–'सगुन अगुन उर अतरजामी'–राम के इसो सगुन, निराकार रूप का ही प्रतिपादक है। इस प्रकार तुलसीदास के राम सगुण हैं। वे निराकार भी हैं और साकार भी। भक्त के प्रेमवश वे निराकार से साकार रूप मे अवतीर्ण हुआ करते हैं। तत्वत निर्गुण और सगुण मे कोई स्वरूप-भेद नही है। केवल वेश का अन्तर है। जिस प्रकार का रूप-भेद दारुगत अव्यक्त अग्नि और दृश्यमान अग्नि मे है, जल और हिम उपल मे है, अक और अक्षर मे है, वैसा ही भेद निर्गुण और सगुण ब्रह्म मे आभासित होता है। वस्तुत राम का सगुण रूप निर्गुण राम का ऐश्वर्य है। उस ऐश्वर्याभिव्यक्ति के अभाव मे भगवान राम जड और निरर्थक हो जाते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि यदि महेश्वर एक रूप से स्थित रहता तो वह भी घट आदि की भाति महेश्वरत्व एव सविन्व से रहित हो जाता। कवि तुलसी ने पद्म पुष्प शोभित सरोवर के सादृश्य द्वारा उपपत्तिपूर्वक राम की सगुण-रूप-माधुरी का चित्ताकर्षक वर्णन किया है–

फूले कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुण ब्रह्म सगुण भए जैसा ।

इस प्रसंग मे तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय के विचार रामभक्ति शाखा मे द्रष्टव्य हैं–'भक्तिमत इसी अज, अद्वैत, सर्वव्यापी तथा निर्गुण ब्रह्म की सगुण लीला का गान करता है। इस मत की अभिव्यक्ति 'सोई जस सनकादिक गावत। नेति-नेति कहि कानि' के रूप में होती है। ब्रह्म को अनंत कह कर और मान कर भी भक्तिमत उसकी सगुण लीला का गान करता है ।"

आलोच्य कवियो की रचनाओ में परब्रह्म राम के सगुण-निर्गुण रूप एवं विशिष्ट गुणो का विश्लेषण तथा राम के जन्म-हेतु का वर्णन मात्र अभीष्ट है।

निर्गुण रूप– राम के निर्गुण रूप की महिमा अत्यधिक है, ऐसा वेद, पुराणो मे कहा गया है । इस सम्बन्ध में सूरदास का कथन द्रष्टव्य है–

सूरदास प्रभु अगनित महिमा, वेद पुरातनि गाई ।[1]

राम का स्वरूप-निरूपण करते समय 'नेति, नेति' अर्थ गौरवशाली शब्दों का वे बार-बार व्यवहार करते हैं—

सूरदास बलि गयौ राम कौ, निगम नेति जेहि गायौ ।[2]

अगद-रावण के प्रसंग मे राम को निगम नेति की संज्ञा से अभिहित किया गया है–'निगम नेति जस गावत' ।[3] वेद जिनके यश का गान नेति, नेति कह कर करते हैं । राम की महिमा अगम है, उसका वर्णन नही किया जा सकता है—

सूर प्रभु अगम महिमा न कुछ कहि परति, सिद्ध गंधर्व जै जै उचारै ।[4]

जब राम रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटते हैं और अयोध्यावासी उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो उनकी अपार महिमा और व्यापक प्रभाव का वर्णन हुआ है—

देखत प्रभु की महिमा अपार सब बिसरि गए मन बुधि विकार ।[5]

हनुमान द्वारा दहित लंका के सम्बन्ध मे राम के पूछने की प्रसंग मे सूरदास

१. सूररामचरितावली, पद सं० २८
२. वही, पद स० ४४
३. वही, पद सं० १५०
४. वही, पद सं० १८७
५. वही, पद सं० १९०

निम्न पंक्ति में इंगित करते है कि निराकार ब्रह्म ही राम के रूप मे प्रकट हुआ है—सूरजदास सुनो सब संतो, अवगनि की गति न्यारी।[1]

विभीषण का राम की शरण मे आने के प्रसग में सूरदास कहते हैं—

जनि अमरन सरन सूर के प्रभु कौं तुरतही आइ द्वारे तुलाओ।[2]

सागर जल पर विषम पत्थरों के तैरने के प्रसग में सूरदास द्वारा ईश्वर के सगुण रूप की पुष्टि हुयी है—सूरदास क्यो बूडत कलउंर, नाम न बुडन पावत।[3]

अगद-रावण वार्ता के प्रसग मे सूरदास द्वारा राम का सगुण रूप प्रतिपादित है—

सूरदास निस्तरि है यह जम, करि-करि दीन दुखित जन गावत।[4]

गीतावली मे कौशल्या राम को प्रातःकाल जगाती हैं। उसी प्रसग मे स्वय तुलसीदास ब्रह्म के सगुण रूप को इंगित करते हैं—

तुलसीदास अति आनन्द देखि कै मुखारविन्दु, छूटे भ्रम फद परम द्वद्व मोर।[5]

भगवान के मुख-कमल देखकर सभी भक्त-जन आनन्दित हुए और उनके भ्रमजनित बन्धन छूट गये एव राग द्वेषादि-द्वन्द्व मद हो गए। एक अन्य पद है—

तुलसीदास सरा लीजै जानि अभय कीजै, दीजे मति विमल गावै-चरितवर तिहारे।[6]

अहिल्या प्रसग मे सगुण-रूप के प्रभाव का वर्णन किया गया है—

तुलसीदास तेहि चरन रेनु की महिमा कहै मनि कवनी।[7]

राम के चरणो की धूल की महिमा का किस बुद्धि के द्वारा वर्णन हो सकता है। एक अन्य पक्ति मे राम के सगुण-रूप की पुष्टि हुई है—

प्रीति को, प्रतीति को, सुमिरिबे को,
सेइबे को, सरन की समरथ तुलसिहु ताके हैं।[8]

तुलसीदास सठ क्यो करि बरनै यह छवि, निगम नेति कह गाई।[9]

तुलसीदास ऐसी अलौकिक छवि का वर्णन कैसे कर सकता है जिसे वेदो ने भी 'नेति नेति' कहा है। शबरी को मोक्ष प्रदान करने के अवसर पर तुलसीदास ब्रह्म का अवतार मानते हैं।[10]

---

१ सूररामचरितावली, पद सा० १०९ २ वही, पद स० ११७
३ वही, पद स० १३५ ४ वही, पद स० १४८
५ गीतावली, बाल०, पद सं० ५ ६. वही, पद स० ३९
७ वही, पद स० ५८ ८ वही, पद स० ६४
९ वही, पद स० १०८।१० १० वही, अरण्य०, पद स० १७।६

उत्तरकाण्ड मे तुलसीदास ने उनके ब्रह्मत्व की पुनः चर्चा की है। राम ही ब्रह्म हैं जो आनन्ददायक और सब दुःखो को दूर करने वाले हैं—

अतिसय आनन्द मूल, तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध मंडन रघुराई।[1]

उत्तरकाण्ड का एक अन्य पद है जिसमें राम के अव्यक्त रूप के सम्बन्ध में अनेक तर्क प्रस्तुत किये गये हैं—

बरनत रूप पार नहिं पावत, निगम सेष सुक संकर भारति।
तुलसीदास केहि विधि बखानि कहै यह मन वचन अगोचर मूरति॥[2]

उत्तरकाण्ड के एक अन्य पद में तुलसीदास ने राम को सगुण रूप को देवताओ द्वारा अवधवासियो द्वारा सिद्ध करावे हुए स्वयं भी उनको ब्रह्म कहा है—

बरपत प्रसून बर विबुध वृन्द। जय जय दिनकर कुल कुमुद चंद।
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध बास। गावत कलकीरति तुलसीदास॥[3]

तुलसीदास कहते हैं कि सूर्यकुल के कुमुद कलाधर के सदृश देवगण जय-जयकार करते हुए उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। त्रिदेव में विशेष देव ब्रह्मा भी अयोध्या मे उनके निवास की प्रशसा कर रहे हैं। ऐसे प्रभु की कीर्ति का मैं गान करता हू।

कवितावली में तुलसी अन्य विशिष्टताओ के द्वारा राम के सगुण-रूप का वर्णन करते हुए उन्हे ब्रह्म का अवतार मानते हैं—

नाम अजामिल तें खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिलाकन होत अजाखुर वारिध बाढ़े।[4]

एक अन्य छन्द भी इस प्रसग में द्रष्टव्य है—

ऐसे सोक मे तिलोक कै बिसोक पल ही मे,
सब ही को तुलसी को साहिब सरन भो।[5]

कवित्तरत्नाकर मे निम्नलिखित छंद राम के सगुण-रूप को स्पष्ट करते हैं—
(क) दव दुःख दंडन, भरत सिर मडन वे बदौ अघखंडन खराउँ रघुराइ की।[6]

---

१. गीतावली, उत्तर०, पद० सं० ३।६   २. वही, पद० स० १७।१६
३. वही, पद स० २२।११   ४. कवितावली, अयोध्या० छंद स० ५
५ वही, लका०, छंद स० ५६   ६. कवित्त०, चौथी तरग, छंद स० १

(ख) भाजन है मगल मुकति रूप कद के ।
विश्व के भरन मनकादि के मरन दोऊ राजत चरन महाराज चद के ।[1]
(ग) दीरघ उदार भुव भार के हरन हार ।[2]

तुलसी के अनुसार राम सगुण और निर्गुण दोनो ही ब्रह्म हैं । शेष, श्रुति, सरस्वती, शम्भु, नारद आदि उनक चरित्र को नही जान सके ।

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूप ।
सेप सुति सारदा सभु नारद सनक गनत गुन अनत नहिं तव चरित्र ॥[3]

राम ही ससार की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण जगत कार्य है और वे कारण जगत और राम मे कार्य-कारणभाव है ।[4]

तुलसीदास ने राम के व्यापक, निराकर स्वरूप की छवि का वर्णन असम्भव बताया है ।[5] वेद भी राम की छवि को नेति-नेति—यह नही, यह नही कह कर उसका वर्णन करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं । ब्रह्म गुणरहित निर्गुण है, किन्तु वही सगुण रूप मे नेत्रो को फल दे रहा है ।[6]

निगम, वेद भी राम की छवि का वर्णन करने म असमर्थ है—

बरनत यह अमित रूप थकित निगम नाग भूप ।
तुलसिदास छवि विलोकि सारद भइ मोरी ।[7]

गीतावली मे तुलसीदास पुन कहते है कि राम के रूप का वर्णन वेद नहीं कर पाता है, क्योकि उसका स्वरूप मन, वचन से अगोचर है—

बरनत रूप पार नहिं पावत निगम सेप सुक शकर भारति ।
तुलसीदास केहि विधि बखानि कहै यह मन बचन अगोचर मूरति ॥[8]

राम के प्रताप के विषय म कहना या समझना असम्भव है क्योकि वहां तो वद भी उसका वर्णन करने मे असमर्थ हैं—

सेनापति राम कौं प्रताप अद्‌भुत जाहि,
गावत निगम, पैं न पार वे परत हैं ।[9]

---

१ कवित्त०, चौथी तरग, छद स० २ २ वही, छद स० १०
३ विनयपत्रिका, पद स० ५० ४ तुलसीदास, पृ० ४६९
५ गीतावली, उत्तर०, पद स० १०६ ६ वही, पद स० ७
७. वही, पद स ७ ८ वही, पद स० १७
९ कवित्त०, चौथी तरग, छद स० ४९

सेनापति ने राम को परम पुरुष का अवतार मान कर सगुण रूप की पुष्टि की है—पूरो अवतार भयौ पूरन पुरुष कौं ॥[1]

ध्यान मजरी मे अग्रदास ने राम के सगुण-रूप की ओर सकेत किया है। उन्हे अघ-सागर (दूषण) को हरने वाला तथा सुख की निधि (सुखराशि) कहा गया है—'शरण गहे सुखराशि हरत अघसागर दूषण।'[2]

कवि ने राम को सच्चिदानन्द कहा है, परब्रह्म ही सच्चिदानन्दस्वरूप है। राम का चरित्र सुनने से पाप नाश होते हैं, उनका ध्यान सज्जन मनुष्यो को आनन्द देने वाला एव कल्याणकारी है। यह अश उनके ब्रह्म के सगुण रूप का परिचायक है—

परमसार यह चरित सुनत श्रवणन अघहारी।
ध्यान परम कल्याण सन्तजन आनदकारी ॥[3]

अब यहाँ पर आलोच्य कवियो की रचनाओ में वर्णित राम के ब्रह्मस्वरूप का सक्षेप मे परिचय देना समीचीन होगा।

देवताओं द्वारा राम के ब्रह्मत्व का समर्थन

सूर-रामचरितावली, गीतावली, कवितावली, कवित्तरत्नाकर आदि मुक्तकों में राम के परब्रह्मत्व की घोषणा आदि से अन्त तक की गयी है। राम के जन्म पर आकाश मे देवताओ की भीड़ एकत्र हो जाती है, देवताओ द्वारा राम के पर-ब्रह्मत्व के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं—

त्रिदस नृपति रिषि व्योम विमाननि देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवन-नाथ दयालु दरस दै, हरी सबन की पीर॥[4]

गीतावली में राम-जन्म के समय देवगण आकाश में दुदुभी बजाते हुए पुष्पों की वर्षा करते है। समान्य पुरुष के जन्म पर वे सक्रिय एव प्रसन्न नही होते, किन्तु राम का जन्म तो परब्रह्म का अवतार है इसलिए उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक है। नामकरण के दिन पार्वती, लक्ष्मी, शारदा, शची अत्यधिक प्रसन्न होती हैं—'उमा-रमा, सारद-सची, लखि सुनि अनुरागी।'[5]

राम के जन्म से सभी सतजन सुखी होते है और दुष्ट मनुष्यो के मन भय

१. कवित्तरत्नाकर, छद सं० ४।७
२ अग्रदास, ध्यानमजरी, छद स० १
३. वही, छद स० ७२
४ सूररामचरितावली, पद स० ४

से मलिन हो जाते हैं। राम की बाल-क्रीडाएँ देखने के लिए नारद तथा तैंतीस कोटि देवता अयोध्या मे आते है—

सर-क्रीडा-दिन देखन आवत नारद सुर तैंतीस।[1]

बालक राम के दर्शन से पार्वती, लक्ष्मी, शारद, आदि अत्यन्त सुखी है, देवता इन्द्र बनना चाहते है ताकि सहस्र नत्रो से वे राम के दर्शन कर सकें और इन्द्र सूर्य बनना चाहते हैं, ताकि वे पूरे विश्व के नेत्रो से राम के दर्शन करें।[2]

धनु भजन के अवसर पर देवगण विमानो पर विराजमान बाजे बजा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। आकाश म मगल ध्वनिया होती हैं—

मावधान ह्वै चढे विमाननि चले बजाइ निसान।
उमगि चल्यो आनद नगर, नभ जयधुनि मगलगान ॥[3]

राम की सेना को मेघनाद ने नागपाश से बांध दिया, किन्तु राम-नाम के स्मरण से ही गरुड द्वारा नागपाश काट दिया गया। उस समय हर्षोल्लास में भर कर देवगण आकाश में अभय ददुभी बजाते हैं—

सूर विमान चढे सुर सौं आनन्द अभय निसान बजायौ।[4]

युद्ध मे मरे हुए बन्दर और भालुओं पर इन्द्र ने अमृत की वर्षा कर जीवित कर दिया, उस समय सिद्ध और गन्धर्व राम की जय-जयकार करते है—

सूर प्रभु अगम महिमा न कछु कहि परनि, सिद्ध गन्धर्व जय जय उचारे।[5]

युद्ध म रामको अधिक क्रोधित देखकर ब्रह्मादि देवगण आकाश मे एकत्रित होकर युद्ध एव उसका परिणाम देखने के लिए उत्सुक है। यह भी उनके ब्रह्मत्व का ही सूचक है—

आजु अति कोपे हैं राम।
ब्रह्मादिक गरुड विमाननि देखत है सग्राम।[6]

विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा राम का ब्रह्मत्व प्रतिपादित है। राजा दशरथ राम को, विश्वामित्र को दन मे सकोच करते हैं किन्तु गुरु वशिष्ठ के समझाने पर जब वे राम का परब्रह्म का अवतार जान लेत हैं तो प्रसन्न होकर राम को उनके साथ भेज दते हैं—

---

१ सूररामचरितावली, पद स० ६ २. वही, पद स० ६
३ गीतावली, बाल०, पद स० ९०।९ ४ सूररामचरितावली, पद स० १६१
५ वही, पद स० १८७ ६ वही, पद स० १७९

गुरु वशिष्ट समुझाय कह्यो तव हिय हरषाने जानि सेवगयन।
सौंपे सुत गहि पानि, पाँय परि, भृगुंरउर चले उमगि चयन ॥[1]

भरत भी राम को परब्रह्म का अवतार मानते हैं, वे चित्रकूट में जाकर राम से विनती करते हैं—

विनती भरत करत कर जोरे।
दीनबंधु ! दीनता दीन की कबहु परै जनि मोरे ॥[2]

सूररामचरितावली एवं कवित्तरत्नाकर के अनुसार भरत द्वारा राम का ब्रह्मत्व सुस्पष्ट है—'चरन सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।'[3]

देव-दुख-दहन, भरत-सिर-मंडन, वे
वदौं अघ-खंडन खराऊं रघुराइ की ॥[4]

हनुमान द्वारा भी राम का ब्रह्मत्व समर्थित है। लंका में अग्नि लगाते समय वे विचार करते हैं कि मेरे अग्नि लगाने मे कहीं सीता जी न जल गयी हों, किन्तु राम तो अन्तर्यामी हैं—'वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोई।'[5]

गीतावली मे भी हनुमान द्वारा राम को ब्रह्म स्वीकारा गया है। हनुमान सीता जी को समझाते हुए उनसे कहते हैं कि राम तो अन्तर्यामी हैं, वे सब के मन की बात जान लेते हैं। आपकी वियोगजन्य पीडा उनको अवश्य ज्ञात होगी—

सब के जिय की जानत प्रभु प्रवीन।[6]

कौशल्या को भी राम का ब्रह्मत्व मान्य है। कई अवसरों पर वे सांकेतिक भाषा मे राम को परब्रह्म का अवतार मानती हैं, परन्तु वन-गमन के समय तो वे स्पष्ट शब्दो में घोषणा करती हैं—

बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सभारे।
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिवस सरवस हारे ॥[7]

ऋषियों द्वारा राम के ब्रह्मत्व का वर्णन

ऋषि विश्वामित्र एवं गुरु वशिष्ट दोनों ही राम को परब्रह्म का अवतार

१. गीतावली, बाल०, पद सं० ५१।२
२. वही, अयोध्या०, पद स० ७६।१
३. सूररामचरितावली, पद स० ४२
४. कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, छंद स० १
५. सूररामचरितावली पद स० ९९
६. गीतावली, सुन्दर०, पद स० ८
७. गीतावली, अयोध्या०, पद स २

मानते हैं। ऋषि विश्वामित्र यज्ञ मे राक्षसो द्वारा डाले गये विघ्नो से दुखी होते हैं। एकाएक उन्हें स्मरण आता है कि राम रघुवश मे ब्राह्मण, सज्जन, देवता, धेनु और पृथ्वी के कल्याण हेतु अवतरित हुए हैं।[1] दूसरा स्थल है जब वे अयोध्या जाते समय मार्ग मे विचार करते जाते है कि आनन्द स्वरूप राम का दर्शन होगा—

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुखकी सीव अवधि आनँद की अवध बिलोकिहौं पाइ हौ।[2]

पहले तो राजा दशरथ को पुत्रो के देने मे सकोच होता है और विशेष रूप से वे राम को किसी भी स्थिति मे विलग नही करना चाहते है। किन्तु ऋषि वशिष्ठ द्वारा यह स्पष्ट करने पर कि राम ब्रह्म के अवतार है, वे राम, लक्ष्मण को मुनि के साथ भेज देते हैं—

गुरु वशिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने जान सेष अयन।[3]

रावण द्वारा राम के ब्रह्मत्व का समर्थन

विरोधी शत्रु-पक्ष द्वारा भी राम का ब्रह्मत्व मान्य है। सूररामचरितावली के अनुसार राम को परब्रह्म बताए जाने का बहुत रोचक उदाहरण सुन्दरकाण्ड मे मिलता है, जिसमे स्वय रावण उनको परम प्रभु स्वीकार करता है और अपने को उनका सेवक बताता है—

ये जननी वे प्रभु रघुनदन, हौं सेवक प्रतिहार।
सीता राम 'सूर' सगम बिनु, कौन उतारै पार ?[4]

रावण की पत्नी मदोदरी परब्रह्म राम की परम भक्त है। वह उनका बार-बार गुण गान करती है, जिसमे उसने कभी उनकी कृपा-वत्सलता की चर्चा की है और कभी परब्रह्मत्व का बखान किया है—

सरन परि मन वच कर्म विचार।
ऐसो और कौन त्रिभुवन मे जो अब लेइ उबारि।[5]

---

१ विप्र-साधु सुर धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो।
सुमिरत श्री सारगपानि छन मे सब सोच गयो॥
—गीतावली, बाल०, पद स० २७।३

२ गीतावली, बाल०, पद स० ४८।१

३ वही, पद स० ५१।२

४ सूररामचरितावली, पद स० ६९

५ वही, पद स० १२४

अन्य पदों में भी मन्दोदरी ने राम को पूर्व जन्मों में वावन और नृसिंह का अवतार धारण करने वाला बताया है—

बलि जब बहु जज्ञ किए, इन्द्र सुनि संकायौ ।
छलि करि लाइ छीनि मही, बावन ह्वै धायौ ।
हिरनकसिप अति प्रचंड, ब्रह्मा वर पायौ ।
तब नृसिंह रूप धरयौ, छिन न बिलंब लायौ ।[1]

मन्दोदरी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि वह राम को परब्रह्म का अवतार मानती है, जिसकी पुष्टि उसके निम्न कथन से और भी अधिक स्पष्ट है—

वे त्रिभुवन पति करहिं कृपा अति कुटुंब सहित सुख जीजै ।
आवत देखि बान रघुपति के, तेरो मन न पसीजै ।।[2]

गीतावली में मन्दोदरी ने राम की अलौकिक विशेषताओं को स्पष्ट किया है । वह उनकी अलौकिक शक्ति ब्रह्मत्व की ओर संकेत करती है—

मानु अजहुं सिख परिहरि कोधु ।
पिय पूरो आयो अब काहि बहु करि रघुबीर विरोधु ।[3]

सामान्य जनों के द्वारा राम के ब्रह्मत्व का समर्थन

राम-वनगमन के समय केवट राम के चरणों के प्रक्षालन में राम के ब्रह्मत्व को प्रकट करता है—

जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनी जसु वेद कहै गाइ कै ।
जिनको जोगीन्द्र मुनि वृन्द देव देह भरि,
करत बियोग जप जोग मन लाइ कै ।[4]

जटायु के द्वारा राम के ब्रह्मत्व का समर्थन हुआ है । राम का दर्शन करके एवं उनके हाथ का स्पर्श पाकर जटायु हरि-लोक चला जाता है—

सूर राम प्रभु दरस परस करि, ततछन हरि के लोक सिधायौ ।[5]

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० १२५
२. वही, पद सं० १४०		३. गीतावली, लंका०, पद सं० १
४. कवितावली, अयोध्या०, पद सं० ९	५. सूररामचरितावली, पद सं० ५६

गीतावली के अनुसार भी राम ने उसका पिता के समान संस्कार करके अपने धाम भेज दिया—'पितु ज्यों गीध क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो।'[1]

शबरी के यहाँ पहुँचने पर तथा स्वाद से जूठे बेर खाकर राम उसे मोक्ष प्रदान करते हैं—

जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति भाव हरि जुग जुग मानत।
करि दडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरि लोक सिधारी॥[2]

इसी प्रकार के भाव गीतावली में भी है—

प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि, परचारि फल सबरी दये॥[3]

राम ने शबरी के चार फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) से चारों फलों को जलाकर उसे (प्रेम लक्षणा भक्ति रूप) सेवा का फल दिया।

विभीषण राम का उपासक है। यद्यपि वह रावण का भाई है वह उन्हें परब्रह्म मानता है। इसी प्रसंग में वह अपने भाई रावण को समझाते हुए कहता है—राम के समान कोई और स्वामी नहीं है, जिसके यश गान में वेद, पुराण, कवि और विद्वज्जन रत रहते हैं, जो माया जीव स्वभाव कर्म और काल—सबके नियामक हैं, शासक हैं, जो सब में व्याप्त हैं और जिनमें सब स्थित है तथा जिनके नाम को ब्रह्मा जैसे संसार के रचयिता, विष्णु जैसे संसार के पालक और शंकर जैसे संहारक जपते रहते हैं ये वे ही राम नर-वेष में अवतरित हुए हैं। वैसा समझकर मेरी विनय मानो ताकि सबका कल्याण हो—

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।
वेदऊ पुरान, कवि कोविद बिरदरत, जाको जस सुनत गावत गुनग्रामै।[4]

सूर रामचरितावली के अनुसार राम का ब्रह्मत्व विभीषण द्वारा सुस्पष्ट है—'ईस को ईस करतार संसार को, तासु पद कमल पर सीस दीजै।'[5]

राम समर्थों में परम समर्थ हैं, वे सर्वेश्वर हैं, विश्व के निर्माता हैं। उनकी शरण में जाने से ही रक्षा हो सकती है।

एक अन्य पद भी राम के ब्रह्मत्व को प्रकट करता है—

---

१ गीतावली, अरण्य०, पद सं० १६।४
२ सूररामचरितावली, पद सं० ५७ ३ कविता०, अरण्य०, छंद सं० १७।५
४ गीतावली, सुंदर०, पद सं० २५।१ ३ ५ सूर रामचरितावली, पद सं० ११७

नाहिन भजवे जोग बियो।
श्री रघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो।[1]

अगद द्वारा राम का ब्रह्मत्व समर्थित है। वह रावण को समझाता है एवं तर्क करता हुआ कहता है, जो सुख से रहना चाहते हो तो सीता को लौटा दो–

तो सो कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ विरोध न कीजिये बौरे।
बालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जेजे भीत मे दौरे॥[2]

गीतावली में अंगद द्वारा राम के ब्रह्मत्व का कथन द्रष्टव्य है—

सुनु ! मैं तोहि बहुत बुझायो।
जगत विदित अति वीर बालि बल, जानत हो, किधो अब बिसरायो।[3]

परब्रह्म राम के जन्म से प्रभावित सत्पुरुषो ने आदरपूर्वक भाइयों सहित बालक राम का चरित्र गा-सुनकर अपने जन्म को लाभान्वित किया है—

राम सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि,
सुजनन आदर जनम लाहु लियो है।[4]

चेतन जीव

जीव और ब्रह्म मे तत्वत. कोई अन्तर नही माना जाता। दोनो ही एक रूप, एकरस और अखड हैं किन्तु लीला के कारण सेवक-सेव्य भाव से अन्तर की प्रतीति होती है। जीव नित्य चेतन, अमल एव सहज सुखराशि है। ईश्वर का अश होते हुए भी मायावश उसकी जीव सज्ञा कहलाती है।[5] जीवात्मा, पच भौतिक मन, बुद्धि, प्राण और इद्रियो से विलक्षण शुद्ध एव नित्य है किन्तु माया के वश होकर आत्मस्वरूप को भुला देता है और ससार मे विचरण करने लगता है।

जीव की चार अवस्थाएँ बतायी गयी हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। प्रथम तीन अवस्थाएँ अभिमानी जीव की हैं, चौथी अवस्था (तुरीय) अभिमानमुक्त जीव की है। जाग्रतावस्था मे इन्द्रियाँ और मन दोनों कार्यशील रहते हैं। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का कार्य बन्द हो जाता है। केवल मन स्वनेजसा कार्यशील रहता है। सुषुप्ति दशा मे मन का कार्य बन्द हो जाता है, परन्तु वह अविचल रूप मे वहाँ विद्यमान रहता है। तुरीयावस्था मे मन ही समाप्त हो

---

१. गीतावली, सुदर०, पद सं० ४६।१-४
२. कवितावली, लका०, छंद सं० १२ ३. गीता०, लका०, छंद स० ४।१,४
४. गीतावली, बाल०, पद सं० १०।४ ५ तुलसी की विचारधारा, पृ० १३२

जाता है और चैतन्य अपने स्वरूप में स्थित होता है। इन्हीं अवस्थाओं के अनुसार जीव भी चार प्रकार के है—विश्व, तैजस्, प्राज्ञ तथा तुरीय।[1]

जीव त्रिविध शरीर का माना गया है—कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर गोस्वामी जी ने त्रिविध शरीरों, अवस्थाओं एवं गुणों आदि का वर्णन प्रस्थान त्रय के आधार पर किया है। जीव मायाभिभूत होने के कारण ही चौरासी लक्ष योनियों मे भ्रमण करता रहता है। जीव के अगल जन्म का कारण होने से अविद्या माया ही उसका शरीर कहलाती है। जीव के कारण शरीर से ही उनके सूक्ष्म अथवा लिंग शरीर की उत्पत्ति होती है। तुलसीदास ने सूक्ष्म शरीर के कार्य कलाप का मूल कारण मन के विकारों को माना है। अन्तःकरण, इन्द्रियाँ एवं प्राण इस सूक्ष्म शरीर के अवयव हैं।[2]

स्थूल शरीर का निर्माण क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर–इन पांच तत्वों के पंजीकरण से होता है। जीव अपने इसी स्थूल शरीर के पोषण मे ही लीन हो जाता है, इसलिए उसे नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ते हैं। जीव के ये दुःख तीन प्रकार के हैं—दैहिक, दैविक और भौतिक।

साधना के आधार पर जीव के तीन भेद हैं-विषयी, साधक और सिद्ध। डॉ० उदयभानु सिंह ने इनका विवेचन करते हुए कहा है—भोग्य पदार्थों में आसक्त जीव को विषयी कहते हैं। साधक जीव वे है जो भक्ति या ज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं और जिन्हें उसकी उपलब्धि अभी नहीं हुई है। परिपक्व साधक वे हैं जिन्हें विषयों से विराग हो गया है, विवेक ज्ञान की प्राप्ति से जिनकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो गयी हैं और जो अप्रतिहत गति से मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हैं। जिसने संसार की मायिकता और राम के परमार्थ स्वरूप को जान लिया है, जिसकी जड-चेतन की ग्रंथि खुल गयी है, जो ब्रह्मानन्द मे सदैव लयलीन रहता है वह जीव सिद्ध है।[3]

साधना के विचार से जीव के तीन भेद किए गए हैं-बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त। विषयरत जीव बद्ध, साधनारत जीव मुमुक्षु और सिद्ध जीव मुक्त कहा गया है। डॉ० उदयभानु सिंह ने मुक्त जीव का विवेचन करते हुए कहा है-मुक्त जीव तीन प्रकार के माने गए है—जीवनमुक्त, विदेह-मुक्त और नित्य-मुक्त। जिन जीवों को कर्मवश जन्म-मरण प्राप्त नहीं होता और भगवान के अवतारों

१ तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० १२५

२ तुलसी की विचारधारा, पृ० १४३ ३ तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० १३०

की भाँति स्वेच्छा से या ईश्वरेच्छा से विभिन्न लोकों में आते जाते हैं, नित्य-मुक्त हैं। लक्ष्मण, हनुमान, गरुड़ आदि इसी प्रकार के जीव हैं। जो शरीर के रहते हुए हरिभक्त अथवा ज्ञान का उदय हो जाने पर बंधन-मुक्त हो जाते हैं, वे जीवन-मुक्त हैं–जैसे जनक, वाल्मीकि, काकभुशुंडि आदि। जो जीव शरीर के नष्ट हो जाने पर मुक्तिप्राप्त करते हैं, वे विदेह-मुक्त हैं, उदाहरण के लिए दशरथ, विराध, वालि आदि। मन का वासना से संयुक्त होना बंधन है। उससे रहित हो जाना ही मुक्ति है।[1]

विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैत दर्शन मे जीवो के जो वर्गीकरण किये गये है, वे तुलसीदास को मान्य हैं। उन्होने अपनी रचनाओ मे इनका स्पष्ट उल्लेख किया है। उनके मतानुसार जीव की तीन अवस्थाओ के अनुसार के विशिष्टाद्वैत के 'अर्थ-कामपर' जीव विषयी हैं। भोगविलास मे लिप्त रहने के कारण जीव मुख्य रूप से विषयी हैं किन्तु साथ ही वह साधक भी हैं, क्योंकि उसका धर्माचरण अभ्युदय के साथ निःश्रेयस् की सिद्धि करने वाला भी है। मुक्त-जीव निश्चय ही 'विमुक्त' या सिद्ध है।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र के मतानुसार–ईश्वर का अश जीव अनन्त एवं उनकी माया की लीला-विहारिणी शक्तियाँ अनन्त हैं। जिस प्रकार उनकी लीला का कोई आदि नही–वह विधि प्रपच अनादि है, उसी प्रकार उनके अशों का भी कोई अन्त नही, कोई गिनती नही। अग्नि की चिनगारियाँ उससे निकलती हैं और उसी में लीन होती हैं। यही क्रम निरन्तर चलता रहता है, वे बुझ कर भी अव्यक्त अग्नि बनी रहती हैं। बुझ जाने पर उनका व्यक्त रूप भले ही न रह जाय, परन्तु अखिल विश्व में ओत-प्रोत रहने वाले अलक्षित अग्नितत्व के साथ उनका तादात्म्य हो जाने के कारण हमे यह मानना ही पडेगा कि उनकी तात्विक सत्ता विद्यमान है। ईश्वरांश जीवो का भी यही हाल है। वे इसी प्रकार प्रकट-बद्ध और मुक्त होते है और ब्रह्म में लीन होते रहते हैं, परन्तु ऐसे परिवर्तन होते हुए भी वे अविनाशी कहलाते है।[2]

जीवात्मा सच्चिदानंद ईश्वर का अंश है किन्तु वह जड़रूपिणी माया के वशीभूत होकर संसार में भटकता रहता है। इसी को तुलसीदास जी ने जड चेतन की ग्रन्थि कहा है किन्तु यहाँ जड का अर्थ अज्ञानोपहित है, अचेतन नही।

१. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० १३२-१३३

२. डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र : तुलसी दर्शन, पृ० १८४, १८५

शुद्ध जल जैसे पृथ्वी पर पड़ने से मटमैला हो जाता है, उसी प्रकार जीव माया से लिप्त होकर अज्ञानी हो जाता है। गंगाजल जैसे मदिरा के संपर्क से मदिरा बन जाता है और पुन मदिरा गंगा जी से मिलकर शुद्ध गंगा जल हो जाता है, वैसे ही जीव मायाग्रस्त होकर आत्मस्वरूप को भूल जाता और है और माया से विमुख होने पर वह पुन अपनी शुद्ध स्थिति में आ जाता है।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र के मतानुसार—"तुलसी ने जीवों को तीन कोटियों में विभक्त किया है। पहली कोटि विषयी लोगों की, दूसरी साधकों की और तीसरी सिद्धों की। सिद्धों के लिए गुरु-शास्त्र का कोई प्रयोजन नहीं है।"[1] "विषयी लोगों के लिए सबसे प्रबल है—कामोपभोग और उसका प्रधान साधन है प्रमदा।"[2] यह बात नहीं कि विषयी लोग सदा सर्वदा विषयी ही बने रहें, उनमें से अनेकों को साधक होना ही पड़ता है। बात यह है कि प्रत्येक जीव आखिर अपने आदर्श पूर्णत्व का—ईश्वर का—अंश ही तो है, केवल अंश ही नहीं वह उसका सहज सघाती और सहज स्नेही भी है। इसलिए महत्त्वाकांक्षा—स्वत. पूर्ण बनने की अभिलाषा उसमें स्वाभाविक है।[3]

जीव और परमात्मा में भेद है। परमात्मा मायापति है और जीव उसकी माया से अभिभूत है—'हौं जड़जीव ईस रघुराया। तुम मायापति हौं बस माया।'[4]

पर द्वैत बुद्धि मन का विकारमात्र है। यदि यह विकार न हो तो जगत की कोई स्थिति ही न हो—

जौ निज मन परिहरै विकारा।
तौ कत द्वैत जनित ससृति दुख ससय सोक अपारा।[5]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी इस भावना की पुष्टि करते हुए कहा है कि राम भक्ति प्राप्त करने के लिए द्वैत-भावना का परित्याग आवश्यक है—[6]

सेवत साधु द्वैत भय भागे। श्री रघुबीर चरन लौ लागे।[5]

राम की इस माया से मुक्त सतो और राम में किसी प्रकार का कोई भी अन्तर नहीं होता—

---

१ डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र : तुलसीदर्शन, पृ० ९४
२ वही, पृ० ८६
३. वही, पृ० ८२
४. विनयपत्रिका, पद स० १७७
५. वही, पद स० १२४
६ डॉ० माताप्रसाद गुप्त : तुलसीदास, पृ० ४७५

संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं । किमपि मतिमलिन कह दास तुलसी ।[1]

जीव का मन सांसारिक विषयों की ओर लगा रहता है । जीव ने मन को ज्ञान का साधन मान लिया है और राग, स्नेह, द्वेषादि कर्मों में वह सदैव लिप्त रहता है और उन कर्मों के फलस्वरूप वह निरन्तर माया-मोह के चक्र में पड़ा हुआ अनेक प्रकार के सुख-दुःखों की अनुभूति करता है—

जब लगि नहिं निज हृदि प्रकाश अरु विषय-आस मनमाहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत, सपनेहु सुख नाहीं ॥[2]

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में जीव की इस स्थिति और उसकी भर्त्सना अनेक पदों में की है—

विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहु पल एक ।
ताते सहौं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥[3]
काम लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ।[4]

मनुष्य का मन सांसारिक विषयों में इतना लिप्त है कि वह कभी भी ईश्वरोन्मुख नहीं होना चाहता—

कबहु मन विश्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो ।
जदपि विषय संग सह्यो दुसह दुख विषम जाल अरुझान्यो ।[5]

मन इतना अधिक दुराग्रही है कि अपनी इस निम्नतम दशा से ऊपर उठने का नाम ही नहीं लेता—

मेरो मन हरि जू ! हठ न तजै ।
निसि दिन नाथ ! देउं सिख बहु विधि करत सुभाउ निजै ।
लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥[6]

जीव अपने वास्तविक स्वरूप को मायाजन्य भ्रम के कारण भूल बैठा है तथा कृत्रिम वस्तुओं को अपनी भेद-बुद्धि का कारण अपना समझता है। डॉ०

१. विनयपत्रिका, पद सं० ४०
२. वही, पद सं० १२३
३. वही, पद सं० १०२
४. वही, पद सं० १५८
५. वही, पद सं० ८८
६. वही, पद सं० ८९

माताप्रसाद गुप्त के शब्दो में—अनात्म मे आत्म-भावना और आत्मा म अनात्मा-भावना ही ससृति का हेतु है, मायावश अपने सहज स्वरूप को भूल जाने के कारण ही जीव स्वत अपने निर्मल, निरजन, निर्विकार और उदार सुख को खो बैठा और अपने को कर्मचक्र मे डालकर परवश हो रहा है।[1] विनय पत्रिका मे यही तथ्य इस प्रकार रखा गया है—

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो।
मायावस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।
पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनहु नहिं मिल्यो।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि पथ तू हठि हठि चल्यो॥[2]

व्यक्ति को भक्ति, उपासना के सस्कारजन्य होने से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है, उस समय उसे अपने वास्तविक स्वरूप से अनुराग उत्पन्न होता है। डा० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों मे अनात्म में आत्म का बोध होने पर ही जीव को पुन अपने सहज स्वरूप से अनुराग होता है और अपने सहज स्वरूप स उसके अनुराग का अर्थ ही यही है कि वह जगत (अनात्म) से अपने (आत्म) को भिन्न और निर्मल, निरामय तथा एकरस समझता है। इस सिद्धान्त को गोस्वामी जी विनयपत्रिका में इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

देह जनित विकार सब त्यागे। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै॥

इस प्रकार तुलसी ने जीव को ईश्वर का ही अश माना है। इसलिए वह भी ब्रह्म के समान आनन्दमय, चेतन एव अमल है। अद्वैतवादी जीव और ब्रह्म में अन्तर नही मानते हैं। गोस्वामी जी विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीवन और ब्रह्म मे अन्तर मानते हैं। प्रारम्भ मे जीव और ब्रह्म एकस्थ एक रूप थे, तदनन्तर जीव ब्रह्म से अलग हुआ—

जिव जब तें हरि ते बिलगान्यो, तब तें देह गेह निज जान्यो।[3]

और माया के कारण अपना स्वरूप भूल गया और ससार म लिप्त हो गया—

मायावस स्वरूप बिसरायो, तहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।[4]

और सासारिक कर्मों की डोर मे सुदृढता से बधता गया—

---

१ डॉ० माताप्रसाद गुप्त - तुलसीदास, पृ० ४७८
२ विनय पत्रिका, पद स० १३६
३ विनयपत्रिका, पद स० १२६
४ वही, पद स० १३६

तैं निज कर्म डोरि दृढ कीन्ही, अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही ।[१]

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार ब्रह्म और जीव में भेद है कि आप स्वामी है और मैं दास हू—'ब्रह्म तू ही ठाकुर हौ चेरो ।'[२]

माया अवच्छिन्न जीव का मन ससार मे रमण करता है। वह असत्य ससार को सत्य मानकर कर्म के जाल मे बँधा रहता है। संसार मृगतृष्णा के समान असत्य है, भ्रमात्मक है किन्तु वह मृग के समान संसार के क्षणिक सुखों के भ्रम मे दौडा करता है–

(क) मृग भ्रम बारि सत्य जिय जानी, तहँ तू मगन भयो सुख मानी ।[३]

(ख) तौ कत मृगजल रूप विषय कारन निसि बासर धावै ।[४]

(ग) तौ विष्य बिलोकि झूँठि जलमन कुरंग ज्यों धावै ।[५]

जीव का ससार मे लिप्त रहने मे कल्याण नही है, गोस्वामी जी कहते हैं कि वृद्धावस्था रूपी दिशा मे काल रूपी सूर्य उदय हो गया है किन्तु हे जड़ ! तू अब भी सचेत नही होता है। दूसरा स्थल कवि का आत्म-विषयक है–

तुलमी को भलो पै तुम्हारें ही किये कृपालु,
कीजै न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है ।[६]

तुलसी कहते हैं कि ससार मे जीव क्षणभगुर है। उसका कल्याण आप के द्वारा ही सम्भाव्य है। अतः आप शीघ्र ही मुझ पर कृपा कीजिए। कवि ने स्पष्ट किया है कि राम की भक्ति के बिना जीव का संसार में कल्याण नही। उसे अनेक प्रकार के कष्टो का जिन्हे वह सुख समझता है, सामना करना पड़ता है—

तौ लौ लोभ-लोलुप ललात लालची लबार,
बार-बार लालचु धरनि धन धाम को।[७]

अग्रदास रचित ग्रंथावली में कतिपय स्थल जीव-विषयक हैं और जीव को अविद्या से बद्ध दिखाया गया है। कवि का कथन है कि राम की चरणोपासना तथा दृढ भक्ति से भी मोक्ष सम्भाव्य है।[८]

एक कुंडलिया मे अग्रदास ने जीव को प्रबोधित करते हुए कहा है कि बिना भक्ति-अनुराग के ससार मे उद्धार सम्भव नही इसलिए राम की उपासना करना ही श्रेयस्कर है—'अग्रस्वामि भज राम कों तजो आल जंजाल ।'[९]

---

१. विनयपत्रिका, पद स० १३६
२. वही, पद सं० १७९
३. वही, पद स०.१३६
४. वही, पद स० ११६
५. वही, पद स०.१६८
६. कवितावली, उत्तर० छंद सं० ६५
७. वही, छंद सं० १२४
८. अग्र० ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, कुंडलिया सं० ८
९. वही, पद सं० २२

माया

स्वामी शकराचार्य ने माया को अज्ञान और अविद्या का पर्याय माना है। इसे उन्होने अनादि और अविद्या भी कहा है। वे त्रिगुणात्मिका माया की दो शक्तिया मानते हैं–एक विक्षेप और दूसरी आवरण। क्रिया रूप विक्षेप शक्ति रजोगुण की है जो राग, दु ख एव विकारादि समस्त प्रवृत्तियो की मूल है और जन्म-मरण रूप ससार का आदि कारण आवरण शक्ति तमोगुण भी है, जिसके कारण वस्तु कुछ का कुछ प्रतीत होन लगती है। यही आवरण शक्ति का पसारण करती है। इन आवरण एव विक्षेप शक्तियो को अविद्या माया कहा गया है।[1] जैसा कि पहले कहा गया है—शकर की माया अज्ञान का पर्याय है किन्तु वैष्णवो की माया ईश्वर की शक्ति है। शकर माया को मिथ्या मानते हैं, रामानुज ईश्वर की शक्ति होने के कारण उसे सत्य कहते हैं। शकर की माया शाश्वत नहीं है, भावात्मक है।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र के मतानुसार—"इस माया के दो भेद हैं। एक का नाम विद्या है और दूसरे भेद का नाम अविद्या है। विद्या के सहारे तो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का चक्र चला करता है और अविद्या के सहारे नियति का चक्र चला करता है। माया की विद्याशक्ति तो ससार लीला के प्रवाह के लिए आवश्यक है। उसकी अविद्याशक्ति जो दुष्ट और दु खरूप कही गयी है, आनद का स्वादत्व स्पष्ट करने के लिये विपर्यय का काम देती है।"[2]

गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रह्म की आदि शक्ति को मूल प्रकृति अथवा माया कहा है। यही विद्या माया है। विद्या माया जगत् की सृष्टि करती है और अविद्या माया के कारण जीव मोह मे फँसता है। यह माया प्रभु प्रेरित है और सारा ब्रह्माण्ड इसके वश मे होता है। निर्गुण ब्रह्म को उनकी लीला के कारण उनकी माया जब ढक लेती है तो उनकी सज्ञा मूल प्रकृति होती है। ब्रह्म के क्षुभित होने पर इस मूल प्रकृति से 'महत्तत्व उत्पन्न होता है और उन्हीं की प्रेरणा से महत्तत्व से अहकार प्रकट होता है। अहकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध नामक पाँच तन्मात्राएँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पाँच स्थूल भूत, दस इन्द्रियाँ, उन, दस इन्द्रियो के अधिष्ठाता देवता, बुद्धि, मन प्राण आदि की सृष्टि होती है। तुलसी ने इस सिद्धान्त का निरूपण विनयपत्रिका मे किया है–

१ तुलसी की विचारधारा पृ० १२४
२ डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र तुलसीदर्शन, पृ० १८५

प्रकृति महत्तत्व सब्दादि गुन देवता व्योम मरुत दगि अमलाबु उर्वी ।[1]

वस्तुतः राम सृष्टि और स्रष्टा दोनो ही हैं। इस तथ्य को गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका के कई पदों में कहा है—

सिद्धि साधक, साध्य वाच्य वाचक रूप मन्त्र जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा ।[2]

विद्या माया से सृष्टि, स्थिति, प्रलय अथवा यो कहिये कि रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण का तारतम्य चला करता है। इसी से क्षिति, जल, नभ, पावक, पवन की रचना होती है। इन्ही पच तत्वो से शरीर बनते हैं और शरीर मे चैतन्य-सत्ता का विकास होने से जीवो का संगठन होता है। शरीर संबद्ध होने के कारण जीव अपने को शरीर परिच्छिन्न और इस प्रकार व्यक्तित्व विशिष्ट मानने लगता है। इसी मानने लगने का नाम अविद्या है। इसी कारण जीव ससारी बन जाता है।[3]

इस प्रकार माया ईश्वर की शक्ति है और वह उनके अधीन रहकर चराचर की सृष्टि करती है, इसलिए ब्रह्म राम मायापति हुए। इस रूप मे सीता जी राम की आदि शक्ति हैं। तुलसीदास ने सीता और माया को एक रूप माना है—

उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।[4]

सीतोपनिषद् मे माया के अव्यक्त एव व्यक्त दो रूप कहे गये हैं। तुलसी को यही मान्य है। अव्यक्तरूपिणी माया ही व्यक्तावस्था में सीता है। जिस प्रकार तुलसी ने राम के निर्गुण एव सगुण दोनो रूपो का वर्णन किया है, उसी प्रकार उन्होने भी सीता के भी दो रूपो का वर्णन किया है, एक माया अथवा शक्ति के रूप मे और दूसारा सीता के रूप मे। इस प्रकार शक्ति समन्वित सीता ही विद्या, माया एव राम की अनुग्रह शक्ति हैं। वे जगज्जननी और जगदवा है।[5]

तुलसीदास ने बराबर यह स्पष्ट किया है कि राम की शक्तिस्वरूपा सीता की कृपा और अनुग्रह से जीव सद्गति प्राप्त करता है। इसीलिए उन्होने विनयपत्रिका मे जगदम्बा सीता से प्रार्थना की है—

कबहुँक अम्ब, अवसर पाइ,
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ।[6]

---

१. विनयपत्रिका, पद सं० ५४ २. वही, पद सं०-५३
३. तुलसी दर्शन, पृ० १८८ ४. रामचरितमानस, २।१२३।२
५. तुलसी की विचारधारा, पृ० १२६-१२।
६. विनयपत्रिका, पद सं० ४१।१

भक्त कवियो ने अधिकतर अविद्यामाया का ही वर्णन किया है। यह अविद्या माया ही जीव को ब्रह्म से अलग करती है और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अवगुणो की ओर ले जाती है। डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र ने स्पष्ट किया है कि क्रोध, लोभ, मद (धनमद, प्रभुत्वमद, गुणमद, मानमद, यौवन मद), ममत्व, मत्सर, शोक, चिन्ता, मनोरथ, ईषणा, (पुत्रेषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) इत्यादि के नाम गिनाकर गोस्वामी जी कहते हैं कि माया का यह परिवार प्रबल भी है और अमित भी है।[1] अविद्या माया के प्रभाव के कारण ही जीव मोहपाश मे बँधा रहकर ईश्वर से अलग हो जाता है और ईश्वर के अनुग्रह द्वारा वह इससे मुक्ति प्राप्त करता है। विनयपत्रिका मे तुलसीदास ने इसे स्पष्ट किया है-

माधव अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥[2]

गोस्वामी तुलसीदास ने माया को मोह की सहायिका बताकर जड-रूप बताया है और यह सत्य तो नही है पर सत्य सी प्रतीत होती है अर्थात् वह सत्य नही है। इस दृष्टि से तुलसीदास शंकराचार्य के अनुयायी जान पडते हैं जहाँ उन्होने माया को रज्जु को सर्प भ्रम के समान मिथ्या माना किन्तु माया के सम्बन्ध मे तुलसीदास का दूसरा दृष्टिकोण यह भी है कि वह उद्भव, स्थिति, सहारकारिणी, क्लेशहारिणी एवं सर्व श्रेयस्करी रामवल्लभा सीता को, जो साक्षात् विद्या माया है, असत्य कैसे कहा जा सकता है ? वे तो राम से अभिन्न उन्ही की शक्ति हैं।[3] ऐसा जान पडता है कि तुलसी ने शकर और रामानुज के बीच समन्वय का मार्ग ग्रहण किया है। राम की आदि शक्ति के रूप मे विद्या माया तो सत्य है किन्तु दुख रूप अविद्या माया को उन्होने असत्य माना। उनकी विद्या माया पर विशिष्टाद्वैत का प्रभाव है और अविद्या माया पर शकर के अद्वैतवाद सम्बन्धी मिथ्या मायावाद का।

आलोच्य मुक्तक रचनाओ मे गोस्वामी तुलसीदास ने विनयपत्रिका मे ही माया सम्बन्धी विचारो की विशेष अभिव्यक्ति की है। अन्य रचनाओ मे यदि कही थोडा बहुत उल्लेख मिलता है तो वहाँ अविद्या माया का ही निरूपण हुआ है। सूरदास के रामकाव्य मे विद्या और अविद्या माया का साकेतिक वर्णन रावण और निशचरी सवाद मे मिलता है। रावण राम और सीता के क्रमश.

१ डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र · तुलसी दर्शन पृ० १९४
२. विनयपत्रिका, पद स० ११६।१ ३. तुलसी की विचारधारा, पृ० १३०

आकर्षण है जो मिथ्या को सत्य सा प्रतीत करता है। जो उपदेश कल्याण-मार्ग प्रशस्त करने वाला है, वह शत्रु सा प्रतीत होता है। सत्य पर असत्य का परदा डालना ही माया का मुख्य कार्य है।

संसार

संसार और ब्रह्म मे अंश-अशी भाव है, पट और तन्तु का सम्बन्ध है, घट और मृत्तिका का सम्बन्ध है, कनक एव कनकनिर्मित आभूषण का सम्बन्ध है। वे ही कारण और सृष्टिकर्ता हैं, जगत कार्य एवं सृष्टि है।

शकराचार्य जी ने जगत को मिथ्या माना है। ब्रह्म सत्य है और यह ससार असत्य, नाशवान है,—"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या"। अद्वैतवादियों ने इसकी स्पष्ट घोषणा की है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी विशिष्टाद्वैतवादियों से इतर इसी मत का समर्थन अपनी रचनाओं में किया है।

गोस्वामी जी जगत् को स्वप्न के समान मिथ्या मानते हैं। स्वप्न मे जो कुछ देखा जाता है वह वास्तविक जगत् में नही होता है किन्तु जीव भ्रमवश उसे सत्य मानकर दुख भोगता है। ससार की वस्तुतः अपनी कोई सत्ता नही है, हमने उसे जैसा मान लिया है वैसा ही हमारा जीवन-व्यापार चल रहा है। तुलसीदास ने ससार को भयंकर एवं दुखदायी माना है। विनयपत्रिका मे अनेक स्थलो पर उन तथ्यो की अभिव्यक्ति हुई है। गोस्वामी जी कहते हैं कि यह ससार मिथ्या है, असत् है, जब तक ईश्वर की कृपा नही होती तब तक यह असत्य सा दिखायी पड़ता है। यह जानते हुए भी कि यह संसार झूठा है, नाशवान् है किन्तु उससे छुटकारा नही होता—

> हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी।
> जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।[1]

यह ससार तभी तक सुन्दर लगता है जब तक ज्ञान का उदय नही होता। वस्तुत यह अत्यन्त भयानक है। यह उन्ही के लिए सुखमय है जो सम, सतोष, दया और विवेक से सद्व्यवहार कर रहे हैं। यह सासारिक प्रपच सर्वथा असत्य है, किन्तु रामभक्ति और सत्सग से यह भय दूर हो सकता है—

> अनविचार रमनीय सदा, संसार भयकर भारी।
> सम संतोष दम विवेक तें, व्यवहारी सुखकारी॥

---

१. विनयपत्रिका, पद सं १२०

तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग, जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति भक्ति सत सगति बिनु, को भवत्रास नसावै ॥[1]

राम-भक्ति के उत्पन्न होने से एव उसके उत्तरोत्तर विकास से सशय का अन्त हो जाता है जो सृष्टि का मौलिक हेतु है। राम का प्रेम सर्वश्रेष्ठ है—

देहि सतसग निज अग श्रीरग ! भवभग कारन सरन सोकहारी।
ये तु भवदघ्रिपल्लव-समाश्रित सदा, भक्तिरत विगत-सशय मुरारी ॥[2]

राम के चरणो की उपासना में प्रेम, श्रद्धा का विशेष महत्व है—

जो पै राम चरन रति होती।
तौ कत त्रिविध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती ॥[3]

चरणों में भक्ति का परिणाम सुख-स्वरूप होता है अन्यथा ससार में अनेक प्रकार के भ्रमो एव कष्टो का सामना करना पड़ता है। रामभक्ति प्रेम से रहित व्यक्ति ससार के मायाजन्य भ्रम से मुक्ति नही प्राप्त कर सकता—

तुलसिदास भवरोग राम-पद प्रेम हीन नहिं जाई।[4]

ऐसे व्यक्तियो को विपत्ति कभी भी परित्याग नहीं करती—

तुलसिदास रघुनाथ विमुख नहिं मिटै विपत्ति कबहु।[5]

ज्ञान के उपकरणो को अपनाना एव उनके द्वारा भवसागर से मोक्ष पाना अत्यन्त कष्टसाध्य है।

गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली मे भी ससार की असत्यता की स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की है। यह तीनो कालो मे झूठा है किन्तु अज्ञानी जीव उसी ससार के लिए विनती करता है और ससार के करोडो दुखो को सहन करता है—

झूठो है झूठो है, झूठो सदा जगु, सत कहत जो अत लहा है।
ताको कहै सठ सकट कोटिक, काढत दत, करत हहा है।[6]

वे अन्यत्र कहते हैं कि ससार के सारे ऐश्वर्य साररहित हैं, सब कुछ दो एक दिनो का सपना है अर्थात् स्वप्न की तरह ही भ्रम है—

सब पोदक साटव है तुलसी अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै ॥[7]

---

१ विनयपत्रिका, पद स० १२१
२ वही, पद स० ५७
३ वही, पद स० १६८
४ वही, पद स० ८१
५ वही, पद स० ८६
६ कवितावली, उत्तर०, छद स० ३९
७ वही, उत्तर० छद स० ४१

गोस्वामी तुलसीदास ने गीतावली में संसार-सागर का रूपक बाँधते हुए उसे अत्यन्त दुर्गम बताया है किन्तु राममक्ति के सहारे वह उससे पार हो सकता है।[1]

इस प्रकार तुलसीदास ने इस भवसागर से पार होने के लिए चार साधनो का उल्लेख किया है—भगवत्कृपा, भगवत्भक्ति, ज्ञान और विराग। इन साधनो को मान्यता देते हुए भी वे रामकृपा को प्रधानता देते हैं। रामकृपा से भक्ति, ज्ञान और विराग की उपलब्धि हो सकती है। विनयपत्रिका मे इसके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। रामकृपा से भक्ति एव विराग सुलभ है।

अन्य आलोच्य कवियो मे अग्रदास ने भी ससार को मृगतृष्णा के सदृश बताया है। देवलोक से ब्रह्मलोक तक यथार्थ सुख प्राप्त हो नही सकता, जब तक रामचरन मे भक्ति न होगी। बिना उनकी भक्ति के स्वप्न मे भी कही सुख की प्राप्ति नही हो सकती—

मृग तृष्णा ससार, अमरपुर लौं जो धावै।
सीतापति पद विमुख, सुख सपनेहु नहिं पावै॥[2]

अग्रदास अन्यत्र ससार को "भुस के ऊपर लीपना", 'बालू की दीवाल,' 'भूत की मिठाई,' 'बाजीगर का बाग' और 'स्वप्न मे प्राप्ति नवनिधि' के समान मानते हैं—

भुस ऊपर को लीपनो, अरु बालू की भीत।
अरु बालू की भीत, भूत की मनो मिठाई।
बाजीगर को बाग, स्वप्न मे नव निधि पाई।
पूरब वस्तु बिसारि, पश्चिम दिसि ढूढन धाया।
आन उपासन राम बिन, अग्र सो ऐसी रीत॥[3]

सेनापति ने संसार को ईश्वर की विचित्र रचना का उल्लेख करते हुए कहा है। कि राम संसार के रचयिता, धारणकर्ता है और विपत्तिहर्ता हैं—

जगत कौं करता है, धराहू को धरता है,
कमला कौ भरता है हरता बिपत्ति कौं।[4]

अतएव उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियो ने अपनी कृतियो मे रामचन्द्र को ब्रह्म का अवतार, जीवात्मा को उसी परब्रह्म का अश, सीता को

१. गीतावली, उत्तर०, पद सं० १३
२. अग्र-ग्रथावली, प्रथम खंड, कुंडलिया, स० २
३. श्री अग्र-ग्रन्थावली, प्रथम खंड, कुंडलिया स० २३
४. कवित्त०, पाँचवी तरंग, छंद स० ७

परब्रह्म की शक्ति एवं विद्या माया और संसार को अविद्या माया से परिपूर्ण बताया है। राम की कृपा और भक्ति से ही जीव संसार से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

मुक्तक काव्य-रचनाओं में सांस्कृतिक विवेचन

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग से युक्त 'कृ' धातु मे 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से बना है जिसका तात्पर्य है—ऐसे आचार-विचार जिनका मानव आचरण करता आया है एवं जो मानव के विकास की ओर अग्रसर करते हुए भविष्य में इतिहास का रूप धारण करती है। संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे सुधारा हुआ, ऊँचा, सभ्य आदि विशेषणो से आभूषित किया गया है।[1] संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, कला, भाषा, वेश-भूषा, उपासना सम्बन्धी सभी दृष्टियो से विचार किया जाता है। अतएव संस्कृति शब्द अत्यन्त विशाल एवं विस्तृत आचार-विचार को समाविष्ट कर लेता है। करपात्री जी के शब्दो मे—"वेद एवं वेदानुसारी आर्य धर्म-ग्रन्थों के अनुकूल लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय एवं निःश्रेयसोपयोगी व्यापार ही मुख्य संस्कृति है और वही हिन्दी संस्कृति, वैदिक संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति है। जैसे इस्लाम संस्कृति और मुस्लिम जाति का आधार 'कुरान' है, वैदिक सनातन संस्कृति एवं हिन्दू जाति का आधार वेद एवं तदनुसारी आर्यधर्म-ग्रन्थ हैं।"[2]

व्यापक अर्थ मे मानवीय जीवनयापन की समग्र व्याख्या को संस्कृति समझा जा सकता है। इसमे ज्ञान, विश्वास, शिल्पकला और अन्य कलाएँ, नैतिकता, नियम, रीतिरिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित हो जाती हैं जिन्हे व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते ग्रहण करता है।[3] वस्तुत शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियो का विकास ही संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति मे इन तीनों शक्तियो का सामजस्यपूर्ण विकास मिलता है।

आलोच्य कवियो की भक्ति एवं दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, माया आदि के निरूपण मे मानव सम्बन्धी धार्मिक उदात्त भावनाओ का परिचय राम-कथा के माध्यम से दिया गया है जिसे संस्कृति का अन्तरग रूप कहा जा सकता है। यहाँ पर उनकी रचनाओ मे अभिव्यक्त बाह्य संस्कृति के विविध उपकरणो, वेश भूषा, शृंगार प्रसाधन, रहन सहन, खान-पान, संस्कार, पर्वोत्सव,

१ श्री शिवदत्त ज्ञानी भारतीय संस्कृति, पृ० १७ २ कल्याण, २४-१-३६
३. अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ० २८

आमोद-प्रमोद, विश्वास-मान्यताएँ, संगीत, नृत्य तथा मनोरंजन के अन्य साधन आदि का परिचय दिया जा रहा है।

संस्कार एवं रीतिरिवाज

मानव के सर्वांगीण विकास के लिये संस्कारों का विशेष महत्व है। ये संस्कार जन्म के पूर्व से ही आरम्भ हो जाते हैं और मृत्युपर्यन्त तक चलते रहते हैं। अधिकांश विद्वानों ने शास्त्रों के आधार पर इन संस्कारों की संख्या सोलह बताई है जिनमें गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कार गिनाये गये है।[1] इनमें जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, उपनयन, विद्यारम्भ, विवाह और मृत्यु मुख्य संस्कार हैं। आलोच्य कवियों ने इन संस्कारों का वर्णन अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर किया है। संस्कारों से सम्बन्धित कुछ और कृत्य भारतीय परिवारों में निष्ठापूर्वक किये जाते है जिन्हें 'कुलाचार' कहा गया है। जन्म के अवसर पर 'छठी' का उत्सव इसी प्रकार का होता है। आलोच्य मुक्तक रचनाओं में जन्मोत्सव के अन्तर्गत 'छठी' का विशद वर्णन मिलता है।

सूरदास ने राम के जन्मोत्सव का वर्णन कई पदों में किया है। राम के जन्मोपलक्ष्य में अयोध्या के प्रत्येक घर में मंगलाचार हो रहा है, सभी लोग आनन्द-मग्न होकर झूम रहे हैं। किसी को भी अपने शरीर की सुधि नहीं है। मागध, वंदीजन आदि को हाथी, घोड़े, वस्त्रादि लुटाये जा रहे हैं—

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
घर घर मंगल होत-बधाई, अति पुरबासिनि भीर।
आनंद मगन भए सब डोलत, कछू न सोच सरीर॥
मागध बन्दी सूत लुटाये, गो गयंद हय चीर।[2]

राम-जन्म के अवसर पर बधाई के मंगलवाद्य बज रहे हैं। सखियाँ परस्पर मिल कर मंगलगान कर रही है। वशिष्ठ जी ने जातकर्म संस्कार का अभिषेक कराया। महाराज दशरथ के आँगन में भीड़ एकत्र है और सामवेद-गान की ध्वनि छा गई है—

अयोध्या बाजति आजु बधाई,
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र अभिषेक कराई।

---

१. श्री शिवदत्त ज्ञानी : भारतीय संस्कृति, पृ० ९५-९६
२. सूररामचरितावली, पद सं० २

गावैं सखी परस्पर मगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दशरथ के आगन, सामवेद धुनि छाई॥[1]

जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर ब्राह्मण, याचक, बदीजन आदि को दानादि देकर उनका सम्मान करना स्वाभाविक ही है। सभी को यथायोग्य, गाय, हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण आदि का मुक्तहस्त से दान दिया जा रहा है। इस शुभ-अवसर पर आकाश मे इन्द्र, देवता, ऋषि आदि विमानो से राम-जन्मोत्सव को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उनके मन मे भी धैर्य नही रहा। महाराज दशरथ ने दान देते समय अत्यन्त मूल्यवान मणि एवं हीरे आदि कुछ भी शेष नही रखा[2]

तुलसीदास ने गीतावली मे राम-जन्म का विस्तृत वर्णन किया है। राम-जन्म के समय पर वेद का पाठ मुनिगण करते हैं तथा अन्य भी वेद-विहित क्रियायें- जातकर्म, श्राद्ध आदि किये जाते हैं। गलियों मे कुकुम, केसर, चन्दन, अरगजा आदि बिखरे हुए हैं। मणियो का तोरण और अनेक ध्वजा-पताकाओ से पुरी को सजाया गया है। मागध और बदीजन यशगान कर रहे हैं और पुर के नर-नारी देह की सुधि न करके प्रेममग्न होकर नृत्य कर रहे हैं।

बालक के जन्म के समय गीतादि का गायन और वाद्यादि का वादन हो रहा है। राम के जन्म पर सखियो द्वारा सोहिला मगल-गीत गाया जाता है। अनेक प्रकार के वाद्य-वादन होते हैं। आकाश मे देवगण दुन्दुभी बजाते हैं, क्योकि राम का जन्म परब्रह्म का अवतार है। वह सामान्य मानव-जन्म नही है। गली, आँगन, बाजार सभी स्थानों पर सुगन्धित जल से छिडकाव करके चौक सुशोभित किये गये हैं, विशेष साज्य-सामग्री से चित्रादि बनाये जाते हैं—

सहेली सुनु सोहिलो रे।
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जगु आज।[3]

इस अवसर पर नट-नटी आदि अनेक प्रकार के नृत्य करते हैं। विविध प्रकार के छद, प्रबन्ध गीत, पद आदि राग और ताल मे युक्त गाये जा रहे हैं। स्वर्ण कलश, चामर, पताका आदि घर-बाहर सभी ओर सुशोभित हैं। जन्म के छठे दिन छठी मनायी गई जिसमें मनुष्य तो क्या देवगण भी आनद एव उल्लास प्रकट करते हैं। लोक-गीत और वेद-विधि के अनुसार छठी मनायी जाती है।

---

१ सूररामचरितावली, पद स० ४
२ वही, पद स० ४
३ गीतावली, बाल०, पद स० २

मूलिका मणि नवग्रह रखे जाते हैं जिसमे नवग्रहों के अनुसार नव मणियाँ भी रखी गई तथा कुश एव श्याममणि रखी गयी। तब गणेश-पूजन होता है। तदनन्तर ब्रह्मा, पार्वती आदि का पूजन किया गया—

तिन्की छठी मंजुलमठी, जग सरस जिन्हकी सरसाई।
किए नीद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनी भई।[1]

नामकरण

नामकरण-सस्कार के समय पुनः अयोध्या मे मगल बधाइयाँ होती हैं। दानादि दिया जाता है। तीर्थों का जल, तुलसीदल, आम्र, बिल्व, दूर्वादि, पान, नवमणियाँ आदि रखी जाती हैं। गौरी और गणेश का पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् गो के समूह पचामृत हेतु दुहे गये—

बाजत अवध गहागहे अनन्द बधाये।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए।[2]

वशिष्ठ जी ने विचार कर के भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के नाम भी रखे। राजा दशरथ के चारो पुत्र मानो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारो फलो को भी देने वाले है।[3]

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत सस्कार का भी एक स्थल पर उल्लेख मिलता है। गीतावली मे इसका केवल सकेतमात्र है—

जज्ञोपवीत विचित्र हेममय, मुक्तमाल उरसि मोहि भाई॥[4]

आलोच्य मुक्तक-रचनाओ मे चूडाकर्म, विद्यारम्भ आदि संस्कारो का कोई उल्लेख नही मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि वयस्क राम और सीता के युगल सौंदर्य और भक्ति का वर्णन ही मुक्तक-काव्यकारो को अभीष्ट था। केवल बाल-सुलभ क्रीडाओ और युगल प्रेम-भावना के अन्तर्गत वैवाहिक प्रसगो के ही विशेष वर्णन मिलत है।

विवाह-पूर्वराग

सूरदास ने एक पद मे सीता जी के पूर्वराग का वर्णन किया है। वे रामचन्द्र

१. गीतावली, पद स० ५।३-४   २. वही, बाल०, पद स० ६।१-४
३. वही, पद स० ६।२५-२६   ४. वही, बाल०, पद स० १०८।६

जी के मुख को देखकर विधाता से प्रार्थना करती है कि अब उनका राम से ही विवाह करने का निश्चय है पर शकर जी का धनुष और पिता का प्रण दोनो ही कठिन हैं और किशोरावस्था के राम धनुष को तोड सकेंगे, इसमे मन्देह है। रामचन्द्रजी ने सीता के इस प्रेम-भाव को जानकर तत्काल धनुष तोड दिया —

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपति को अब नेम हमारी, बिधि सो करति निहोर।[1]

तुलसीदास ने गीतावली मे इस पूर्वराग का वर्णन अधिक विस्तार से किया है। सीता पार्वती का पूजन करने के हेतु पुष्पवटिका मे पहुँच कर राम को देखकर मुग्ध हो जाती हैं।[2] पूजन करते समय उनके नेत्र मजल हो जाते हैं, शरीर शिथिल और पुलकित हो जाता है, मुख से वचन नही मिलते तथा मन प्रेम से भर जाता है—

पूजि पार्वती भले भाय पाँव परिकै।
सजल सुलोचन, सिथिल, तनु पुलकित, आवै न वचन मन रह्यो प्रेम भरि कै॥[3]

प्राचीनकाल मे विवाह के लिये स्वयवर की प्रथा थी जिसका परिचय सीता स्वयवर से स्पष्ट रूप मे मिलता है। स्वयवर मे राजा लोग अपने-अपने साज और सुन्दर वश बना कर अपने-अपने स्थानो पर बैठ गये। फिर महाराज जनक की आज्ञा पाकर मन्त्रिवर्ग और सहेलियाँ और शतानन्द जी सीता जी को पालकी पर चढा कर स्वयवर स्थल पर ले आये।[4]

धनुष के टूटने पर सीता जी अपने हाथो मे जयमाल लिए हुए रामचन्द्र जी का वरण करने के लिए सखियो सहित आगे बढकर उनके पैरो पड कर फिर प्रिय के गले मे जयमाल पहना देती हैं।[5]

सीता-स्वयवर का वर्णन गीतावली के एक अन्य पद मे भी द्रष्टव्य है—

कन्या भूप विदेह की रूप की अधिकाई।
तासु स्वयवर सुनि सब आए, देस देस के नृप चतुरंग बनाई।[6]

तुलसीदास ने कवितावली मे भी सीता-स्वयवर के अवसर पर 'जयमाल' का वर्णन किया है। शुभावसर के अनुकूल सौभाग्यवती स्त्रियाँ सोने के थालो मे

---

१ सूररामचरितावली पद० स० १०
२ गीतावली, बाल०, पद स० ७१।३
३. वही, बाल०, पद स० ७२।१
४. वही, पद स० ८४
५ वही, पद सं० ९६
६. वही, बाल०, पद स० १०३

दूध, दही, रोचन भर और आरती सजा कर मंगला-गान करती हुयी मंडप की ओर चली और उस अवसर पर जयमाल लिये हुए सीता के कर-कमल शोभा पा रहे हैं। सखियाँ सीता जी से कहती हैं कि रामचन्द्र जी को माला पहनाओ।[1]

विवाह

विवाह से पूर्व लग्नपत्रिका भेजी जाती है। महाराज जनक ने अपने पुरोहित के द्वारा अयोध्या मे राजा दशरथ के पास लग्न-पत्रिका भेजी। प्रत्येक मगल अवसर पर गणेश-पूजन आवश्यक होता है—

तुलसीदास दसरथ बरात सजि पूजि गनेसहिं चले निसान बजाई।[2]

विवाह के अवसर पर भाँवरें दी जाती हैं। स्वर्ण-कलश रखे जाते है क्योकि कलश शुभ और कल्याण का सूचक माना जाता है। स्वर्ण अथवा विभिन्न धातुओ के कलश लोगों के सामाजिक धन-समृद्धि के अनुसार रखे जाते है। राम और सीता चूनरी और पीतांबर के ग्रंथिबंधन के साथ सुवर्णमय कलश की भाँवरी दे रहे हैं—

मंगलमय दोउ, अग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनक कलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी॥[3]

सूरदास ने विवाह का सुन्दर वर्णन किया है। विवाह के अवसर पर राजा दशरथ बारात सजाकर आए। मोतियो से चौक सजाये गये। ब्राह्मणो ने वेद-पाठ आरम्भ किया और युवतियाँ मगल-गीत गाने लगी। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के विवाह को देखने के लिए करोडो देवता और गंधर्व वहाँ आ गए तथा विमानो से आकाश भर गया और वे आकाश में नगाड़े बजाने लगे—

महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक मंदिर मँह, मोतिनि चौक पुराए।[4]

विवाह के अनन्तर कगन खोलने, जुआ खेलने और गाली देने की प्रथा होती है। राम-सीता का हाथ स्पर्श कर प्रेममग्न हो जाते है, प्रेमाधिक्य के कारण उनका हाथ कांपने लगा, इससे कगन छूट नही पाता, इस दृश्य को देखकर सखियाँ आनन्दित होती हैं और स्त्रियाँ ताली बजा-बजाकर गाली गाने लगी—

---

१. कवितावली, बाल०, छंद सं० १३ २. गीतावली, बाल०, पद स० १०३।६
३. गीतावली, बाल०, पद सं० १०५।३ ४. सूररामचरितावली, पद स० ११

कर कपै, कंकन नहिं छूटे,

राम सिया कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटें।[1]

तुलसीदास ने भी कवितावली मे विवाहोपरान्त जुआ खेलने और कंगन खोलने की प्रथा का वर्णन किया है—

दूलह श्री रघुनाथ बन, दुलही सिय सुंदर मदिर माही।

गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढाही।[2]

अग्रदास जी ने पदावली मे राम सीता के विवाह का वर्णन किया है। मडप के नीचे पटरे पर बैठकर वेदविहित रीति से दोनो ओर के कुल-गुरुओ ने राम-सीता का पाणिग्रहण कराया। फिर भांवरें हुई—

मण्डप तर बैठाय पटा दोउ वेद विहित सब कर्म कराये।

साखोच्चार दुहूँ कुल गुरु करि कुँवरि कुँवर को हाथ गहाये।[3]

विवाह के अनन्तर "कोहबर' की प्रथा होती है। मुक्तक-काव्यकारो म केवल अग्रदास जी ने इसका वर्णन किया है। प्रिया सीता क आगमन पर राम का शरीर रोमाचित हो जाता है, इस समय की उनकी मानसिक उत्कठा का सजीव वर्णन कवि ने किया है—

लाल भयो रोमाच प्रिया को आगम जान्यो।

अनगरौर गये दौरि अजिर मे, अति आतुर है अग राम पहिचान्यो।

मेघागम ज्यो नृत्य कलापी नूपुर धुनि मन सान्यो।

सुख समाज सो मिली अग्र प्रभु तन मन एकता मान्यो॥[4]

इस प्रथा के अवसर पर सीता जी राम के अगो का स्पर्श अत्यन्त भयभीत होकर करती हैं, क्योकि उनको ऋषि-पत्नी अहिल्या के उद्धार का स्मरण हो आता है—

सीता भीत पीय अग परसत ऋषि पतनी की सुधि जब आवत।[5]

विवाहोपरान्त 'कलऊ' पर गाली गाने की प्रथा है। अग्रदास ने हास-परिहास की इस रीति का वर्णन किया है। गाते हुए एक सखी राम से कहती है कि

१ सूररामचरितावली, पद स० १२

२ कवितावली, बाल०, छद स० १७

३ अग्रदास, अष्टयाम पदावली, पृ० ६४

४ वही, पृ० ६४

५ वही, पृ० ६४

सामान्य वेश-भूषा

मनुष्य को अपने जीवन में सामान्य व्यवहार के लिए अनेक वस्तुओं की अपेक्षा होती है। जीवनयापन की इन वस्तुओं में आवास, वस्त्र, खान-पान, आभूषण, शृंगार के अनेक प्रसाधन, वाहन आदि की गणना की जा सकती है।

वस्त्र

सूरदास जी ने वन-मार्ग पर जाते हुए राम और लक्ष्मण की वेशभूषा का निम्नलिखित वर्णन किया है— 'कटि तट पट पीताम्बर काछे, धारे धनु तूनीर।'[1]

राम और लक्ष्मण कमर मे पीताम्बर पहने हुए हैं और हाथ मे धनुष और तरकस लिए हुए हैं। उन्होने तापस वेश मे अपने समस्त राजसी वस्त्रो का परित्याग कर दिया है।

रावण के वध के अनन्तर' लक्ष्मण अशोक वाटिका मे जाकर सीता जी का दर्शन करते हैं, तभी सुग्रीव, विभीषण आदि आकर सीता जी को अत्यन्त मूल्यवान आभूषण और पीताम्बर देकर उन्हे पहनने के लिए प्रार्थना करते हैं—

> लछिमन सीता देखी जाइ।
> आभूपन बहु मोल पटबर, पहिरौ मातु बनाइ॥[2]

तुलसीदास ने कवितावली में वन जाते समय राम द्वारा राजसी वस्त्र, आभूषण को त्यागने और वल्कल-वस्त्र धारण करने का वर्णन किया है—

> कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अगनि पाई।[3]

रामचन्द्र ने राजसी वस्त्राभूषण आदि को उसी प्रकार त्याग दिया जैसे तोता अपने पख खुशी से छोड देता है, उसे तनिक भी दुख नही होता। वन-मार्ग मे जाते समय राम-लक्ष्मण के सिर पर जटायें शोभायमान हैं और मुनियो का सा वेश धारण किये हुए हैं—

> 'बान कमान निषग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि वेप कियो है।'[4]

गीतावली में एक स्थल पर बालक राम के साँवले शरीर पर अत्यन्त झीनी पीत वर्ण झगुलियो का वर्णन हुआ है, वह इस प्रकार सुशोभित है मानों किसी छोटे बादल ने बाल विद्युत ओढ रखा हो—

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० ३२ २. वही, पद स० १८५
३. कवितावली, अयोध्या०, छंद सं० १ ४. वही, छद स० १९

पियरी झीनी झँगुली साँवरें सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारि धर।[1]

बालक राम के शरीर पर सुन्दर पीताम्बर, मस्तक पर तिलक, मसिबिंदु एवं सिर पर लाल चौतनी टोपी धारण करने का वर्णन किया गया है—

कनक रतन मनि जटित रटति कटि किंकिनि, कलित पीतपट तनियाँ।
भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ॥[2]

अन्य स्थलों पर 'कटि तट पटपीत,'[3] पीतपट कटि तून वर,'[4] कमर में पीला दुपट्टा बाँधने का वर्णन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहनने में पीला वस्त्र या पीताम्बर का प्रयोग अधिक होता था। सिर पर पीताम्बर ओढ़ने का भी वर्णन है—'पीरे पट ओढ़े चल चारु चाल'।[5] सिर पर लाल टोपी ओढ़ने और पीली झँगुली पहनने का अन्यत्र भी वर्णन हुआ है—'सिरसि टिपारो लाल,'[6] 'लसत झँगुली झीनी, दामिनी की छबि छीनी।'[7]

राम-लक्ष्मण विश्वामित्र जी के साथ चौतनी टोपियाँ और अँगरखा पहने अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ते हैं—

एई राम लषन जे मुनि संग आये हैं।
चौतनी चोलना काछे, सखि सोहैं आगे पाछे,
आछे हुँते आछे, आछे-आछे भाय भाये हैं॥[8]

एक स्थल पर रामचन्द्र जी के अत्यन्त नवीन दिव्य दुकूल (उपरना) की तुलना सुन्दर चंपक पुष्पों एवं सुवर्ण के समूह से की गयी है—

दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय,
चंचला कलाप, कनक निकर अलि किधौं है॥[9]

रामचन्द्र जी के सिर पर सुन्दर मणिजटित सुवर्णमय मुकुट शोभायमान है, शरीर पर अत्यन्त निर्मल पीताम्बर सुशोभित है।[10]

गीतावली में स्त्रियों की वेश भूषा का भी वर्णन हुआ है। सुन्दर स्त्रियाँ शरीर पर कुसुंभी साड़ी तथा विविध प्रकार के आभूषण पहने हुए हैं—

---

१. गीतावली, बाल०, पद सं० ३३।२
२. वही, पद सं० ३४।२
३. वही, पद सं० ३९।२
४. वही, पद सं० ४१।२
५. वही, पद सं० ४२।२
६. वही, पद सं० ४३।२
७. वही, पद सं० ४४।१
८. गीतावली, बाल०, पद सं० ७४।१
९. वही, उत्तर० पद सं० ४।५
१०. गीतावली, बाल०, पद सं०७।८-६

कुसुभि चीर तनु सोहही, भूषन विविध सवाँरि ।[1]

अग्रदास जी ने सीता की सुन्दर साड़ी और राम के चमकीले जामा का भी उल्लेख किया है—

प्यारी के तन सुभ्र सुसारी प्यारे अग जामा झलकारी ।[2]

शयन-गृह मखमल आदि से सुसज्जित है—

कीमखाप मखमल गिलमन्ह पर सिय पिय परिकर सोहैं ।[3]

सीता की आकर्षक कंचुकी और साड़ी का भी वर्णन हुआ है—

कुसुम कटाव कचुकी सारी कुकुम कुचन सुदोप जनावत ।
पद्मपानि पद चित्र महावर पाँति तम्बूल कज्जल छवि पावत ।।[4]

अन्य स्थल पर रत्नजडित पलग और दुग्ध-फेन सदृश बिस्तर का वर्णन द्रष्टव्य है—

रतन जडित पलका अति सुन्दर मयन मनहुँ तन धारे ।
ताके ऊपर बिस्तर पय के फेन लजावन हारे ।।[5]

अग्रदास ने हाथी, घोडे की रत्नो से जडी झालरो का भी वर्णन किया है—

सजे तुरग रग राजन के भीर गजेन्द्रन भारी
जगमग झूलजरी की सोहैं रतन जडाव अँबारी ।।[6]

अग्रदास रचित ध्यानमजरी मे सीता जी की स्वर्ण-ततुओं से निर्मित महीन लाल साड़ी और रग-विरंगी कचुकी का भी सुन्दर वर्णन हुआ है—

हेम तन्तुकर रचित अरुण सारी रग झीनी ।
कंचुकि चित्रित चतुर विविध शोभित रंग भीनी ।।[7]

एक अन्य छंद मे कमर पर सुशोभित सुदर लाल, काला, श्वेत, पीला आदि रंग-बिरगें लँहगे का उल्लेख किया है—

लँहगा कटि परदेश भाँति अति शोभित गहरी ।
अरुण असित सित पीत मध्य नाना रग लहरी ।।[8]

नाभादास ने अष्टयाम मे राम-सीता की शय्या का आकर्षक वर्णन किया है—

१. गीता०, उत्तर०, पद सं० १९।४ २. अग्रदास, अष्टटयाम पदावली, पृ० ४९
३. वही, पृ० ६४ ४. वही, पृ० ६५
५. अग्रदास अष्टयाम पदावली, पृ० ९३ ६. वही, पृ० २५
७. ध्यानमजरी, छद स० ५९ ८. वही, छद सं० ६८

रतन जटित परयक सुहावा, चारि मुक्त पाया श्रुति गावा ॥
तेहि ऊपर अति ललित बिछौना, छीर फेन सम कोमल लोना ॥[1]

उनकी शय्या दुग्धफेन के सदृश अत्यन्त कोमल और सुन्दर है। रामचन्द्र जी के शीश पर मणियो से जडी लटकती हुई टेढी पगडी भी सब के मन को आकृष्ट कर रही है—

कोउ शिर पाग जरित लटपटी, कोउ अनकनि लटकनि अटपटी।[2]

रामचन्द्रजी के शरीर पर चदन आदि का सुगधित लेपन और यज्ञोपवीत भी शोभायमान है—

सकल अग चदन चर्चित कैं, रुचि वाछिन प्रभु पद अर्पित कैं।
यज्ञोपवीत चारु सुठि सोहा, लेहि लखि इन्द्र धनुष मन मोहा ॥[3]

रामचन्द्र जी ने अपने कर-कमलो से जरकसी का श्वेत रग का स्वापा (पटका) अपने शिर मे धारण किया है। उनके शरीर पर श्वेत रग का दुपट्टा और श्वेत वर्ण की धोती शोभायमान हो रही है—

जरकसी चीरा स्वेत तब, प्रभु निज कर धरि लीन्ह।
स्वेत उपरना काखा सोती, स्वेत वरन कटि शोभित धोती ॥[4]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुरुषो मे रग-विरगी लटपटी पगडी, चौतनी लाल टोपी, झीना अँगरखा, उपरना, पीला पटुका आदि पहनने की प्रथा थी और स्त्रियाँ रग-विरगी स्वर्ण खचित साडियाँ, लहगे आदि पहनती थीं।

आभूषण

प्राचीनकाल मे पुरुषो और स्त्रियो दोनो मे ही आभूषण पहनने की प्रथा थी। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों मे ही आभूषण-प्रियता अधिक मिलती है। शृगारिक प्रसाधन के अन्तर्गत आभूषण केवल सौंदर्य-वृद्धि मे ही सहायक नहीं था वरन् यह व्यक्ति के ऐश्वर्य का भी प्रतीक था। आलोच्य रचनाओं के आधार पर यहाँ पर उसका सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

पुरुषों के आभूषण—सूरदास ने रामचन्द्रजी की अँगूठी का वर्णन किया है। हनुमान जब अशोक-वाटिका में सीताजी से मिलते हैं तो उन्हें विश्वास दिलाने के लिए वे उनको राम की अगूठी देते हैं—

---

१. नाभादास, अष्टयाम, छद स० १७।१८
२. वही, छद स० १४३
३. वही, छद स० १७४,१७५
४. वही, छद स० १७७, १७८

तब सब काढि अँगूठी दीन्ही, जिहि जिय उपज्यौ धीर।
सूरदास प्रभु लंका कारन, आए सागर तीर ॥[1]

सूरदास ने राम-जन्मोत्सव के अवसर पर अनेक देशो से उपहार-स्वरूप आए हुए रत्न, स्वर्ण, मणि, हीरा आदि का उल्लेख किया है—

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस देस तें टीको आयौ, रतन कनक मनि हीर।[2]

गीतावली मे बालक राम के आभूषणो का अनेक स्थलो पर वर्णन हुआ है। पैरों में नूपुर, कमर मे करधनी, हाथ मे सुन्दर पहुँची और हृदय पर मनोहर बघनखा इस प्रकार शोभायमान है मानो कामदेव की मणियो का ढेर हो—

पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर कजनि पहुँची मंजु।
हिय हरि नरक अद्भुत बन्यौ मानो मनसिज मनि गन गंजु ॥[3]

अन्य स्थल पर गले की सुन्दर माला और हाथ मे कगन का वर्णन भी द्रष्टव्य है—

किंकिनी विचित्र जाल, कंबु कंठ ललित माल,
उर विसाल केहरि नख, कंकन करधारी।[4]

रामचन्द्रजी के कमर में करधनी और चरणो मे नूपुर की ध्वनि गुजायमान हो रही है, कर-कमल मे पहुँची शोभा दे रही है। कंठ मे कठुला तथा व्याघ्रनख सुन्दर मालूम होते हैं—

कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजैं। पकज पानि पहुंचियाँ राजैं।
कठुला कठ बघनहा नीके। नयन सरोज मयन सरसी के ॥[5]

तुलसीदास ने बालक के आभूषणो मे स्वर्ण, रत्न और मणियो से जडी करधनी, पैंजनी, पहुँची, बघन्हा, कठुला, हार आदि का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है। बालक रामचन्द्र के कानो मे स्वर्ण-कुंडल और हृदय पर गज-मुक्ताओं की विशाल माला है जिसके कारण उनकी शोभा अतीव आकर्षक हो गयी है—

सुवन कुंडल विमल गंड मंडित चपल,
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुविसाल चहु पास बनि गजमनी।[6]

---

१. सूररामचरितावली, पद सं० ८१
२. वही, पद स० २
३. गीतावली, बाल०, पद सं० २२।५
४. वही, पद सं० २५।३
५. वही पद स० ३१।३-४
६ गीतावली, उत्तर०, पद स०५।५-६

अन्यत्र भी विविध प्रकार के केयूर (बाजूबद), कगना, हार, गजमुक्तामाल, स्वर्ण मुकुट आदि के वर्णन हुए हैं। अग्रदास ने राम के सुन्दर शारीरिक आभूषणो का वर्णन किया है। उनके हृदय पर मणियो की माला, मुक्ताहार कठ म कौस्तुभ मणि सुशोभित है। दोनो भुजाओ मे नगों और रत्नो से जडित कगन और मुद्रिका शोभायमान है।[1]

कवि ने मणि माणिक्य रचित स्वर्ण नूपुर, रत्न और मणि से जडे शीशफल, कर्ण फूल, नाक की बसरी का भी वर्णन किया है—

नूपुर पुरत सुचार रचित मणि माणिक सोहैं।
रवकल स्वर सगीत सुनत परिजन मन मोहै।
रतन रचित मणि जटित शीश पर बिन्दा छाजैं।
ललित कपोल सुयुगल कर्ण ताटक विराजैं ॥[2]

अग्रदास ने अन्यत्र रामचन्द्र के कानो मे स्वर्ण के मकराकृत कुडल हृदय पर स्थिर मोतियो की माला का सुन्दर वर्णन किया है—

क्रीट मुकुट मकराकृत कुडल पीताबर पट वारो।
नयन बिशाल माल मोतिन की सखि तुम नेक निहारो ॥[3]

कर्णफूल, मोतियो का चन्द्रहार, हाथो के कगन की छवि सूर्य क सदृश जगमगा रही है—

कर्णफूल कुड हलकत है, चन्द्रहार मोती झलकत हैं,
कर ककण की छवि चमकत है, जगमत दिनकर की।[4]

कवि के द्वारा राम और सीता के रूप शृगार के सम्मिलित वर्णन मे आभूषणो की शोभा द्रष्टव्य है। राम के हृदय पर मोतियो की माला है तो सीता के हृदय पर चन्द्रहार सुशोभित है। एक के बाहो म अगद और दूसर के हाथ में पहुची, राम के कानो मे मकराकृत कुडल और सीता के कानो मे कर्णफूल, माग पर मोतियो की झालर, हाथ मे मणियो का कँगना, पहुची और उधर राम के हाथों में जडाऊ बाजूबद की छवि अनुपम है—

प्यारे उर मोतिन की माला चन्द्रहार सोहत उर प्यारी।
कठ पीत प्यारी गल राजत, पिय गल गोप विचित्र सँवारी।

---

१ ध्यानमजरी, छद स० ३७-४० २ वही, छद स० ४४, ४३
३. अष्टयाम पदावली, पद स० ४६ ४ अष्टयाम पदावली, पृ० ४१

पग्म पकवान विधि नाना के, सँधानो सीधो,
विविध विधान धान बरत बखारही ।[1]

रामचन्द्र जी के आतिथ्यसत्कार के लिए शबरी ने कन्द, मूल, फल-फूलों से भरे हुए सुन्दर दोने बनाये जो अत्यन्त अनुपम, अमृत से अधिक स्वादिष्ट और देखने में सुंदर थे, जिनको राम ने प्रसन्नतापूर्वक स्वाद के साथ खाया।[2]

माता कौशल्या को इस बात की चिन्ता है कि सीता सहित उनके पुत्रों को वन मे कन्द, मूल और फल-फूल आदि ही खाने को मिलते होंगे और वह भोजन भी उन्हें समय पर खाने के लिए मिलता भी होगा या नहीं ?

कंद मूल, फल फूल असन वन, भोजन समय मिलत कैसे वैहं ॥[3]

अग्रदास ने अष्टयाम पदावली मे रामचन्द्रजी की 'भोजनशाला' का उल्लेख किया है—

छवीले दोउ आवत भोजन शाल ।
अग्रअली बैठे दोउ प्यारे निरखत भोग विशाल ॥[4]

कवि ने एक अन्य पद में अनेक खाद्य पदार्थों का वर्णन किया है। स्वर्ण कटोरो मे विविध प्रकार की मिठाइयाँ, बरफी, मोदक, जलेबी, खाझा, घेवर, बीजपाक, रसगुल्ला, खुरमा, मोहनभोग, गुझियागोझा आदि, पूरी, कचौरी, मठरी, पापड़ आदि सुशोभित हैं

एक स्थल पर कवि ने विविध प्रकार के कन्द, मेवा, मिठाई, चटनी, अचार, मुरब्बा और अनेक प्रकार की तरकारियो का वर्णन किया है—

पल्लव फल (रसमय) अंकुर कन्दावलि मेवा मधुर सुधारी ।
चटनी निकर अचार मुरब्बा अमित भाँति तरकारी ॥[5]

कवि ने एक पद मे अनेक प्रकार के व्यंजनो का वर्णन किया है। मेवा, मिश्री, दूध, मलाई, अनेक प्रकार की मिठाइयो और सुगन्धित तथा अनेक औषधियों से मिले पानो के थाल शोभायमान हैं—

मेवा मिश्री दूध मलाई और अनेक मिठाई ।
सुरभीयुत विंजन बहुतेरे थारन भरी सुहाई ।

१. कवितावली, सुन्दर० छंद सं० २२ २. गीतावली, अरण्य०, पद सं० १७।३
३. वही, लंका०, पद सं० १८ ४. अष्टयाम पदावली, पद सं० ५७
५. वही, पद सं० २३ ६. वही, पद सं० ५८

पान पदारथ सुचि सुगन्धमय बहु औपधन मिलाई।
करि भोजन अचवन पुनि करि के पान पाइ मुसुकाई।
शैन आरती अग्र करी जब पौढे पलग सुहाई॥[1]

नाभादास ने भी खाद्य पदार्थो के कुछ वर्णन किए है। रत्नो से जडे हुए कटोरे अनेक प्रकार के स्वादिष्ट मेवा से भर हुए हैं—

रतन जरित बहु धरे कटोरा। बहु मेवनयुत स्वाद न थोरा॥[2]

कवि द्वारा 'भोजनशाला' का भी उल्लख किया गया है—

पश्चिम दिशि भोजन की शाला। भोग मडई ललित विशाला॥[3]

कवि ने मणिजडित स्वर्ण कटोरो मे नमकीन और रसमय पकवानो, मिष्टान्न स्वादिष्ट मेवाओ और सुगधित ताम्बूल, बीरी आदि का भी वर्णन किया है—

मिय रख लसि पकवान सलौने। आनि मधुर भरि धरे मिठौने॥[4]

रामचन्द्रजी सुगधयुक्त मिश्री मिला दूध भात का कौर सीता जी के मुख मे देते हैं और सरयू-जल का पान कराते है। तदनन्तर 'पछावरि' का भोजन चटनी आदि प्रेमपूर्वक परस्पर एक दूसरे क मुख कमला म देते हैं—

और छीर ओदन मिश्री युत। करि प्रभु सिय मुख रुख ले अद्भुत॥[5]

उक्त वर्णनो से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियो ने राम का भोजन कन्द, मूल, फल-फूल से लेकर अनेक प्रकार के नमकीन और मीठे पकवान, विविध प्रकार की मिठाइया, मेवा, मिश्री, दूध, मलाई आदि, अचार, चटनी, तक्र आदि पदार्थों की गिनती गिनाई है।

शृगार के अन्य प्रसाधन

आभूषण शृगार का मुख्य प्रसाधन है किन्तु शारीरिक अगो के लिए अन्य आवश्यक उपकरण उबटन, स्नान, केशविन्यास, फूलमाला, सुगन्धित पदार्थों मे अगरु, अरगजा, कपूर, कस्तूरी या मृगमद, केसर, चदन आदि का लेपन, स्त्रियो के लिए इनके अतिरिक्त माग, अजन, महावर, बिंदी, तिलक, मेहदी आदि की गणना की जाती है। आलोच्य कवियो की रचनाओ मे इन प्रसाधना के कतिपय उल्लेख मिलते हैं।

---

१ अष्टयाम पदावली, पद स० ११०, २ वही, छद स० २७
३ अष्टयाम, छद स० ४१ ४ वही, छद स० १९६, १९७, १९९
५ वही, छंद स० २५१, २५३, २५४

तुलसीदास ने गीतावली मे माता द्वारा बालक राम के उबटन लगाने, स्नान कराने, मणिभूषण आदि पहिराने का उल्लेख किया है—

जननि उबटि, अन्हवाइ कै, मनिभूषन सजि लिये गोद ।
पौढाए पटु पालने सिसु निरखि मगन मन मोद ॥[1]

राम के नेत्र-कमल मे अजन तथा मस्तक पर गोरोचन का तिलक सुशोभित है, मुख-चद्र पर काजल की अत्यन्त सुदर बिन्दी लगी हुई है—

रजित अजन कज बिलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।
लस मसि बिंदु, बदन बिधु नीको। चितवत चितचकोर तुलसी को ॥[2]

कवि ने अन्यत्र भी 'अंजन रजित नैन'[3], 'भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत'[4] का वर्णन किया है। राम के वनगमन के अनन्तर कौशल्या चिन्तित हैं कि प्रातः राम का उबटन करके कौन नहलायेगा, उन्हे कलेवा कौन देगा—

को भोर ही उबटि अन्हवैहे, काढि कलेऊ दैहे ।[5]

अग्रदास ने मृगमद, मलयकपूर और केसर से युक्त सुगधित जल द्वारा राम-सीता के चरण और मुख के धोये जाने की चर्चा की है—

राम सिया पग धोवति अलियाँ ।
मृगमद मलय कपूर सुकेशर सुरभित जल झारी कर धरिया ॥[6]
मृगमद मलय कपूर सुवासित युगल दातुवन सखि दइ बकेरी ।[7]

नहाने के पूर्व सुगन्धित उबटन लगाने का वर्णन भी कवि ने किया है—

श्री प्रसाद प्यारी प्यारे ओर चारुशीला अंगन सुगंधमय उबटनो लगावती ।[8]

कवि ने अन्य स्थलो पर सुगधित उबटन का वर्णन किया है—

उबटन करन सिया रघुराई ।
सरस सुगन्धन बन्यो उबटनो लेकर उर सरमाई ।[9]

कवि ने सीताजी के उरोजो और रामचन्द्र के हृदय पर मलयकपूर केसर के लेपन की भी चर्चा की है—

मलय कपूर सुकेशर लेपन किया उरोज सुप्रीतम उर पर ।[10]

---

१. गीतावली, बाल०, पद स० २२।२
२. वही, पद सं० २४।६
३. वही, पद स० ३३
४. वही, पद स० ३४
५. वही, पद स० ९९
६. अष्टयाम पदावली, पृ० ७.
७. वही, पृ० ८
८ वही, पद सं० १३, पृ० ११
९. वही, पद सं० १६,
१०. अष्टयाम पदावली, पृ० १७

नाभादास ने राम-सीता की दिनचर्या के वर्णन में शृंगारिक प्रसाधनों का उल्लेख किया है। दोनों सुगंधित पुष्पों की माला धारण किए हुए हैं और एक दूसरे को पुष्प-घ्राण कराते हैं।[1]

अन्यत्र भी कवि ने सुगंधित पुष्प मालाओं के धारण करने, गुलाब-जल और इत्रों का वर्णन किया है—

सो सब निज-निज सौंज लै आईं। दम्पति सुमन माल पहिराईं ॥
कोई गुलाब की फूही करैं। कोई सुगंधि लै आगे धरैं ॥[2]

कवि ने राम-सीता की स्नान-विधि के प्रसंग में ऋतु के अनुसार सुगंधित उबटन, विविध प्रकार के गानों के साथ तेल, फुलेल आदि लगाने का सुन्दर वर्णन किया है—

तेहि ढिग चंदन पीठि पर पिय प्यारी आसीन।
भिन्न अंग प्रति सहचरिन्ह, सुरभि उपटनो कीन ॥
बहु सुगंध जुत तैल पुनि, यथा काल रुचि जान।
मल मल गाय विविध विधि, नाम न जाहि बखान ॥[3]

कवि ने राम-सीता की स्नान विधि का अत्यन्त चित्ताकर्षक वर्णन किया है। चौकी पर एक साथ बैठते ही पहले गर्म जल की धाराएं चलती हैं और सखी जल में हाथ डुबाए रहती है कि जल कहीं अधिक गर्म तो नहीं है। फिर उनसे कुछ ठंडा और बाद में और भी अधिक सुगंधित जल-धारा से सखियाँ उनके शरीरों को मलती हैं। तदनन्तर स्नानकुंड को सुगंधित ठण्डे जल से भर जाने पर राम और सीता दोनों उस कुंड में नाना प्रकार की जलक्रीडाएँ करते हैं—

मज्जन चौकी निकट करि, तेहि बैठे दोउ साथ।
प्रथम उष्ण जल धार चलि, सहचरि बोडे हाथ ॥
पुनि तेहि ते कछु सीर जल, पुनि ताहू ते सीर।
यथा काल रुचि जानिके मीजत सखी शरीर ॥[4]

स्नान के अनंतर अगर, धूप देकर बालों को सुखाया जाता है और कोई सखी उनको तिलक लगाती है, कोई दर्पण दिखाती है, कोई सारे शरीर को सुगंधित चंदन से चर्चित करती है।[5]

---

१ अष्टयाम, छंद सं० ७०-७२
२ वही, छंद सं० ८८-८९
३ वही, छंद सं० १६२, १६३
४ वही, छंद सं० १६४, १६९
५ वही, छंद सं० १७२-१७४

सखियों ने मुक्ताओं के साथ अत्यन्त सुगंधित पुष्पों को मिलाकर सीता जी का सुन्दर जूड़ा बाँधा—'केशनि मुक्त' सुमन मिलि, जूड़ा बंधन कीन्ह ।'[1]

व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ

इन वस्तुओं के अतिरिक्त दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, पात्र, बैठने और सोने के उपकरण आदि की गणना की जा सकती है। आलोच्य कवियों की रचनाओं में सम्बन्धित वस्तुओं के कुछ वर्णन मिलते हैं।

सूरदास ने एक ओर वनवासी रामचन्द्र को तिनके (कुश) बिछाकर भूमि पर शयन करने और दूसरी ओर पुष्पों के सजी शय्या पर एक नवयुवती के साथ रावण के सोने का वर्णन किया है जिसके चारो ओर सुगंध फैल रही है—

इहि विधि वन बसे रघुराइ ।
डासि के तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ ॥[2]
पुहुप प्रजक परी नवजोवनि, सुउ परिमल सजोग ।[3]

तुलसीदास ने केवट-प्रसंग मे लकड़ी के जलपात्र—कठौता का उल्लेख किया है—

छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को,
धोइ पाय पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि ॥[4]

अग्रदास ने पद्मराग मणिजड़ित चौकी का वर्णन किया है जिस पर राम-सीता बैठकर उबटन लगवा रहे हैं—

पदमराग मणि की चौकी पर दुग्धफेन सम बिछे बिछावन ।
तापर स्यामा स्याम विराजे कोटि मदन रति द्युतिन लजावन ॥[5]

एक स्थल पर मणिमय वेदी और हवनकुंड का भी उल्लेख हुआ है—

यज्ञ सु करन रसिक सिय प्यारो ।
सुरतरु तर मनिमय वेदी बिच दाहिन सिय पिय राम निहारो ।
हवन कुंड परिकरमा कीन्हें अग्र अलि के प्रान अधारो ॥[6]
चन्दन सिंहासन सुभग मणिमय जटित जराय ।
सिय सियवर आसीन तेहि दीन्ही सखिन रजाय ॥[7]

---

१. अष्टयाम छंद सं० १७७
२. सूररामचरितावली, पद सं० ४९
३. वही, पद सं० ६६
४. कवितावली, अयोध्या०, छंद सं० १०
५. अष्टयाम पदावली, पद सं० १४
६. वही, पद सं० २०
७. वही, पृ० ३१

नाभादास ने अष्टयाम मे रामचन्द्र जी की दिनचर्या के प्रसग मे उनके शयन-गृह की शोभा का वर्णन करते हुए कहा है कि अन्त पुर मे रत्नो से जडे पलग और उन पर अत्यन्त सुन्दर दूधफेन के सदृश उज्ज्वल, कोमल, प्रमोद-कारी बिछौना बिछे हुए हैं। ये अनेक रग के सुगधित पुष्पो से सुसज्जित हैं। पलग पर लाल मणियो से जडी चार दडो वाली छतरी शोभायमान है। पलग और छतरी के चारो किनारो पर गजामुक्त की झालरें झूल रही है।[1]

भूमि पर अत्यन्त मुलायम गद्दा बिछा है जिसमे सोन के तारो के अनेक प्रकार के काम बने हैं, कही गलीचे बिछे है जिनमे सुगधित पुष्पो की रचना की गई है। पलग के चारो ओर सोने की चौकिया रखी हुई हैं जिन पर मणि-जडित सोने की झरियाँ सरयूजल से भरी रखी हुई हैं, उन पर अनेक स्वादिष्ट मेवाओ से भरे रत्नजडित सोने के कटोरे रखे हुए हैं, उन पर पान की बीरियो से भरे पानदान और अनेक प्रकार के सुगधित इत्रो से भरे इत्रदान रखे हुए हैं—

तेहि चारिहु दिशि फरस बिछौ अति। कनक तार जरि वफत विराजनि ॥
कहुँ अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना बिच बीचा ॥
कहुँ कचन की चौकी धरी। झारी श्री सरयूजल भरी ॥
रतन जरित वहु धरे कटोरा। वहु मेवन युत स्वाद न थोरा ॥
पानदान वीरिन तें भरे। अगनित भाँति सुरभि कहुँ धरे ॥[2]

खेल और मनोविनोद

आलोच्य कवियो ने बालक राम और उनके अनुजो के कतिपय खेलो और मनोविनोद के अन्य साधनो का वर्णन भी किया है। राजकुमारो को आरम्भ से ही अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती है जिससे उनका मनोरजन भी होता है। सूरदास ने केवल दो स्थलो पर राम और उनके भाइयो की बालक्रीडाओ के साकेतिक वर्णन किये हैं—

धनुही बान लए कर डोलत।
चारौ वीर सग इक सोभित, वचन मनोहर बोलत।[3]

चारो कुमारो की सर-क्रीडा देखने के लिए देवर्षि नारद और तैंतीसो देवता भी लालायित रहते हैं। एक अन्य पद मे वर्णन है कि उनके हाथो मे धनुष बाण

१. अष्टयाम, छद सं० १७-२२
२. वही, छद स० २४-२८
३. सूररामचरितावली, पद स० ६

सखियों ने मुक्ताओं के साथ अत्यन्त सुगंधित पुष्पों को मिलाकर सीता जी का सुन्दर जूड़ा बांधा--'केशनि मुक्त' सुमन मिलि, जूरा बंधन कीन्ह ।[1]

व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ

इन वस्तुओं के अतिरिक्त दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, पात्र, बैठने और सोने के उपकरण आदि की गणना की जा सकती है। आलोच्य कवियों की रचनाओं में सम्बन्धित वस्तुओं के कुछ वर्णन मिलते हैं।

सूरदास ने एक ओर वनवासी रामचन्द्र को तिनके (कुश) बिछाकर भूमि पर शयन करने और दूसरी ओर पुष्पों के सजी शय्या पर एक नवयुवती के साथ रावण के सोने का वर्णन किया है जिसके चारों ओर सुगंध फैल रही है—

इहि विधि बन बसे रघुराइ।
डासि के तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ ॥[2]
पुहुप प्रजक परी नवजोवनि, सुउ परिमल सजोग।[3]

तुलसीदास ने केवट-प्रसंग में लकड़ी के जलपात्र—कठौता का उल्लेख किया है—

छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को,
धोइ पाय पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि ॥[4]

अग्रदास ने पद्मराग मणिजड़ित चौकी का वर्णन किया है जिस पर राम-सीता बैठकर उबटन लगवा रहे हैं—

पद्मराग मणि की चौकी पर दुग्धफेन सम बिछे बिछावन।
तापर स्यामा स्याम विराजे कोटि मदन रति द्युतिन लजावन ॥[5]

एक स्थल पर मणिमय वेदी और हवनकुंड का भी उल्लेख हुआ है—

यज्ञ सु करत रसिक सिय प्यारो।
सुरतरु तर मनिमय वेदी बिच दाहिन सिय पिय राम निहारो।
हवन कुंड परिकरमा कीन्हे अग्र अलि के प्रान अधारो ॥[6]
चन्दन सिंहासन सुभग मणिमय जटित जराय।
सिय सियवर आसीन तेहि दीन्हो सखिन रजाय ॥[7]

---

१. अष्टयाम छंद सं० १७७
२. सूररामचरितावली, पद सं० ४९
३. वही, पद सं० ६६
४. कवितावली, अयोध्या०, छंद सं० १०
५. अष्टयाम पदावली, पद सं० १४
६. वही, पद सं० २०
७. वही, पृ० ३१

नाभादास ने अष्टयाम मे रामचन्द्र जी की दिनचर्या के प्रसग मे उनके शयन-गृह की शोभा का वर्णन करते हुए कहा है कि अन्त पुर मे रत्नो से जडे पलग और उन पर अत्यन्त सुन्दर दूधफेन के सदृश उज्ज्वल, कोमल, प्रमोद-कारी बिछौना बिछे हुए हैं। ये अनेक रग के सुगधित पुष्पो से सुसज्जित हैं। पलग पर लाल मणियो से जडी चार दडो वाली छतरी शोभायमान है। पलंग और छतरी के चारो किनारो पर गजामुक्त की झालरें झूल रही हैं।[1]

भूमि पर अत्यन्त मुलायम गद्दा बिछा है जिसमे सोने के तारो के अनेक प्रकार के काम बने हैं, कही गलीचे बिछे है जिनमे सुगधित पुष्पो की रचना की गई है। पलग के चारो ओर सोने की चौकिया रखी हुई हैं जिन पर मणि-जडित सोने की झरियाँ सरयूजल से भरी रखी हुई हैं, उन पर अनेक स्वादिष्ट मेवाओ से भरे रत्नजडित सोने के कटोरे रखे हुए है, उन पर पान की बीरियो से भरे पानदान और अनेक प्रकार के सुगधित इत्रो से भरे इत्रदान रखे हुए है—

तेहि चारिहु दिशि फरस बिछौ अति। कनक तार जरि बफत विराजनि॥
कहुँ अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना बिच बीचा॥
कहुँ कचन की चौकी धरी। झारी श्री सरयूजल भरी॥
रतन जरित बहु धरे कटोरा। बहु मेवन युत स्वाद न थोरा॥
पानदान बीरिन तें भरे। अगनित भाँति सुरभि कहुँ धरे॥[2]

खेल और मनोविनोद

आलोच्य कवियो ने बालक राम और उनके अनुजो के कतिपय खेलो और मनोविनोद के अन्य साधनो का वर्णन भी किया हैं। राजकुमारो को आरम्भ से ही अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती है जिससे उनका मनोरजन भी होता है। सूर-दास ने केवल दो स्थलो पर राम और उनके भाइयो की बालक्रीडाओ के सांके-तिक वर्णन किये हैं—

धनुही बान लए कर डोलत।
चारौ बीर सग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।[3]

चारो कुमारों की सर-क्रीडा देखन के लिए देवर्षि नारद और तैतीसों देवता भी लालायित रहते हैं। एक अन्य पद मे वर्णन है कि उनके हाथो में धनुष बाण

---

१. अष्टयाम, छद स० १७-२२
२ वही, छद स० २४-२८
३. सूररामचरितावली, पद स० ६

शोभायमान है और वे लाल-लाल जूतियाँ पहने स्वर्णमय आगन में खेलते घूम रहे है—

> करतल सोभित बान धनुहियाँ।
> खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ ॥[१]

गोस्वामी तुलसीदास ने भी चारो कुमारों की बालक्रीड़ाओं का ऐसा ही मनोहर वर्णन किया है। कभी वे खेलने के लिए चन्द्रमा माँगने का हठ करते हैं, कभी अपनी परछाही देखकर डरते हैं, कभी ताली बजाकर नाचते हैं—

> कबहूँ ससि मागत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
> कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥[२]

राजा दशरथ के आगन मे कुमारो का परस्पर खेलना, उठ-उठ कर चलना फिर गिर गिर पडना, झुकना, झाँकना, परछाई देखकर किलकारी मारना, नाचना, हठ करके लड़ना आदि क्रीड़ाएँ अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं—

> परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि।
> झुकनि, झाँकनि, छाँह सो किलकनि, नटनि, हठि लरनि ॥[३]

तुलसीदास ने गीतावली में अन्य कई स्थलों पर राम की बालक्रीड़ाओं का सुदर वर्णन किया है। बौद्धिक दाँव-पेंच के खेलो मे चौपड़ या शतरज का मुख्य स्थान है। यह खेल प्राय. अधिक अवकाश की अपेक्षा रखता है। सामान्य और धनी सभी वर्ग के लोग अवकाश के समय मनोविनोद के लिए इस खेल को खेलते हैं। यह बिसात पर पासो या गोटियो से खेला जाता है। इसके तीन पासे होते है जो प्राय हाथी-दात के होते हैं। अग्रदास ने राम और सीता को चौसर खेलते हुए वर्णित किया है। पासे हीरे के है और वे चतुरता से गोटियाँ चलाते हैं—

> चौसर खेलत रसिया लाल, प्यारी संग सुख आल।
> पासा हीरा के अति सुदर युगदल सखि कर बाल।
> दम्पत्ति टोल हनें गनि गोटी कौतुक कर सियलाल।
> चतुराई चित चोरत खेलत दोऊ नैन विशाल ॥[४]

नाभादास ने अष्टयाम मे राम की दिनचर्या के प्रसग में 'चौगान' खेल का वर्णन किया है। इस खेल में खिलाड़ी दो दलों मे बट कर पृथ्वी पर पड़े हुए

---

१. सूररामचरितावली, पद सं॰ ५
२. कवितावली, बाल॰, छद स॰ ४
३. गीतावली, बाल॰, पद स॰ २८।३
४. अष्टयाम पदावली, पद सं॰ २८

बटाकर चौगान से मारते है। यह खेल घोडो पर चढकर खेला जाता है। रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न चारो भाई अपने-अपने घोडो पर चढकर घोडो को फेरते हैं और नाना प्रकार की चालें दिखाते हैं। वे अनेक प्रकार से अपने घोडो को नचाते हैं और घोडो पर चढे हुए फूलो की गेंदो का खेल खेलते हुए परस्पर चोटें मारते हैं। कभी अस्त्रो को पृथ्वी पर डालकर घोडो को झुका कर तत्काल उठा लेते हैं—

कहुँ चौगान खेल प्रभु करैं, कहु मृगया खेलन चित धरैं ॥
कहुँ बहु भाँति तुरग नचावैं ।कहुँ सुमनन की चोट चलावैं ।
कहुँ अस्त्रन महि डारि उठावैं । कहुँ चुटकी दै वाजि फिरावैं ॥
कहुँ चुचकारि तुरंग कह रोकैं । कहुँ ठाढै कहि हय सिर ठोकैं ॥[1]

कवि ने चौपड के खेल का भी वर्णन किया है। रामचन्द्र जी अत्यन्त हास-विलास के साथ शतरज का खेल-खेल रहे हैं और उसमे इतने तल्लीन हैं कि उन्हे भोजन की भी सुधि नही रहती। तब सीता जी पासो को समेट देती हैं और उन्हें भोजनशाला की ओर ले जाती है—

तहँ कछु समय विलास हास करि। रग रग सतरज सु चौपरि॥
सो सुनि सिय पासा धरि दीन्ही। भोजन मदिर दिशि रुख कीन्ही॥[2]

अग्रदास ने चौगान खेलने के प्रसग मे मृगया का भी उल्लेख किया है। रामचन्द्र जी कभी चौगान खेलते हैं और चाहते हैं तो मृगया खेलने लगते है—

कहुँ चौगान खेल प्रभु करैं। कहुँ मृगया खेलन चित धरैं॥[3]

अन्यत्र भी 'मृगया' का सांकेतिक वर्णन हुआ है—

रघुनन्दन प्रभु आवैं।
उपवन बाग शिकार खेलि के चढे तुरग नचावैं॥[4]

कवि ने 'पतगबाजी' का वर्णन भी किया है। रामचन्द्र जी भाइयो सहित अटारियो पर चढ़कर पतग उड़ाते हैं। कभी वे पतग को नीचे की ओर ले जाते हैं और फिर तुरत खीच कर ऊपर ले जाकर घुमा देते हैं। वे गर्दन घुमा-घुमा कर पतग को एक दूसरे के पास ले जाते हैं। कभी वे पुकार कर कहते हैं कि अपनी पतग बचाना, नहीं तो अभी कटती है। जब रामचन्द्र जी स्वय हार जाते हैं

१. अष्टयाम, छद स० ३७८-३८१ २. वही, छद स० २०८, २११
३. वही, छद स० ३७८ ४. अष्टयाम पदावली, पद स० ५४

तो भाइयो की न्यौछावर वे स्वयं देते हैं और रामचन्द्र जी के जीतने पर समस्त भाई उनकी न्यौछावर करते हैं–

कहुँ चढि अटन पतंग उड़ावत । अनुज सघन उर मोद बढावत ॥
चख चंचल कर तिन तन हेरत । अर्द्ध उर्द्ध दिशि विदिसिन्ह फेरत ॥
अनुजन सखन प्रचारि प्रचारी । मारि मारि ग्रीवा भुज भारी ॥
चंग ने चग लरावत काटत । हारिहु परे निछावर बाँटत ॥[1]

मनोरंजन के अन्य साधनो में कुजविहार, जलक्रीडा, नृत्य, संगीत आदि की भी गणना की जाती है । अग्रदास ने राम-सीता के कुंजविहार का सुदर वर्णन किया है । रामचन्द्र और सीता राजमहल के उपवन मे विचरण कर रहे हैं जहा अनेक प्रकार के सुगधित पुष्प खिले हुए है । उनके आभूषण बना बना कर दोनो एक दूसरे को पहनाते हैं । वहाँ पर मोर, हंस, शुक, सारि, मृगो के झुड सुशोभित है । पानी के फव्वारे कुंजो के बीच छूटे रहे हैं । वे कही जलक्रीड़ा करते हैं और कही फूलो की गेंद बनाकर उछालते हैं–

मोर हस सुक सारि पढावति मृगी झुड रस चरित अपारे ।
कुजन मधि कहुँ छूट फुहारे ग्रीषम पावस सम सुख सारे ॥
कहुँ फूलन के गेंद उछारत कहुँ जल केलि करैं मतवारे ।
विविध विहार बाग बन कुजन करि पुनि अग्र महल पग धारे ॥[2]

कवि ने एक स्थल पर राम-सीता की जलक्रीडा का भी मनोहारी वर्णन किया है । वे सुदर सरोवर मे हाथी-हथिनी की तरह स्वच्छदतापूर्वक अनेक प्रकार की जलक्रीडाएँ करते हैं । अँजुलि मे जल लेकर एक दूसरे की आँखो पर मारते हैं । झीने कपडो मे उनके अगो की शोभा झलक रही है—

सुभग सरोवर तामे दोऊ करिणी संग करि रिव पिय प्यारी ।
सखिन सहित विहरत जलमाही बहुविधि करत केलि रसकारी ।
अँजलि भरि जल लेत परस्पर अखियन मे मारत पिचकारी ।
वस्त्र झीन अंगन सब झलकत लखि लखि दोऊ रसमतवारी ।
करि मज्जन दोउ तट पर आये अग्र समय सम बसन सुधारी ॥[3]

एक अन्य स्थल पर भी कवि ने ग्रीष्म ऋतु में जलक्रीडा और कुंजविहार

१. अष्टयाम, छद सं० ४२१-४२४ २. अष्टयाम पदावली पद सं० ६४
३. वही, पद सं० ११

का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। सीताजी के साथ उनकी सखियाँ चारुशील आदि भी हैं। हरेक की नाव अलग-अलग है। वे परस्पर एक दूसरे को कमल पुष्प मारते हैं और अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं। वे तदनन्तर सुगंधित पुष्पों के उद्यान में विचरण करते हैं।[1]

कवि ने रासलीला का भी सुन्दर वर्णन किया है। रामचन्द्रजी रासलीला की आकर्षक रचना करते हैं। रास सम्बन्धी नृत्य में स्त्री पुरुष एक दूसरे का हाथ पकड़कर सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। रास का वर्णन अग्रदास ने जी अपने रचनाओं में किया है। सूरदास, तुलसीदास ने राम के मर्यादावादी रूप का वर्णन श्रेयस्कर समझा किन्तु अग्रदास ने जो मधुरोपासक कवि थे और वे इस मधुरोपासना के प्रवर्तक भी माने जाते हैं, रासलीला का अत्यन्त चित्ताकर्षक और आह्लादकारी वर्णन किया है। शरद् की चन्द्रिका में अनेक सखियों सहित चक्राकार रूप बनाकर सीता जी और रामचन्द्र नृत्य कर रहे हैं। अनेक राग-रागनियों और वाद्यों के साथ यह मनोहर रासलीला हो रही है—

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि चमकत चहुँ ओर।
चक्राकार रास मंडल रचि रागरागिनी करत शोर।
विमलाचन्द्र कलाधि रंगीली बीणा मृदंग लिये करघोर।[2]

सरयू-तट के निकट अशोक वन में भी रासक्रीडा अवलोकनीय है। कोई सखी वीणा, मुचक और कोई तमूरा लिए है। अनेक प्रकार के यंत्रों को लेकर सखियाँ राग-रागिनियों के साथ नृत्य कर रही हैं। चेतन और अचेतन सभी अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहे हैं—

जब प्यारी प्रीतम मिलि नाचत ताथेइ औरन प्यारी।
स्वर्ग सात पातार व्यापि गयो परमानन्द के वहाँ पनारी।
अस्थावर जगम जो जहँ लौं आनद मुरछा में नर नारी।
अद्भुत राम रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी॥[3]

रास-क्रीडा में मृदंग, ढोल, सारंगी, झांझ, मजीरा, वीणा आदि वाद्यों की ध्वनि हो रही है। रामचन्द्रजी सीता और सखियों के साथ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नृत्य करते हुए अत्यन्त सुशोभित हैं। कभी वे सीताजी के गले

१ अष्टयाम, पद सं० ६६
२. वही, पद सं० ७०
३. वही, पद सं० ७६

मे वाद्य बजाते हुए मधुर स्वरो मे गाते हैं और नूपुरो की छनन-छनन ध्वनि हो रही है।[1]

नाभादास ने भी नृत्य और गान आदि का सजीव वर्णन किया है। सखियाँ अनेक प्रकार के छद, गीत और राग-रागनियाँ गा-गा कर नृत्य करके रामचन्द्रजी और सीताजी को रिझाती हैं। उनकी विविध नृत्यकलाओं को देखकर देवागनाएँ रमा आदि भी आश्चर्यचकित हो जाती हैं। राम और सीता प्रसन्न होकर उन्हे अनेक पुरस्कार देते हैं—

छंद गीत बहु रागन करही। निज निज गुण नृत्यत सचरही॥
सगीतादि नृत्य बहु कीन्ही। कला अनेक राग रस भीन्ही॥[2]

नृत्य-गानादि विविध राग-रागनियो और अनेक प्रकार के वाद्यो के साथ अत्यन्त आनद उत्पन्न करने वाले है—

उठत तरग रग भयो भारी। मुख मुचंग धुनि नृत्य सुधारी॥
रागकेदारो रुचि उपजावत। पुनि विहाग कोउ सोरठ गावत॥[3]

ऋतु एवं पर्वोत्सव

हिंडोला—ऋतुओ के अनुसार आयोजित उत्सवो के वर्णन भी आलोच्य कवियो की रचनाओ मे मिलते है। वर्षाऋतु में हिंडोला अथवा झूला झूलने की प्रथा बहुत पुरानी है। गोस्वामी तुलसीदास ने गीतावली मे रामचन्द्रजी के हिंडोला की रचना का मनोहारी वर्णन किया है। हिंडोला के चारो ओर स्फटिक मणि की मनोहर भीतें है और मणियो के सुदर द्वार है। उसकी कांच की गचें देखकर मन-मयूर नाच उठता है। इसमे वदनवार, वितान, पताका, चमर, ध्वजा, पुष्प और फलो की आकृतियाँ बनायी गयी है। उसमे विचित्र भौंरो में लटकी हुयी चन्दन की पाटी और लाल रग का बेलन है जिसमे सोने की डंडी लगी हुयी है।[4]

सोने के झूलो पर सखियाँ विविध रागों को गाती हुयी बारी-बारी से एक दूसरे को झुलाती और झूलती है। उस समय मजीर, नूपुर और ककणियो की ध्वनि कामदेव के हाथो की ताल सी जान पड़ती है। झूलते समय श्रम के कारण उनके मुख पर पसीने की बूंदें, विखरे हुए बाल और उलझे हुए हार क्रमशः अधकार, बिजली, नक्षत्रगण, बाल सूर्य और चन्द्रमा के सदृश प्रतीत होते है।[5]

---

१. अष्टयाम पदावली पृ० ५०-५१
२. अष्टयाम, छद स० ४८०-४८२
३. वही, छद स० ४९०-४९१
४. अष्टयाम पदावली, पद स० १८
५. गीतावली, उत्तर०, पद स० १९।१

एक अन्य पद में कवि ने मणिमय हिंडोले की रचना का विस्तृत परिचय दिया है। झुण्ड की झुण्ड गजगामिनी सुंदर नारियाँ शरीर पर कुसुंभी रंग की साड़ी और विविध आभूषणों से सुसज्जित होकर झूलने के लिए जा रही हैं। कोकिल के समान कंठ वाली मृगनयनी बालाएँ सुंदर स्वर से सारंग, गौड़ राग में रामचन्द्रजी के सुयश का गान कर रही हैं। इस प्रकार अयोध्या के घरों में सारंग, गौड़, मलार, सोरठ, सूहो रागों में मनोहर बाजे बज रहे हैं। उनकी अनेक प्रकार की तान तरंगावली सुनकर गंधर्व और किन्नर भी लज्जित हो जाते हैं। इस प्रकार अत्यधिक झूलने वाली नारियों के घुंघराले बाल बिखर जाते हैं जिससे उनकी सुन्दरता और बढ़ गई है। हवा लगने से उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसक जाते हैं।[1]

अग्रदास ने भी हिंडोले का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वर्षा ऋतु में जब बिजली चमक रही है, बादल गरज रहे हैं, कोयल कूक रही है पपीहा 'पी-पी' की रट लगाए हुए है तो रामचन्द्र और सीता जी एक दूसरे के गले में हाथ डाले हुए प्रसन्नतापूर्वक झूला झूल रहे हैं। हिंडोले पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं और सखियाँ नाना वाद्ययंत्रों के साथ सुरीली तान में गा गाकर उन्हें झुला रही हैं—

> झूलें दोउ झूलन की झुलमान।
> पिय प्यारी के नित्य झुलन है नहिं कछु काल प्रमान।
> चहुँ दिशि मणिमय महल विराजैं मध्य विचित्र वितान।
> तामधि सुन्दर परयो हिंडोला मोतिन के लहरान ॥[2]

वधुओं के लिए श्रावण की तीज का अत्यन्त महत्व होता है। उस दिन झूले का विशेष आयोजन होता है। सुंदर स्त्रियाँ रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजधजकर झूलने के लिए आती हैं। सखियाँ सीता जी को झूलना सिखाती हैं। वे झोंका देकर प्रिय को आनन्दित देखकर मन्द-मन्द मुस्कराती हैं। सखियाँ मलार आदि रागों को बाजों के साथ गान कर रही हैं। झूलने-झुलाने में होड़ मची हुयी है—

> जनकपुर लागत तीज सुहाई।
> रंगरंगीली अतिहि छबीली सब मिलि झूलन आई।[3]

अग्रदास ने 'हिंडोला' का वर्णन कई पदों में अत्यन्त विस्तार के साथ किया

---

१. अष्टयाम पदावली, पद सं० १९१४ २. वही, पद सं० १००,
३. वही, पद सं० १०१

है। मधुरोपासना से प्रेरित होकर उन्होने रामचन्द्र और सीता के युगल रूप के अत्यन्त शृंगारिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। राम और सीता के रसिक-रूप का चित्रण उनका उद्देश्य है। रमणीय प्राकृतिक वातावरण मे कुंजो के बीच मणियो से जड़े हिंडोले पर दोनों एक दूसरे के गले मे बाँहे डालकर झूल रहे हैं। सखियाँ अनेक वाद्ययन्त्रो के साथ सुरीली तानो में गाती हुई उन्हे झूला झुला रही है—

चले दोउ झूलन को हुलसान।
तापर बैठे दिय गलबाँही प्यारी पिय रसदान।
नाना यन्त्र लिये सखि गावत लेत सुरीली तान ॥
दोउ दिसि ते सखि झुलवन लागी छवि लखि हिय उमडान।
दोउ-मिलि झूलत है रसमाते अग निरखि बलि जात ॥[1]

कवि ने हिंडोला-प्रसग मे सीता के साथ श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, माण्डवी, चारुशीला आदि के झूलने का भी वर्णन किया है। उस समय की उनकी प्रेम-क्रीडा निम्नलिखित पद मे द्रष्टव्य है—

हिंडोले झूलत सिय महारानी।
श्रुतिकीरति उर्मिला माण्डवी चारुशीला गुणखानी ॥
रच्यो हिंडोरा नाम लिवावति चतुर सखी मुसुकानी।
सिया जू सकुचि रही नहिं बोलति अयअली मनमानी ॥[2]

होली—आलोच्य कवियो ने होली, दीपावली आदि पर्वों के भी आकर्षक वर्णन किए हैं। फाल्गुन की पूर्णिमा पर होली अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनायी जाती है। इस अवसर पर विविध प्रकार के वादन, गायन आदि के बीच अबीर, गुलाल आदि को मुख पर मला और पिचकारी से चदन, रग आदि परस्पर एक दूसरे पर डाला जाता है। तुलसीदास ने वसत ऋतु मे प्राकृतिक शोभा का चित्रण किया है। वन उपवन में नवीन पत्ते और विविध प्रकार के पुष्प खिले हुए हैं, पक्षियो का चहचहाना, कोयल का कूकना और भौरो का गुँजारना अत्यन्त मन-मोहक है। ऐसे ही अवसर पर रामचन्द्रजी अपने भाइयो और सखाओ के साथ फाग खेलते हैं। उस समय करताल, मृदग, झांझ, डफ, ढोल, दुन्दभी आदि बाजे बजाये जाते हैं और सुदर शहनाइयो पर समयानुकूल गायन हो रहा है। सुदर स्त्रियाँ अबीर घोलकर कुकुमो मे भरती हैं और ऋतु के अनुसार तरह-तरह की मनभावन गालियाँ देती हैं—

---

१. अष्टयाम पदावली, पद सं० १००
२. वही, पद सं० १०३

खेलत फाग, अवधपति, अनुज सखा सब संग ।
बरषि सुमन सुर निरखहिं सोभा अमित अनंग ॥
ताल मृदंग झांझ डफ बाजहिं पनव निसान ।
सुघर सुरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥
कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर वर नारि ।
रितु सुभाय सुठि सोभित देहिं विविध विधि गारि ॥[1]

एक अन्य पद मे भी कवि ने रामचन्द्र जी और उनके भाइयो के होली खेलने का सुन्दर वर्णन किया है। उनकी झोलियो म अबीर है और हाथो में पिचकारियां। अनक प्रकार के बाजे बज रहे हैं और चन्दन की रज से मिला हुआ सुगंधित जल छिडका जा रहा है। उधर आभूषण पहने सीता जी के साथ युवतियो का यूथ हाथ मे बेंत की छडी लिए हुए रास्ता खोजता है और दौडकर वे जिसको पकडती हैं, उसके नेत्रो म अंजन लगा देती हैं और उसे बहुत नाच नचाकर अनुनय–विनय के बाद तब उसे छोडती है। बहुत से लोग मसखरे का स्वांग रचकर गधा पर चढे हुए है। वे तरह-तरह की कूटोक्तिया बोलते हैं। स्त्री-पुरुष आपस में गालियाँ देते हैं—

नूपुर किंकिन धुनि अति सोहाइ। ललनगन जब जेहि धरइं धाइ।
लोचन आजहि फगुआ मनाइ। छाडहिं नचाइ, हाहा कराइ।
चढे खरनि विदूषक स्वांग साजि। करैं कूटि, निपट गई लाज भाजि ॥
नर नारि परस्पर गारि देत। सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥[2]

तुलसीदास जी द्वारा होली पर अनेक प्रकार के स्वांग और लज्जा छोडकर गालियो के गाने की प्रथा का वर्णन स्वाभाविक ही है। व्रज प्रदेश मे आज भी होली पर स्त्रियाँ बेंत की छडी लेकर पुरुष-वर्ग पर प्रहार करती है, उसी की झाँकी उक्त पद मे मिलतीहै।

अग्रदास ने बसतपचमी के प्रसग मे फाग का मनोरम वर्णन किया है। इस अवसर पर चोवा, चन्दन, अरगजा और मोतियो से मगल-चौक पूरी जाती है। रत्नजडित पिचकारी मे केसरिया रग भर कर रामचन्द्र जी पर डाला जा रहा है, अबीर, गुलाल छिडका जा रहा है। नव वसत का उत्सव अत्यन्त चित्ताकर्षक है—

---

१ गीतावली, उत्तर०, पद स० २१।१६, १७, २२
२ वही, पद स० २२

आज वसन्त पंचमी पूजा श्री रघुवर की बधाई।
चोवा चन्दन और अरगजा मोतियन चौर पुराई।
नवल वसन्त नवल मोरन वन नवल नवल मन भाई।
अग्रदास गावहि श्री रघुवर फगुआ परमपद पाई॥[1]

अग्रदास ने होली का सजीव वर्णन कई पदो में किया है। कवि ने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और उनकी राजमहीपिया—सीता, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, माण्डवी का एक साथ फाग खेलने का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है। चारो दम्पत्ति की सुन्दर जोड़ियाँ दिखायी पड़ती है। सीता जी जब गुलाल लगाती हैं तो रामचन्द्र जी की पिचकारी चलती है। दोनो एक दूसरे के रपट-झपट कर मुख में अबीर मलते है और तभी रग के कुमकुम बरसने लगते हैं। होली के इस दृश्य को राजा दशरथ और कौशल्या झरोखो मे देख देखकर आनन्दित होते हैं—

जानकी खेलन होरी पिय संग चली।
अपने अपने भवन से निकली उर सोहै चम्पा कली।[2]

गोस्वामी तुलसीदास और अग्रदास ने वसन्त के अवसर पर होली खेलने वर्णन किया है। वस्तुत. फाल्गुन मास की पूर्णिमा पर होली खेलने की प्रथा है। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीनकाल में वसन्त पचमी के बाद से ही रंग खेलना आरम्भ हो जाता था। ऋतु-परिवर्तन के साथ ही वसन्त पर हृदय मे एक नवीन उल्लास भर जाता है और वह होली के रूप मे प्रकट होता है।

दीपावली भी इसी प्रकार का एक अत्यन्त उल्लासमय पर्व है। तुलसीदास ने एक पद मे इनकी शोभा का वर्णन किया है। संध्या समय अयोध्या की छटा दर्शनीय है। रामचन्द्र जी सुन्दर प्रज्वलित दीपमालिका देख रहे है। स्फटिक मणि के भीतों पर सुवर्णमय दीपो की पक्ति मणिविभूषित सहस्रफणधारी शेष जी के समान सुशोभित है। महल के कलशो पर मणियां इस प्रकार चमक रही हैं मानों अनेक मंगल लोक पृथ्वी पर उर आए हो। घर-घर मे मंगलाचार हो रहे हैं तथा धनी और निर्धन सभी आनन्दित हैं—

साँझ समय रघुबीर पुरी की शोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका विलोकहि हितकरि अवध धनी।[3]

---

१. अष्टयाम पदावली, पद स० ९२
२. वही, पद स० ९७
३. गीतावली, उत्तर० पद सं २०

इस प्रकार आलोच्य कवियो ने केवल होली और दीपावली-दो पर्वों के ही वर्णन किये हैं। उनकी रचनाओ मे अन्य किसी पर्व का कोई वर्णन नही मिलता।

लोकविश्वास और मान्यताएँ

सस्कृति का सम्बन्ध विविध प्रकार के प्रचलित विश्वासो और मान्यताओ से भी होता है। प्रत्येक जाति का सगठन और इसके क्रियाकलाप इनसे नियत्रित होते हैं। हिन्दू समाज मे प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेक प्रकार के लोकविश्वासो की झलक मिलती है। आलोच्य कवियो ने इनका कुछ वर्णन प्रसगवश यत्रतत्र किया है।

भारतीय समाज मे प्राय प्रत्येक शुभ कार्य आरम्भ करने के पहले स्वस्तिवाचन या उस शुभ अवसर पर दही, दूब, हल्दी, फल, फूल, पान से अर्चना-वदना की जाती है। दही, दूब, फल, जल आदि से पूर्ण सोने के कलश रखे जाते है। यह एक प्रकार का शुभ शकुन का प्रतीक समझा जाता है। सूरदास ने रामजन्म के अवसर पर ऋषि द्वारा अभिषेक किये जाने और सामवेद के गायन का उल्लेख किया है—

> गावैं सखी परसपर मगल, रिषि अभिषेक कराई।
> भीर भई दशरथ के आँगन, सामवेद धुनि छाई॥[1]

रामचन्द्र जी जब लका विजय और वनवास की अवधि बिताने के बाद अयोध्या लौटते हैं तो शुभागमन हेतु दही, फल, दूध आदि स्वर्ण-पात्रो मे भर-भर कर रखा जाता है—

> दधि-फल दूध कनक-कोपर भरि, साजत सौंज विचित्र बनाई।[2]

नगर की स्त्रियाँ दही, दूब, हल्दी, फल, फूल, पान आदि सोने के थालो मे लेकर मधुर गान करती हैं—

> दधि दूब, हरद, फल, फूल, पान। कर कनक थार तिय करति गान॥[3]

गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामजन्मोत्सव पर मुनियो के वेद-गान का वर्णन किया है। वेद मत्रो की ध्वनि सारे महल मे गुजायमान हो रही है और बधाई के बजे बाज रहे हैं—

> सदन वेद धुनि करत मधुर मुनि, बहु विधि बाज बधाई॥[4]

---

१ सूररामचरितावली, पद स० ३ २. वही, पद सं० १९७
३. वही, पद स० १९० ४. गीतावली, बाल०, पद सं० १।२

अयोध्या के घर-घर में पत्र, पुष्प, फल, दूब, दही, रोली आदि से मंगलाचार हो रहे हैं। युवतियाँ स्वर्णथाल मे पत्र, पुष्प, नारियल आदि फल, दूब, दही, आदि मागलिक उपकरणो को लिए हुए हैं —

दल फल फूल दधि रोचन, घर घर मगलचार ॥[1]

दल फल फूल दूब दधिरोचन, जुवतिन्ह भरि भरि थार लए ॥[2]

रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक पर मंगलगान, वेदध्वनि, मुनीश्वरो के आशीर्वादात्मक शब्द सारे महल को गुंजायमान कर रहे हैं—

मगलगान, वेदधुनि जयधुनि, मुनि असीस धुनि भुवन भरे ॥[3]

शकुन-विचार

हिन्दू समाज मे शकुन-अपशकुन पर भी विशेष विचार किया जाता है। किसी कार्य-व्यापार की सफलता और असफलता का सम्बन्ध इससे जोडा जाता है। यह विश्वास है कि शरीर के अगो के फडकने, स्वप्न-दर्शन, विशेष पशु-पक्षी के दिखायी देने से भावी घटनाओं का बोध हो जाता है। आलोच्य कवियो ने भी इसका यत्र-तत्र उल्लेख किया है।

लंका मे त्रिजटा सीता जी की शुभचिन्तक राक्षसी है। वह अपने शुभ स्वप्न की बात सीता जी से कहती है कि मैंने प्रातःकाल एक स्वप्न देखा है— जिसमे रामचन्द्रजी, लक्ष्मण जी और आपको एक साथ विमान पर बैठे हुए देखा। रामचन्द्र जी के बाणो के भय से दानवो की सेना भाग रही थी। रावण की ध्वजा पताकाएँ, छत्र, रथ, मणि जटित सोने के महल जल रहे थे और रावण के कटे हुए मस्तक भूमि पर लोट रहे थे और रानी मन्दोदरी विलाप कर रही थी और लका का राज्य विभीषण को मिल गया था—

सुनि सीता ! सपने की बात।
रामचन्द्र लछिमन मैं देखे, ऐसी विधि परभात।[4]

त्रिजटा के शुभ स्वप्न को सुनने के अनतर ही सीता जी बाँया नेत्र और वक्षःस्थल फडक उठते हैं जिससे शुभ शकुन का आभास होता है और उसी क्षण हनुमानजी अशोकवाटिका में प्रकट हो जाते हैं—

---

१. गीतावली, बाल०, पद सं० २।५   २. वही, बाल०, पद सं० ३।४
३. वही, लका०, पद सं० २३।४   ४. सूररामचरितावली, पद सं० ७७

इतनो कहत नैन उर फरके, सगुन जनायो अग।
तिहि छन पवनसुत तहँ प्रगट्यो सिया अकेली जानि ॥[1]

अग्रदास जी ने सीतास्वयवर के पूर्व सीता जी के शुभ स्वप्न-दर्शन का सुन्दर वर्णन किया है। सीता जी सखी से शुभ स्वप्न मे देखे हुए रामचन्द्र जी के अपार रूप-सौंदर्य, उनके द्वारा धनुर्भंग और पिता जनक के प्रण के पूरा होने की चर्चा करती है—

सखि मैं सपनो सुन्दर पायो।
इन्दु वदन राजीव दल लोचन गाधि सुवन सग आयो।[2]

अयोध्या मे माता कौशल्या राम और लक्ष्मण के कुशल मगल का शकुन देख रही है। दोनो पुत्र उन्हे शीघ्र मिल जायँ, उनके मन मे विचार आते ही कौवा उडकर हरी डाल पर बैठ जाता है जिससे शुभ सूचना का आभास मिलता है। इस पर वे आनदित होकर काग से कहती है कि मैं जब तक जीवित रहूगी तुझे दोना भर कर दही-भात दूंगी और तेरे चोच और पख को सोने के पानी से मढवा दूंगी—

बैठी जननि करति सगुनौती।
लक्षिमन राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती।

तुलसीदास ने भी शुभ शकुन की उक्त चर्चा गीतावली मे की है। कौशल्या अपने पुत्रो के विषय मे अत्यन्त चिन्तातुर हैं। वे शकुन मनाती हुई काग से कहती हैं कि अपने पुत्रो को सीता सहित देख लूँ तो तुझे दूध-भात का दोना और चोच को सोने से मढवा दूंगी। तभी उन्हे उनके आगमन की शुभ सूचना मिलती है—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब एहै मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग ! फुरि बाता।[4]

क्षेमकरी पक्षी का वर्णन भी शुभसूचक माना जाता है। उसे शोक-मोचक कहा गया है। कौशल्या उसे सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि मैं बलिहारी जाती हू। तू अपनी सुन्दर वाणी से सच बता कि राम, लक्ष्मण, सीता क्षेमपूर्वक कब तक यहाँ लौटेंगे ? यह सुनकर वह वहाँ सुन्दर मडल बाँधकर मँडराने लगी। आकाश से उसकी शुभ आनद और मगलमयी ध्वनि सुनकर सबके सुन्दर अग

१ सूररामचरितावली पद स० ७७ २ अष्टयाम पदावली, पद स० ८०
३. सूररामचरितावली पद स० १८९ ४ गीतावली, लका०, पद स० १९

फड़कने लगते हैं और मन प्रसन्न हो जाता है। तभी हनुमान जी ने आकर भरत को राम के शुभागमन की सूचना दी—

छेमकरी ! बलि, बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय लषन कब ऐहैं, अंब ! अवध रजधानी ॥[1]

धनुर्भंग के पूर्व नगरवासी कामना करते हैं कि रामचन्द्रजी और लक्ष्मण शिव जी का धनुष तोड़ सकें और वे सीता जी का वरण कर लें, इसके लिए स्त्रियाँ 'कनसुई' शकुन करती हैं। वे गोबर की गौरी बनाकर चलनी में रखकर पृथ्वी पर फेंकती है और उसके सीधे, उल्टे या आड़े गिरने से शुभ-अशुभ का विचार कर रही हैं—

रघुबर कर धनुभंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाईं कै।
लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइ कै ॥[2]

ज्योतिष-विचार

भारतीय समाज में प्रत्येक शुभ कार्य के लिए ज्योतिषी को बुलाकर शुभ-मुहूर्त आदि ज्ञात किया जाता है। तुलसीदास ने गीतावली में राम, भरत आदि के जन्म पर ज्योतिषी द्वारा शुभ फल का उल्लेख किया है। कौशल्या जी ने महल में प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर को बुलवाया। उसके चरण धो, पूज कर आसन कर बैठाया, भोजन कराकर नये वस्त्र पहनाये फिर उसके चरणों पर चारों बालकों को डाल कर उनके सिरों पर उसका हाथ रखवाया। उन बालकों को देखकर ज्योतिषी के शरीर से रोमांच और नेत्रों में आनंदाश्रु भर आये। उसने उनको गोद में लेकर उनके जन्म लेने के समय की घड़ी का वर्णन किया और भविष्य में विश्वामित्र की यज्ञ की रक्षा, सीता जी के साथ स्वयंवर विवाह, पुत्रों के भावी जय और सुयश का वर्णन किया।[3]

कवि ने एक अन्य स्थल पर भी ज्योतिष में आस्था का वर्णन किया है। राम लंका-विजय करके जब अयोध्या लौटने वाले हैं तो कौशल्या ज्योतिषी को बुलाकर उसके पैरों पड़ प्रेममग्न होकर मधुर वाणी से पूछती है—

अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पायँ परि पूछति, प्रेम मगन मृदु बानी ॥[4]

---

१. गीतावली, लंका०, पद सं० २०   २. वही, बालकाण्ड, पद सं० ७०
३. वही, पद सं० १७   ४. वही, लंका०, पद सं० १९

कवि ने अन्यत्र भी धनुष-यज्ञ के अवसर पर ज्योतिष में जनकवासियों की आस्था का उल्लेख किया है—

लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइ कै ।[1]

नजर, जन्त्र-मन्त्र, टोना

हिन्दू समाज के विश्वासानुसार बालक और वयस्क सभी को एक दूसरे की नजर लग सकती है। अत्यधिक रूप-सौन्दर्य, उत्तम स्वास्थ्य, ऐश्वर्य-सवृद्धि, सुखमय स्थिति आदि इसके कारण होते हैं। सुन्दर बच्चों को नजर शीघ्र लगती है और माता इसके लिए विशेष सतर्क भी रहती है। नजर लगने पर बालक हसना-खेलना, खाना-पीना सब छोड देता है और बराबर रोता रहता है। तब यह विश्वास हो जाता है कि बच्चे को किसी की नजर लग गयी है और फिर नजर को उतरवाने का उपक्रम होता है। तुलसीदास ने शिशु राम की नजर का वर्णन किया है। कौशल्या कहती हैं कि आज मेरे राम प्रात से ही अनमने हैं, ठीक से दूध दही पीने, बैठने, खडे होने और पालने मे झुलाने से भी चुप नही होते, बराबर रो रहे हैं। कभी-कभी दुष्टा स्त्री की नजर लगने पर वे इसी प्रकार मचल जाते हैं। नजर उतारने के लिए देव-पितर और ग्रहों की पूजा की जाती है, घृत का तुलादान भी किया जाता है। तुरन्त कुलगुरु वशिष्ठ जी को बुलाया जाता है और वे अमृतमय हाथों से बालक के मस्तक को स्पर्श करते हैं और कुश से नृसिंह-मन्त्र पढकर झाड-फूंक करते हैं—

आजु अनरसे है भोर के, पय पियत न नीके ।
बेगि बेलि कुल गुर, छुऔ माथे हाथ अमी के ।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह-मन्त्र पढे जो,
सुमिरत भय भीक ।।[2]

सुन्दर बालकों को नजर न लगे, इसलिए उनके मुख पर डिठौना या काजल की बिंदी लगा दी जाती है। माता कौशल्या राम के नेत्रों को आँजकर प्रीतिपूर्वक गोरोचन का तिलक, भृकुटि पर काजल की सुन्दर बिन्दी लगाती हैं—

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजि,
चिर रुचि तिलक गोरोचन को कियो है ।
भ्रू पर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार,
बिलसत सीस पर, हेरि हरै हियो है ।।[3]

१ गीतावली, बाल०, पद स० ७०   २. वही, पद स० १२
३ वही, पद स० १०

तुलसीदास ने अन्यत्र भी 'लस मसिबिंदु वदन विधुनीको'[1] 'भाल तिलक मसि बिन्दु बिराजत'[2] आदि का उल्लेख किया है। शिशु को नजर न लगे और उसे अनिष्ट से बचाने के लिए गले मे व्याघ्रनख भी पहनाया जाता है। राम के हृदय पर 'केहरिनख' और 'बघनहा' (व्याघ्र-नख) सुशोभित है—

उर विसाल केहरि-नख, कंकन कर धारी।[3]

कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन सरोज मयन सरनीके॥[4]

अद्भुत रूप-सौंदर्य को देखकर कोई कुप्रभाव न पड़े, इसके लिए तृण तोड देने से यह विश्वास किया जाता है कि वह अनिष्टो से बचा रहेगा। आलोच्य कवियो ने कई स्थलो पर इसका उल्लेख किया है। जनकपुर मे राम और सीता की युगल जोडी अत्यन्त सुन्दर है। सीता जी की सखियाँ साँवले और किशोर अवस्था के रामचन्द्र और गौर वर्ण वाली सीता जी की शोभा पर अरिष्ट निवारण हेतु तिनका तोड़कर फेकती है और वह जोड़ी युग-युग तक जिये, इसके लिए इष्टदेवो से प्रार्थना करती हैं—

सावरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरी,
जोरी जियौ जुग-जुग सखीजन जाचही॥[5]

गीतावली मे भी राम-सीता की सुन्दर जोडी के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते है कि सखियाँ उनकी रूप-माधुरी को देख कर तिनका तोड कर फेंकती हैं कि कही उनको नजर न लग जाय—

इत अवधेस उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुख सिंधु हिलोरी।
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी॥[6]

अग्रदास ने हिंडोला झूलते हुए राम-सीता की युगल जोडी की सुन्दरता का वर्णन किया है। सखी उन्हे झुलाती हुई उनकी अद्भुत छवि को देखकर तृण तोड कर फेंकती हैं कि उन्हे जिससे नजर न लगे—

सहचरी हरषि झुलावति गावति छवि निरखत तृन तोरे॥[7]

अग्रदास ने एक पद में राम-सीता द्वारा विविध प्रकार के व्यंजनो का एक

---

१. गीतावली, बाल०, पद स० २४　　　२. वही, पद सं० ३४।४
३. वही, पद स० २५।३　　　४. वही, पद सं० ३१।३
५. कवितावली, बाल०, छद सं० १३
६. गीतावली, बाल०, पद स० १०५।५
७. अष्टयाम पदावली, पद स० १०४

ही थार मे भोजन करने का वर्णन किया है । उनको भोजन करता हुआ देखकर नजर के निवारणार्थ कवि तृण तोड कर अपने को उन पर न्यौछावर करता है—

दम्पत्ति एक थार निज मदिर जेवत मोद कन्द मृदु भारी ।
अग्रअली के जीवन दोऊ तृण तोरति वलिहारी ॥[1]

नाभादास द्वारा रामचन्द्रजी की रूप माधुरी वर्णन के प्रसग मे सखियाँ राम द्वारा जम्हाई लेने और प्रत्येक अग के मरोडने की सुन्दरता को देखकर तृण तोड-तोड कर उन पर न्यौछावर करती हैं—

उठत जम्हात अग अग मोरैं । छो छवि लखि सखियन तृन तोरैं ॥[2]

आलोच्य रचनाओ मे अनेक प्रकार के पालतू पशु-पक्षियो, लोकाचार और लोक-व्यवहार से सम्बन्धित सम्मान प्रदशन, अभिवादन, विनम्र व्यवहार, राजनीति से सम्बन्धित शासन व्यवस्था, युद्ध सम्ब धी अनेक अस्त्र शस्त्र आदि के यत्रतत्र वर्णन हुए है किन्तु विस्तार-भय से उनका यहाँ उल्लेख नही किया गया है ।

तुलसीदास ने कवितावली मे भारतीय सस्कृति परम्परा के विपरीत दो-तीन स्थलो पर ऐसे वर्णन किये है जो सामान्य रूप से खटकते है । जव अगद रावण के दरबार मे पहुचते है तो वहाँ उन्होने अपनी वीरता और रावण की हीनता को प्रकट करत हुए कुछ अपशब्दो का प्रयोग किया । एक तो रावण उनसे पद म बडा है और दूसरे अगद केवल दूत बनकर आए हैं, इसलिए उनके द्वारा रावण का अपमान बहुत उचित नही जान पडता । वे रावण को कहते हैं कि अरे बावने रावण, तू रामचन्द्रजी से विरोध न कर अन्यथा तेरी भी वही दशा होगी जो वालि, खरदूषणादि की हुई—

तो सो कहौं दसकधर रे, रघुनाथ विराध न कीजिये बौरे ।
वालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जे जे भीति मे दौरे ॥[3]

एक अन्य पद मे अगद कुत्ते का उदाहरण देते हुए रावण से कहते है कि कुत्ता भी अपनी गली मे वरियार होता है, वैसे ही तू भी डीग मारता है, तुझे लज्जा नही आती—

तू रजनीचरनाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौ हौ ।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न, गाल बजावत सौहों ।[4]

---

१ अष्टयाम पदावली, पद स० ५८ २ अष्टयाम, छद स० ७९
३ कविता, लका०, छद स० १२ ४ वही, लका, छद स० १३

वे अपनी वीरता और रावण की हीनता को प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस त्रिकूट पर्वत को, जिस पर लंका बसी हुई है, उसे उखाड़ कर समुद्र में डुबा दूं, तेरे सब सभासदों को कुचल कर उनके रक्त में नहा लूं और यदि मैं वालि का पुत्र हूं, तो रणभूमि मे तेरे दसो मुखों के दाँत तोड़ूंगा।[1]

एक और भी स्थल है जहाँ पर मन्दोदरी अपने पति रावण का सत्कार अपशब्दों द्वारा करती है और शत्रुपक्ष के लोगो की प्रशंसा करती है। हिन्दू-संस्कृति में एक आदर्श सीता जी की स्वाभाविक लज्जा का है जबकि वे मार्ग मे जाती हुई ग्रामवधुओं के पूछे जाने पर 'सावरे से सखि रावरे को हैं' तो वे अपने पति का नाम तक नही लेती वरन् संकेत द्वारा ही राम को अपना पति बतला देती हैं—

तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें, समुझाइ कछु मुसकाइ चली।[2]

दूसरी ओर मन्दोदरी है जो अपने पति का स्वागत गालियों से करती है—

रे नीच! मारीच बिचलाइ, हति ताटका, भंजि सिवचाप सुख सबहिं दीन्ह्यो।
बीस भुज, सीस दस सीस गे तबहि, जब ईस सो बैर कीन्ह्यो॥[3]

उक्त उदाहरण मे अंगद और मन्दोदरी द्वारा रावण का अपमान भारतीय संस्कृति का उल्लंघन सा अवश्य जान पडता है किन्तु जिस रावण ने सीताजी का चोरी से अपहरण किया उसके उस घोर अपराध और कुकृत्य को लक्ष्य मे रखकर उक्त कथन को निन्दनीय भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियों ने संस्कृति के विविध उपकरणों–वेशभूषा, खान-पान, शृंगार के अनेक प्रसाधनों, मनोरंजन के साधनो, संस्कारों एवं पर्वोत्सवों, लोकप्रचलित विश्वासों एवं मान्यताओं आदि का यथास्थान स्फुट चित्रण किया है।

---

१. कवितावली, लंका०, छंद सं० १४　　२. वही, अयोध्या०, छंद सं० २१
३. वही, लंका०, छंद सं० १८

उपसंहार

व्रजभाषा में उपलब्ध मुक्तक रामकाव्यों की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत ग्रन्थ में की गयी है। समयुगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सूरदास, तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, सेनापति आदि कविपुंगवों की निर्दिष्ट मुक्तक रचनाओं के विविध कथा प्रसंगों, पात्रों के चरित्र चित्रण, भाव एवं रस व्यंजना, काव्य-कला आदि का आवश्यक विवेचन किया गया है। प्राय सभी आलोच्य कवि भक्तों की कोटि में परिगणित किए गए है और इनमें से सेनापति को छोड़कर प्रत्येक का किसी न किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध था, इसलिए उन्होंने अपनी भक्तिभावना से प्रेरित होकर ब्रह्म, जीव, माया, संसार आदि विषयक धारणाओं के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रकट किए हैं। अतएव उनकी इस दार्शनिक प्रवृत्ति और उनके काव्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक उपकरणों का भी यथावश्यक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रबंध में आलोच्य रचनाओं के विविध प्रसंगों का यथासम्भव तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक विवेचन में राम-कथा और चरित्र सम्बन्धी कतिपय नवीन विशेषताओं की जानकारी होती है। तुलसी की भक्ति सर्वथा मर्यादानुमोदित है किन्तु गीतावली के उत्तरकाण्ड में राम हिंडोला-वर्णन, फाग-वर्णन में माधुर्य रूप की स्पष्ट झलक मिलती है। उनकी अन्य किसी रचना में इस प्रवृत्ति का प्राय अभाव है। सम्भव है, कालान्तर में रामभक्ति संबंधी रसिक-सम्प्रदाय की स्थापना के मूल में तुलसी द्वारा व्यक्त उक्त माधुर्य भावना भी रही हो। गीतावली में सीता-वनवास का प्रकरण प्राप्त होता है जबकि अन्य किसी मुक्तक रचना में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। कवितावली में सीता-स्वयंवर के प्रसंग में हनुमान का नामोल्लेख किया गया है जबकि अन्य मुक्तक रचनाओं में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

कतिपय पात्रों के चरित्र-निर्माण में भी सूर के काव्य में मौलिक विशेषताएं मिलती हैं। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान जब कौशल्या और सुमित्रा को इसकी सूचना देते हैं तो कौशल्या कहती है कि राम का लक्ष्मण के साथ ही अयोध्या लौटना उचित है।[1] तुलसी ने गीतावली में भी ठीक इसी भाव की अभिव्यक्ति की है।[2] संकेत यह है कि लक्ष्मण के जीवन के साथ ही राम को अपना जीवन रखने का अधिकार है, यद्यपि सुमित्रा पुत्रवियोग से मर्माहत होने पर भी कौशल्या के कथन का खंडन करती हुई कहती हैं कि सेनानी की मृत्यु हो

---

१ सूररामचरितावली, पद सं० १७३

२ गीतावली, लंका०, पद सं० १४

जाने पर भी ठाकुर का तो घर लौटना ही श्रेयस्कर है।[1] एक अन्य स्थल पर रावण के चरित्र की विशिष्टता दिखायी पड़ती है। उसने सीता का अपहरण इसीलिए किया है कि इसी बहाने राम के द्वारा मारे जाने पर उसको मोक्ष प्राप्त हो सकेगा।[2] सूर के रामकाव्य मे चरित्र सम्बन्धी उक्त दोनो विशेषताएँ सर्वथा मौलिक हैं। कौशल्या और रावण का इतना उज्ज्वल चरित्र अन्यत्र प्राप्त नही होता।

सूरदास, तुलसीदास और सेनापति की मुक्तक रचनाओ मे दो-एक स्थलों पर भावसाम्य भी मिलता है। सूर और तुलसी ने सीता स्वयवर के बाद ककण-मोचन मे समान भाव का वर्णन किया है। कवितावली में विवाहोपरान्त जुआ खेलते समय सीता जी अँगूठी के नग मे राम का प्रतिबिम्ब देखकर जुआ खेलना भूल जाती है।[3] सेनापति के काव्य मे भी इसी प्रकार के भाव का वर्णन हुआ है। निर्दिष्ट भाव-साम्य इस बात का परिचायक है कि उक्त कवियों ने सम्भवतः एक दूसरे की कृतियो का अवलोकन किया होगा। सूर और तुलसी के काव्य का दूसरा स्थल वह है जब लका-विजय के बाद राम-लक्ष्मण सीता सहित अयोध्या लौटने वाले हैं तो कौशल्या सगुन मनाती हुई काक को दूध भात का दोना देने और चोंच को सोने से मढा देने की मानता मानती हैं।[5] सम्भव है उक्त भावसाम्य का कारण यह भी हो कि इन कवियो ने किसी एक मूलस्रोत से प्रेरणा ग्रहण की हो।

भक्तियुगीन ब्रजभाषा मुक्तक रामकाव्य मे अधिकांशतः राम-भक्ति का मर्यादित रूप ही वर्णित है। केवल अग्रदास रचित अष्टयाम पदावली में राम और सीता के शृंगारी रूप का चित्रण हुआ है। अग्रदास रामभक्ति विषयक रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते है। इसलिए उनकी रचनाओ में स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन स्वाभाविक है। उनके परवर्ती अनेकानेक कवियो ने राम-सीता के घोर शृगारी रूप का वर्णन किया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति-युगीन मुक्तक रचनाओं में रामभक्ति का मुख्यतः मर्यादित रूप ही मिलता है किन्तु रामभक्ति के अन्तर्गत माधुर्योपासना का आरम्भ हो गया था। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध मे आलोच्य मुक्तक रचनाओं के कथा-सयोजन, चरित्र-चित्रण, भाव, रस, भाषा, अलंकार, छंद आदि तथा दार्शनिक, सास्कृतिक अनेक दृष्टियों से विवेचन किया गया है।



१. सूररामचरितावली, पद स० १७४ २. वही, पद स० ६९
३ कवितावली, बाल०, छद स० १७ ४. कवित्त०, चौथी तरग, छद स० २०
५. गीतावली, लंका०, पद स० १९, सूररामचरितावली, पद सं०१८९,

सहायक ग्रंथ-सूची

हिन्दी-ग्रंथ

क्र सं	पुस्तक का नाम	लेखक	संस्करण
१	अकबरी दरबार के हिंदी कवि	डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल	प्रथम संस्करण
२	अग्र-ग्रंथावली (अग्रदास) खंड १, २	सं० राजकिशोरीवरशरणजी	१९३५, १९५८ ई०
३	अब्दुल रहीम खानखाना	डॉ० समरबहादुर सिंह	सं० २०१८ वि०
४	अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय	डॉ० दीनदयालु गुप्त	प्रथम संस्करण
५	अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डॉ० मायारानी टंडन	१९६० ई०
६	अष्टयाम (नाभादास)	सं० पं० मदनगोपाल शुक्ल	प्रथम संस्करण
७	अष्टयाम पदावली (अग्रदास)	सं० स्वामी जानकीशरणजी	सं० २०१८ वि०
८	आधुनिक काव्य में वात्सल्य रस	डॉ० श्रीनिवास शर्मा	प्रथम संस्करण
९	आधुनिक काव्य में छन्द योजना	डा० पुत्तूलाल शुक्ल	प्रथम संस्करण
१०	कवितावली (तुलसीदास)	सं० लाला भगवानदीन	सं० २०२४ वि०
११	कवित्तरत्नाकर (सेनापति)	सं० पं० उमाशंकर शुक्ल	द्वितीय संस्करण
१२	काव्य शास्त्र	डा० भगीरथ मिश्र	सं० २०२५ वि०
१३	गीतावली (तुलसीदास)	गीता प्रेस	सं० २०२७ वि०
१४	चिंतामणि	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सन १९३९ ई०
१५	तुलसी-दर्शन	डा० बलदेवप्रसाद मिश्र	सं० २००२ वि०
१६	तुलसी के भक्त्यात्मक गीत	डॉ० वचनदेव कुमार	प्रथम संस्करण
१७	तुलसीदास और उनका युग	डॉ० राजपति दीक्षित	प्रथम संस्करण
१८	तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खण्ड	सं० सर्वश्री रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास	सं० २००४ वि०

१९. तुलसीदास का कथाशिल्प	डॉ० रांगेय राघव	प्रथम संस्करण
२०. तुलसी काव्य मीमांसा	डॉ० उदयभानु सिंह	सन् १९६६ ई०
२१. तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	द्वितीय संस्करण
२२. तुलसी की विचारधारा	डॉ० नारायणप्रसाद बाजपेयी	सन् १९७२ ई०
२३. तुलसी दर्शन मीमांसा	डॉ० उदयभानु सिंह	प्रथम संस्करण
२४. तुलसीदास और उनके काव्य	डॉ० रामदत्त भारद्वाज	प्रथम संस्करण
२५ त्रिवेणी	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सं० २०२४ वि०
२६. ध्यान मंजरी (अग्रदास)	स० पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी	सं० १९९७ वि०
२७. पल्लव	श्री सुमित्रानन्दन पंत	प्रथम संस्करण
२८. ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका	डॉ० कपिलदेव सिंह	प्रथम संस्करण
२९. ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजनाशिल्प	डॉ० सावित्री सिन्हा	प्रथम संस्करण
३० भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास	श्रीनेत्र पाण्डेय	प्रथम संस्करण
३१ मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और तुलसीदास–शोध की दिशाएँ	डॉ० भगीरथ मिश्र	सं० २०२६ वि०
३२. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था	श्री अल्लामा अब्दुलाह यूसुफ अली	सन् १९२९ ई०
३३. रस मीमांसा	पं० रामचन्द्र शुक्ल	सं० २००६ वि०
३४. रसज्ञ रंजन	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	सन् १९४७ ई०
३५. राम कथा	रेवरेंड फादर कामिल बुल्के	प्रथम संस्करण
३६. रामभक्ति साहित्य में माधुर्योपासना	श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'	सं० २०१४ वि०
३७. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह	सं० २०१४ वि०
३८. रामभक्ति शाखा	डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय	प्रथम संस्करण
३९. रामचरितमानस (तुलसीदास)	गीता प्रेस	सं० २०२६ वि०

४० रीतिकालीन हिन्दी कविता और सेनापति	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	प्रथम संस्करण
४१ रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन	डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	प्रथम संस्करण
४२ विनयपत्रिका (तुलसीदास)	सं० वियोगीहरि	सं० २००१ वि०
४३ सूरदास	डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा	द्वितीय संस्करण
४४ सूर का रामकाव्य	श्री त्रिलोकचन्द्र गुप्त	प्रथम संस्करण
४५ सूर की भाषा	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	प्रथम संस्करण
४६ सूररामचरितावली (सूरदास)	गीता प्रेस	सं० २०२५ वि०
४७ सूर रामायण	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	सन् १९५२ ई०
४८ सूरसागर (सूरदास)	नागरी प्र० सभा, काशी	सं० २०२१ वि०
४९ सिद्धान्त और अध्ययन	डॉ० गुलाबराय	सन् १९५१ ई०
५० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा	द्वितीय संस्करण
५१ हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	परिवर्धित संस्क०
५२ हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सं० २००६ वि०
५३ हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ० रामखेलावन पाण्डेय	प्रथम संस्करण
५४ हिन्दी मुक्तक का विकास	श्री जितेन्द्रनाथ पाठक	प्रथम संस्करण

संस्कृत ग्रंथ

१ ईशावास्योपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	अष्टम् संस्करण
२ ऋग्वेद् भाग २, ३, ६, ७,	आचार्य विश्वबंधु विश्वेश्वरानंद वैदिक इंस्टीट्यूट, होशियारपुर	प्रथम संस्करण
३ काव्यादर्श (आचार्य दण्डी)	श्री एस० के० बेल्वलकर	सन् १९५२ ई०
४ काव्यानुशासन (हेमचन्द्र)	सं० रसिकलाल सी० पारिख	तृतीय संस्करण
५ छन्दोग्योपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	तृतीय संस्करण
६ तैत्तिरीयोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	पंचम संस्करण
७ ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धनाचार्य)	चौखंभा संस्कृत सिरीज, वाराणसी	

१९. तुलसीदास का कथाशिल्प	डॉ० रांगेय राघव	प्रथम संस्करण
२०. तुलसी काव्य मीमांसा	डॉ० उदयभानु सिंह	सन् १९६६ ई०
२१. तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	द्वितीय संस्करण
२२. तुलसी की विचारधारा	डॉ० नारायणप्रसाद बाजपेयी	सन् १९७२ ई०
२३. तुलसी दर्शन मीमांसा	डॉ० उदयभानु सिंह	प्रथम संस्करण
२४. तुलसीदास और उनके काव्य	डॉ० रामदत्त भारद्वाज	प्रथम संस्करण
२५. त्रिवेणी	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	स० २०२४ वि०
२६. ध्यान मजरी (अग्रदास)	सं० प० श्रीरामवल्लभाशरणजी	स० १९९७ वि०
२७. पल्लव	श्री सुमित्रानन्दन पंत	प्रथम संस्करण
२८. व्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका	डॉ० कपिलदेव सिंह	प्रथम संस्करण
२९ व्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य मे अभिव्यजनाशिल्प	डॉ० सावित्री सिन्हा	प्रथम संस्करण
३० भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास	श्रीनेत्र पाण्डेय	प्रथम संस्करण
३१. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और तुलसीदास–शोध की दिशाएँ	डॉ० भगीरथ मिश्र	सं० २०२६ वि०
३२. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था	श्री अल्लामा अब्दुलाह यूसुफ अली	सन् १९२९ ई०
३३. रस मीमांसा	पं० रामचन्द्र शुक्ल	स० २००६ वि०
३४ रसज्ञ रंजन	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	सन् १९४७ ई०
३५. राम कथा	रेवरेंड फादर कामिल बुल्के	प्रथम संस्करण
३६. रामभक्ति साहित्य मे माधुर्योपासना	श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'	स० २०१४ वि०
३७. रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह	स० २०१४ वि०
३८. रामभक्ति शाखा	डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय	प्रथम संस्करण
३९. रामचरितमानस (तुलसीदास)	गीता प्रेस	सं० २०२६ वि०

४० रीतिकालीन हिन्दी कविता और सेनापति	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	प्रथम संस्करण
४१ रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन	डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	प्रथम संस्करण
४२. विनयपत्रिका (तुलसीदास)	म० वियोगीहरि	सं० २००१ वि०
४३. सूरदास	डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा	द्वितीय संस्करण
४४ सूर का रामकाव्य	श्री त्रिलोकचन्द्र गुप्त	प्रथम संस्करण
४५ सूर की भाषा	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	प्रथम संस्करण
४६ सूररामचरितावली (सूरदास)	गीता प्रेस	सं० २०२५ वि०
४७ सूर रामायण	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	सन् १९५२ ई०
४८ सूरसागर (सूरदास)	नागरी प्र० सभा, काशी	सं० २०२१ वि०
४९ सिद्धान्त और अध्ययन	डॉ० गुलाबराय	सन् १९५१ ई०
५०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा	द्वितीय संस्करण
५१ हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	परिवर्धित संस्क०
५२ हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सं० २००६ वि०
५३ हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ० रामखेलावन पाण्डेय	प्रथम संस्करण
५४ हिन्दी मुक्तक का विकास	श्री जितेन्द्रनाथ पाठक	प्रथम संस्करण

संस्कृत ग्रंथ

१ ईशावास्योपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	अष्टम् संस्करण
२ ऋग्वेद् भाग २, ३, ६, ७,	आचार्य विश्वबंधु विश्वेश्वरानंद वैदिक इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर	प्रथम संस्करण
३ काव्यादर्श (आचार्य दण्डी)	श्री एस० के० वेल्वलकर	सन् १९५२ ई०
४. काव्यानुशासन (हेमचन्द्र)	सं० रसिकलाल सी० पारिख	तृतीय संस्करण
५ छान्दोग्योपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	तृतीय संस्करण
६ तैत्तिरीयोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	पंचम संस्करण
७ ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धनाचार्य)	चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी	

ध्वन्यालोक-आनदवर्धनाचार्य (लोचन टीका)	म० रामसागर त्रिपाठी	सन् १९६३ ई०
८. नाट्यशास्त्र (आचार्य भरत)	टीका-आचार्य अभिनवगुप्त	सन् १९२६ ई०
९. नारद भक्ति सूत्र	स्वामी त्यागीपानन्द	सन् १९४३ ई०
१०. निरुक्त (यास्काचार्य) खड १	सं० वी० के० राजावादे	सन् १९४० ई०
११. माण्डूक्योपनिषद् (शाकर भाष्य)	गीता प्रेस, गोरखपुर	पचम् सस्करण
१२. मुण्डकोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	पचम् संस्करण
१३. वाल्मीकि रामायण	अनु० द्वारिकाप्रसाद शर्मा	द्वितीय संस्करण
१४. श्वेताश्वेतरोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर	पंचम् सस्करण
१५ साहित्य दर्पण (आचार्य विश्वनाथ)	पांडुरग	सन् १९२२ ई०

अंग्रेजी-ग्रंथ

१. अकबर द ग्रेट मुगल	वि० स्मिथ	१९२९ ई०
२. अरिस्टाटल थ्योरी आव पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट	एस० एच० बुचर	
३. प्रिंसिपल्स आव लिटररी क्रिटिसिज्म	कॉलरिज	
४ मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन	डॉ० जदुनाथ सरकार	१९२४ ई०
५. मेडिवल इडिया अंडर मोहम्मडेन रूल	लेनपूल	१९५१ ई०
६. हिस्ट्री आव जहांगीर	डॉ० वेणीप्रसाद	१९२२ ई०
७. लाइफ आव् मिल्टन	डॉ० सैमुएल जान्सन,	१९३७ ई०

अप्रकाशित ग्रथ

१ उन्नीसवी शताब्दी के ब्रजभाषा का अध्ययन (डी० लिट्० शोधप्रबध) डॉ० सुरेन्द्रनाथ माथुर, लखनऊ वि० वि०

२. श्रीमद्भागवत् और सूर रामकाव्य का तुलनात्मक　कु० कमला भारती, लखनऊ वि० वि